THE BOOK WAS DRENCHED

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

Tight Binding Book

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176982

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

891.433
H43 SR

Accession No. S.10HA1

s book should be returned on or before the date last
ed below.

श्रीकान्त

मूल लेखक

श्री० शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

पुस्तक मन्दिर
काशी

तीसरा और चौथा खण्ड

मूल्य तीन रुपये

प्रथम संस्करण

अनुवादक

तीसरा खण्ड

श्री शारदारंजन पाण्डेय,

चौथा खण्ड

श्री कमलाप्रसाद राय शर्मा, बी० ए०,

मुद्रक

तीसरा खण्ड

श्री० ह० मा० सप्रे—लक्ष्मीनारायण प्रेस,

चौथा खण्ड

सुलेमानी प्रेस, मच्छोदरी पार्क, बनारस।

श्रीकांत

तीसरा पर्व

एक दिन मैं इस भ्रमण-कहानी पर यवनिका डाल चुका था। फिर अपने ही हाथों से उसके उद्‌घाटन की कल्पना भी मैं न कर सकता था। मेरे गाँव के बाबा मेरी नाटकीय उक्ति पर हँसे। राजलक्ष्मी के साष्टांग प्रणाम के उत्तर में घबड़ा कर दो डग पीछे हट कर बोले—यह क्या! अहा, अच्छा, अच्छा, आनंद रहो। इतना कह कर वे डाक्टर को ले कर बाहर चले गए। उस समय राजलक्ष्मी के मुँह पर जो कौतुक देखा, वह भूल जाने की चीज नहीं है, भूला भी नहीं हूँ। मैं सोच रहा था कि वह मेरी अपनी है—बाहर संसार में कोई उसका प्रकाश नहीं पा सकता। अब खयाल आता है कि मुझे स्वयं आ कर बंद किवाड़ खोलना पड़ा और यह अच्छा ही हुआ। जिस अज्ञात रहस्य पर बाहर का क्रोध धक्का मार रहा था, निरंतर अन्याय और अविचार की भ्रांति फैल रही थी; उसका बंद दरवाजा मुझे स्वयं खोल देना पड़ा।

बाबा के चले जाने पर राजलक्ष्मी उनकी ओर देखती ही रह गई। मुँह ऊपर कर हँसने का स्वाँग रच कर बोली—पैरों की धूल लेते समय मैं उन्हें छू न लेती! किंतु क्यों तुमने वह बात कह दी! उसकी तो कोई जरूरत न थी! यह तो केवल—

वास्तव में तुमने अपने को स्वयं ही अपमानित किया है। इसकी कोई जरूरत नहीं थी। बाजार की बाईजी की अपेक्षा विधवा-विवाहिता पत्नी ऊँची जगह नहीं पाती—बल्कि नीचे ही रहती है। किसी को भी ऊपर नहीं उठा सकी—राजलक्ष्मी इसे पूरा न कर सकी।

मैं सब समझ गया। इस अपमानिता के सामने बड़ी-बड़ी बातें कहने की हिम्मत नहीं हुई। जैसे चुपचाप पड़ा, वैसे ही चुपचाप पड़ा रहा।

राजलक्ष्मी भी बहुत देर तक कुछ न बोली। चिंता में मग्न हो कर बैठी

रही। सहसा चौंक कर उठ खड़ी हुई, मानों किसी की बुलाहट हो। रतन को पुकार कर बोली—जल्दी गाड़ी तैयार करने को कह दे रतन! रात को ग्यारह बजे की गाड़ी से जाना होगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो काम नहीं चलेगा। जोरों की ठंढक लगेगी।

दस मिनट में ही रतन मेरा बैग ले कर गाड़ी में रख आया। मेरा बिछावन बाँधने का इशारा दे कर चुपचाप खड़ा हो गया। तब से मैं एक बात भी न कर सका था और न एक प्रश्न ही पूछ सका था। कहाँ जाना होगा, क्या करना होगा, कुछ न पूछ कर चुपचाप गाड़ी में बैठ गया।

कई दिन पहले अपने घर में शाम को आया था, आज भी ठीक उसी तरह शाम को चला जा रहा हूँ। उस दिन भी किसी ने मुझे आदर से ग्रहण नहीं किया और आज भी कोई स्नेह से बिदा करने न आया। उस दिन भी इसी तरह घर-घर में शंख बजना शुरू हुआ था, इसी तरह वसु-मल्लिकों के गोपाल-मंदिर में आरती के समय घंटे का अस्पष्ट स्वर हवा में सुनाई पड़ रहा था। फिर भी उस दिन से आज कितना अंतर है, यह आकाश के देवता देखने लगे।

बंगाल के एक नगण्य गाँव के टूटे-फूटे घर के लिए कभी भी मुझे ममता न थी। ममता से वंचित होने पर भी मैं इसे कभी हानिकर न समझता था। आज जब एकदम अनादर के साथ मैं गाँव छोड़ रहा था तो फिर कभी लौट कर आने की कल्पना को भी अपने हृदय में स्थान न दे सका। फिर यह अस्वास्थ्यकर गाँव मुझे असाधारण दिखलाई देने लगा। मैं जिस तरह निर्वासित हो कर चला आ रहा था उसके प्रति मुझे मोह होने लगा; चूँकि उस गाँव में मेरे पूर्वज रहे थे।

राजलक्ष्मी चुपचाप आ कर मेरे सामने की सीट पर बैठ गई। शायद वह गाँव के परिचित राहगीरों के कौतूहल से अपने को छिपाए रखने के लिए गाड़ी के एक कोने में सिर रख कर आँख मींचने लगी।

जब हमलोग रेलवे स्टेशन को चले तो सूर्यास्त हो चुका था। टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों की दोनों ओर बबूल, सरके और बेंत आदि झुक आए थे। राह और भी संकीर्ण हो गई थी। सिर के ऊपर आम और कटहल की सघन छाया पड़ रही थी। इस राह से जब गाड़ी धीरे-धीरे सावधानी से चलने लगी तो मैं

निबिड़ अंधकार में आँखें बंद कर न जाने क्या-क्या देखने लगा। मन में आया कि इसी राह से एक दिन मेरे दादा मेरी दादी को ब्याह कर ले गए होंगे। उस दिन बारातियों के कोलाहल से रास्ता मुखरित हो उठा होगा। उनके मर जाने पर इसी राह से लोग उनकी लाश भी नदी किनारे ले गए होंगे। इसी राह से मा एक दिन वधू-वेश में गृह-प्रवेश करने गई होगी—और एक दिन जब वह मर गई तो मैं इसी राह से उसको गंगा में विसर्जित कर लौटा था। उस समय भी यह रास्ता इतना दुर्गम, इतना निर्जन न था। उस समय इसकी हवा में इतनी मलेरिया न थी। तालाबों में इतना कीचड़ और विष नहीं था। तब भी देश में अन्न था, वस्त्र था, धर्म था—तब देश का निरानंद ऐसी भयंकर शून्यता के साथ भगवान् के द्वार तक इस तरह नहीं पहुँचा था। आँखें भर आईं। धूल से सिर भर गया। मन-ही-मन कहने लगा—हे मेरे पिता-पितामह के सुख-दुख, संपत्ति-विपत्ति, हास्य-रुदन की राह, तुम्हें बार-बार नमस्कार करता हूँ। मैं अंधकार में वन की ओर देख कर बोला—मा जन्मभूमि! तुम्हारी असंख्य आकृति संतान की तरह मैंने भी कभी तुम्हें प्यार नहीं किया—किसी दिन तुम्हारी सेवा में प्रवृत्त नहीं हुआ, किसी दिन कोई काम न आया। फिर लौट कर आऊँगा कि नहीं, यह भी नहीं जानता, किंतु आज निर्वासन के समय निबिड़ अंधकार में तुम्हारी जो दुखद मूर्ति आँखों में समा गई है उसे कभी न भूलूँगा।

राजलक्ष्मी भी उसी तरह शांत थी। अँधियाली में उसका मुँह नहीं दीख पड़ा। आँखें मींज कर देखा कि वह चिंतित है। मैंने मन-ही-मन कहा—जाने दो जब मैंने अपनी चिंता की नाव का डाँड़ इसके हाथों में दे दिया तो इस अनजान नदी के भँवर और टीले आदि वही ढूँढ़े।

मैंने जीवन में अपने मन को सब दिशाओं में एवं सब अवस्थाओं में जाँच कर देखा है। इस धातु को मैं पहचानता हूँ। किसी चीज का अत्यंत मैं नहीं बरदाश्त कर सकता। अत्यंत सुख, अत्यंत स्वास्थ्य, अत्यंत अच्छी तरह रहना मुझे अच्छा नहीं लगता। कोई अत्यंत प्रेम करता है, यह जानकर मेरा मन भागो-भागो कर उठता है। वही मन आज पतवार छोड़ चुका है। उसे कितना दुख हुआ, यह तो सृष्टिकर्ता ही जानते हैं!

मैंने बाहर काले आकाश की ओर देखा। भीतर की निश्चल प्रतिमा को मैंने भी देखा। फिर हाथ जोड़ कर किसे प्रणाम किया, यह मैं स्वयं नहीं जानता। मन-ही-मन मैंने कहा—इस आकर्षण के दुःसह वेग से मेरी जान निकल जाती है। मैं बहुत बार बहुत राहों से निकल भागा। पर गोरख-धंधे की तरह सभी मार्गों से इसी के हाथ में आ पहुँचा। अब मैं विद्रोह न करूँगा। इस बार अपने को इसके हाथों पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया है। इतने दिन तक जीवन का डाँड़ पकड़े रहने पर भी मुझे क्या मिला ! मैं कितना सार्थक हुआ ! तब, आज यदि मैं ऐसे के पाले पड़ा, जो स्वयं गरदन भर कीचड़ से निकल आई है तो वह दूसरे को कैसे उसमें डुबा देगी।

किंतु यह सब तो हुआ अपनी ओर से, दूसरे पक्ष का आचरण फिर भी पूर्ववत् आरंभ हुआ। सारी राह में कुछ बातचीत नहीं हुई। स्टेशन पहुँच जाने पर किसी ने भी मुझ से कुछ पूछना आवश्यक न समझा। थोड़ी ही देर में कलकत्ता जानेवाली गाड़ी सीटी दे कर चली गई। रतन टिकट खरीदने के बजाय, मुसाफिरखाने में एक ओर मेरे लिए बिस्तर ठीक करने लगा। अतएव, समझ गया कि इस ओर नहीं, हमलोगों को भोर में पश्चिम की ओर जाना होगा। किंतु पटना जाना होगा, या काशी या और कहीं, यह नहीं जानते हुए भी समझ गया कि इस विषय में मेरे मतामत की आवश्यकता नहीं है।

राजलक्ष्मी एक ओर अन्यमनस्क भाव से खड़ी थी। रतन काम समाप्त कर के उसके पास आया। धीरे से पूछा—माँ, पता लगा है कि कुछ दूर आगे जाने पर खाने की अच्छी चीजें मिलती हैं।

राजलक्ष्मी आँचल की गाँठ से रतन को रुपया दे कर बोली—अच्छा तो, तब जाओ न। किंतु दूध देख-सुन कर लेना, बासी-वासी न हो।

रतन बोला—आप के लिए भी कुछ—

नहीं, मेरे लिए नहीं चाहिए।

इस 'नहीं' की बात सब जानते हैं। रतन सब से अधिक जानता है। तब भी उसने दो बार पैर घिस कर धीरे-धीरे कहा—कल से ही तो—

प्रत्युत्तर में राजलक्ष्मी ने कहा—तू कुछ नहीं सुनता रतन ! बहरा हो गया है क्या !

रतन चुपचाप चला गया। इतना साहस किसी में न था कि इसके बाद भी कोई कुछ कहे। कहने की जरूरत भी क्या थी? राजलक्ष्मी यदि स्वीकार नहीं भी करे तो मैं जानता हूँ कि रेल पर वह कुछ भी नहीं खाती। निरर्थक कठोर उपवास करने में इस जोड़ का कोई भी नहीं है, यह शायद अत्युक्ति न होगी। इसके घर में न जाने कितनी चीजें आती थीं, दाई-नौकर खा जाते, गरीबों में बाँट दिया जाता या सड़ जाने पर फेंक दिया जाता; पर जिसके लिए ये चीजें आतीं, वह छूती तक न थी। जब मैं दिल्लगी में पूछता हूँ तो जवाब देती है—मुझे तो आचार-ही-विचार है। मैं और छुआछूत! सब कुछ खाती-पीती हूँ।

अच्छा, मेरे सामने उनकी परीक्षा दो?

परीक्षा? अभी? अरे बाप रे! तब मैं बचूँगी? और वह नहीं बचने का कोई कारण नहीं बतला कर, घर के बहुत जरूरी काम का बहाना कर चली जाती। वह माँस-मछली, घी-दूध कुछ भी नहीं खाती थी। यह मुझे धीरे-धीरे मालूम हुआ। पर इसका नहीं खाना, इतना अशोभन था और इतनी लज्जा की बात थी कि यह प्रसंग छिड़ते ही लाज के मारे उसे भाग जाने को जगह भी नहीं मिलती थी। फिर उसे खाने के लिए अनुरोध करने की इच्छा नहीं हुई। रतन मुँह बना कर चला गया। तब भी मैं कुछ न कह सका। थोड़ी देर बाद वह दूध और मिठाई ले आया। मेरे लिए काफी सामान रख कर राजलक्ष्मी ने और सब रतन को ही दे दिया। तब भी मैं कुछ न बोला। रतन की सकरुण आँखों की नीरव प्रार्थना स्पष्ट रूप से समझ लेने पर भी मैं उसी तरह निर्वाक् रहा।

बात-बात में बिना वजह के वह नहीं खाती थी। यह देखते-देखते हम लोग अभ्यस्त हो गए थे। किंतु, उस दिन ठीक इस तरह का नहीं था। तब मैं उपहास-परिहास से आरंभ कर कटाक्ष भी कम नहीं करता था। किंतु ज्यों-ज्यों दिन बीतता गया, उसे दूसरी तरह से देखने का मुझे यथेष्ट अवकाश मिला। रतन के चले जाने पर यही बातें मेरे दिल में घर करने लगीं।

कब और क्या सोच कर वह इस कठिन साधना की ओर प्रवृत्त हुई थी, यह मैं नहीं जानता था। उस समय भी मैं इसके जीवन में नहीं आया था। किंतु पहले वह अपर्याप्त आहार्य वस्तु के बीच में बैठ कर स्वेच्छा से दिन-ब-दिन गुप्त

रूप से, चुपचाप अपने को अलग करती जा रही थी। वह कितना कठिन एवं कैसा दुसाध्य था। कलुष एवं सब प्रकार की आविलता के केंद्र से तपस्या के मार्ग पर जाने में उसे कितना कष्ट सहना पड़ा होगा।

आज यह उसके पक्ष में इतना सहज, इतना स्वाभाविक हो गया है कि हम लोगों के सामने इसकी गुरुता या विशेषता कुछ भी नहीं है। इसका मूल्य भी मैं ठीक से नहीं जानता। किंतु, फिर भी उसकी साधना सब तरह से विफल हो जायगी—एकदम बेकार का परिश्रम किया गया है? अपने को वंचित करने की शिक्षा, अभ्यास, पा कर त्याग करने की शक्ति, यदि उसके पास अलक्ष्य से ही संचित नहीं रहती, तो क्या आज वह इतनी स्वच्छंदता से, इतनी आसानी से अपने को छुड़ा सकती थी? प्राप्य भोग्य सामग्री से अपने को विच्छिन्न कर सकती थी? कहीं से कोई अड़चन नहीं पड़ जाती? उसने प्रेम किया है। कितने लोग तो प्रेम करते हैं, किंतु सब कुछ त्याग कर प्रेम को इतना निष्पाप, इतना एकांत बना लेना क्या सब के लिए सुलभ है?

मुसाफिरखाने में और कोई आदमी न था। रतन भी कोई अंतराल खोज कर छिप गया था। टिमटिमाती रोशनी में राजलक्ष्मी चुपचाप बैठी थी। नजदीक जा कर उसके सिर पर हाथ रखा। वह चौंक कर उठ गई और मुँह उठा कर बोली—तुम सोए नहीं?

नहीं, पर धूल-गरदे में चुपचाप अकेली मत बैठो। मेरे बिस्तर पर चलो! इतना कह कर उसे आपत्ति करने का अवसर मैंने नहीं दिया। उसका हाथ खींच कर जबरदस्ती उसे उठा लिया। अपने पास उसे ले आया, ढूँढ़ने पर भी कोई बात मुझे न मिली। धीरे-धीरे उसके हाथ पर अपना हाथ फेरने लगा। इसी तरह कुछ समय कट गया। आँखों के कोने पर हाथ पड़ते ही समझ गया कि मेरा संदेह निराधार नहीं है। धीरे-धीरे आँसू पोंछ कर ज्योंही मैंने उसे अपने निकट खींच लेना चाहा त्योंही वह औंधी हो कर मेरे पैरों पर गिर पड़ी। मैं किसी तरह उसे अपने पास न ला सका।

इसी तरह चुपचाप समय बीतने लगा। सहसा मैं बोल उठा—तुम्हें एक बात अभी तक नहीं बतलाया लक्ष्मी!

उसने चुपके से कहा—कौन बात?

पहले तो संस्कार के कारण कहने में मुझे संकोच हुआ, किंतु रुका नहीं, कहने लगा—आज से अपने को मैंने तुम्हारे ऊपर सौंप दिया है, अब भला-बुरा सब का भार तुम्हारे ऊपर है।

इतना कह कर टिमटिमाती रोशनी में उसकी ओर मैंने देखा। इसके बाद वह हँस कर बोली—तुम्हें ले कर मैं क्या करूँगी? तुम न तो तबला ही बजा सकोगे और न तो सारंगी ही। और......

मैं बोला—और क्या? पान-तमाखू लाना? नहीं, यह काम मुझ से बिलकुल न होगा।

किंतु आगे के दोनों काम।

उमीद दिलाने पर शायद मैं बजा सकूँ। मैं स्वयं भी हँसा।

हठात् राजलक्ष्मी उत्साहित हो कर बोल उठी—दिल्लगी नहीं, सचमुच बजा सकोगे?

मैंने कहा—उमीद करने में तो दोष नहीं है।

राजलक्ष्मी बोली—नहीं। इसके बाद कुछ देर तक निशब्द और विस्मित रही। फिर धीरे-धीरे बोलने लगी—देखो बीच-बीच में मैं सोचती हूँ जो निर्दय की तरह बंदूक ले कर जानवरों को मारता-फिरता है, उसे कब इसकी परवा होगी? इसके अंतर को इतनी वेदना का अनुभव वह कर सकता है? शिकार करने की तरह चोट पहुँचाने में ही उसे आनंद मिलता है। तुम्हारे बहुत से दुखों को मैंने इसी लिए बरदाश्त किया है।

अब चुप रहने की मेरी बारी आई। उसके अभियोगों के मूल में युक्तिपूर्ण विचार चल सकता था, सफाई देने में भी कमी न थी, किंतु मुझे यह सब विडंबना मालूम हुआ। उसकी सच्ची अनुभूति के निकट मुझे हार माननी पड़ी। वह अपनी बात को अच्छी तरह नहीं कह सकी, किंतु संगीत की अंतरतम मूर्ति शायद व्यथा के भीतर से ही आत्म-प्रकाश करती है, वह करुणा से अनभिषिक्त जाग्रत चेतना ही राजलक्ष्मी के इन दो शब्दों से इंगित में रूप धारण करके मेरे सामने दिखलाई पड़ी। और उसके संयम ने, उसके त्याग ने, उसके हृदया की शुचिता ने मानों मेरी आँखों में उँगली गड़ा कर उसका स्मरण करा दिया।

तथापि, उनसे एक बात मैं कह सकता था। मैं यह कह सकता था कि मनुष्य की एकांत विरुद्ध प्रवृत्तियाँ किस तरह नजदीक-पास में बैठी रहती हैं। यह एक अचिंतनीय रहस्य है। इसके नहीं रहने से मैं आत्महत्या कर सकता था। इतना बड़ा आश्चर्य मेरे लिए और क्या हो सकता है! जो एक पिपीलिका की मृत्यु भी नहीं सह सकता, रक्ताक्त यूप-काष्ठ देखते ही जो खाना-पीना भी छोड़ देता है, जो अनाथ कुत्ते-बिल्लियों के लिए भी लड़कपन में उपवास करता था—वह वन के पशुओं पर, पेड़ की पक्षियों पर कैसे निशाना लगा सकता है, यह मैं नहीं समझ सका। ऐसा मैं ही अकेला हूँ! जिस राजलक्ष्मी का बाहर-भीतर मेरे ही लिए आज प्रकाश की तरह स्वच्छ हो गया है, वह इतने दिनों तक पियारी का जीवन कैसे बिता सकी होगी!

मन में आ जाने पर भी मैं इसे प्रकट नहीं कर सका। उसे बाधा देने के लिए ही नहीं, पर मैंने सोचा कि कहने से कुछ लाभ नहीं होगा। देव और दानव दोनों मनुष्य को न जाने कहाँ ठोकर लगा देते हैं, इसे कौन जानता है! कैसे भोगी एक दिन त्यागी होकर बाहर हो जाता है, निर्मल निष्ठुर एक क्षण में करुणा-विगलित हो कर अपने को निशेष कर देता है, इस रहस्य का कितना पता लोग लगा सके हैं! न जाने किस निभृत कंदरा से मानवात्मा की गुप्त साधना एक दिन सिद्धि के रूप में प्रस्फुटित हो उठती है! इसकी खबर हम लोग नहीं रखते। क्षीण आलोक में राजलक्ष्मी को देख कर मैंने मन-ही-मन कहा—यदि तुम मेरी व्यथा देने की शक्ति को ही पहचान सकी हो एवं व्यथा ग्रहण करने की अक्षमता को स्नेह के कारण अब तक क्षमा करती आई हो, तो इसमें अभिमान करने की कौन-सी बात है!

राजलक्ष्मी ने कहा—तुम चुप क्यों रह गए!

मैंने कहा—तब भी तो इस निष्ठुर के लिए तुमने सब कुछ त्यागा।

राजलक्ष्मी ने कहा—सर्वत्याग क्या! अपने को तो तुमने निस्वत्व हो कर मुझे दे ही डाला और उसे मैं त्याग नहीं सकी।

मैंने कहा—हाँ, निस्वत्व हो कर ही अपने को दे दिया है। किंतु तुम तो अपने आपको देख नहीं सकोगी इसलिए उसका उल्लेख मैं न करूँगा।

२

पश्चिम के शहर में जाते ही समझ गया कि बंगाल का मलेरिया मुझे मजबूती से पकड़ चुका है। बेहोशी में ही मैं पटना स्टेशन से राजलक्ष्मी के घर तक लाया गया। इसके बाद एक महीने तक मुझे ज्वर, डाक्टर और राजलक्ष्मी घेरे रहे।

जब ज्वर छूटा, तब डाक्टर साहब ने स्पष्ट रूप से गृहस्वामिनी को कह दिया कि यह शहर पश्चिम में है, स्वास्थ्यकर होने की ख्याति भी इसे प्राप्त है, फिर भी उनकी राय है कि रोगी को शीघ्र ही स्थानांतरित कर देना आवश्यक है।

एक बार फिर बाँधना-छाँदना शुरू हो गया। इस बार बँधाई जरा जम कर हो रही थी। रतन को अकेला पा कर मैंने पूछा—इस बार कहाँ जाना होगा रतन?

मैंने देखा कि इस नव-अभिनव के वह एकदम विरुद्ध था। खुले दरवाजे की ओर देखता हुआ फुसफुसा कर जो कुछ वह बोला उससे मेरा दिल भी बैठ गया। रतन ने कहा—वीरभूम जिला में एक छोटा गाँव है गंगामाटी। जब यह गाँव खरीदा गया था तब एकदफे मैं मुखतार किसनलाल के साथ वहाँ गया था। मा वहाँ कभी नहीं जातीं—एक बार जाते ही लौट कर भाग आने का रास्ता भी नहीं मिलेगा। गाँव में भद्र परिवार है ही नहीं, समझ लीजिए। गाँव केवल छोटी जातियों से भरा है। उनसे न तो आप छुआ सकते हैं, और न उनसे कोई काम ही लिया जा सकता है।

राजलक्ष्मी क्यों इन छोटी जातियों के साथ जा कर रहना चाहती थी, इसका कारण मैं नहीं समझ सका। मैंने रतन से पूछा—गंगामाटी कहाँ है?

रतन ने बताया—साईथिया या ऐसे ही एक स्टेशन से दस-बारह कोस बैलगाड़ी पर जाना पड़ता है। पथ जितना दुर्गम है उतना ही भयानक भी है। चारों ओर मैदान ही मैदान है। उसमें न तो कोई फसल होती है और न कहीं एक बूँद पानी मिलता है। कंकड़ीली मिट्टी है—कहीं लाल, कहीं काली। इतना कह कर थोड़ी देर ठहर गया। फिर मुझे लक्ष्य करके कहने लगा—बाबू, आदमी वहाँ किस सुख के लिए रहते हैं, यह मैं नहीं समझ सका। और जो

लोग ऐसी सोने की जगह छोड़ कर जाना चाहते हैं, उनसे क्या कहा जाय !

मन-ही-मन एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर मैं चुप रहा। राजलक्ष्मी यह सोने की भूमि छोड़ कर क्यों छोटों की बस्ती में मुझे लिये जा रही है ! उसको यह समझाना भी कठिन है और कहना भी कठिन है।

अंत में मैं बोला—जान पड़ता है कि मेरी बीमारी से ही वे जा रही हैं रतन। यहाँ रहने से अच्छा होने की शायद कम उमोद हो, इसीलिए सभी डाक्टरों से दिखला रही हैं।

रतन बोला—और कोई बीमार नहीं पड़ता बाबू ! चंगा होने के लिए उन्हें गंगामाटी ही जाना पड़ता है !

मैं मन-ही-मन बोला—वे लोग किस माटी में जाते हैं, मैं यह नहीं जानता। या तो उन लोगों की बीमारी सहज होती होगी, या साधारण माटी में ही वे अच्छे हो जाते होंगे। लेकिन हम लोगों की व्याधि सीधी भी नहीं है, साधारण भी नहीं है। इसके लिए शायद गंगामाटी की ही सख्त जरूरत है।

रतन कहने लगा—मा जी के खरचे-वरचे का हिसाब भी हम लोगों की समझ में नहीं आता। वहाँ न तो घर-द्वार है और न और कुछ। एक गुमाश्ता है। उन्हें कच्चा मकान बनवाने के लिए दो हजार रुपया दे दिया गया है। देखिए तो बाबू जी, यह सब कैसा उटपटांग काम है। नौकर होकर भी हम लोग कुछ नहीं हैं।

उसका क्षोभ और उसकी विरक्ति देख कर मैं बोला—वहाँ अगर तुम न जाओ तो क्या होगा रतन ? जबरदस्ती तो कोई किसी को नहीं ले जाता !

मेरी बात से रतन को कोई सांत्वना नहीं मिली। वह बोला—मा ले जा सकती हैं। क्या जानूँ बाबू, कैसा जादू-मंतर जानती हैं; यदि यमराज के घर भी जाने को कह दें, तो हम लोगों में ना कहने का साहस किसी को नहीं है। इतना कहने के बाद वह मुँह भारी कर चला गया।

रतन तो क्रोध में कह गया किंतु उसने मुझे बिलकुल नया संवाद दिया। मेरी ही नहीं, सब की यही दशा है। मैं जादू-मंतर की बात सोचने लगा। मंत्र-तंत्र में मैं विश्वास करता होऊँ, ऐसी कोई बात नहीं है, किंतु इस घर में किसी

को साहस नहीं है कि उसके कहने पर यम के घर भी न जाय। यह कौन-सी चीज है!

उसके समस्त संस्रव से अपने को विच्छिन्न करने के लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया! विवाद करके चलता बना। सन्यासी हो कर देखा, देश छोड़ कर बहुत दूर चला गया, जिससे और कभी भेंट न हो—किंतु मेरी सारी चेष्टाएँ एक गोल वस्तु के ऊपर रेखा खींचने की तरह बेकार हो गईं। अपने को सहस्र बार धिक्कार दे कर भी मैं अपनी दुर्बलता के नज़दीक ही पराजित हो गया। यह सब जान-बूझ कर जब मैंने आत्म-समर्पण कर दिया तब रतन ने एक खबर दी—राजलक्ष्मी जादू-मंत्र जानती है।

ठीक है। अगर इसी रतन से जिरह करके पूछा जाय तो वह विश्वास नहीं करेगा।

मैंने एकाएक देखा कि एक पत्थर के बड़े प्याले में कुछ ले कर राजलक्ष्मी इधर से ही जा रही है। मैंने पुकार कर कहा—सुनो, सब लोग कहते हैं कि तुम जादू-मंत्र जानती हो!

वह ठमक कर खड़ी हो गई, भौंहें टेढ़ी करके बोली—क्या जानती हूँ?

मैं बोला—जादू-मंतर।

राजलक्ष्मी हँस कर बोली—हाँ जानती हूँ। इतना कह कर वह चली जा रही थी। सहसा मेरे कुरते को गौर से देख कर बोली—कल का बासी कुरता पहने हुए हो?

मैं अपने को देख कर बोला—हाँ, वही तो है। किंतु, रहने दो, उजला तो है।

राजलक्ष्मी ने कहा—मैं उजले की बात नहीं, सफाई की बात कहती हूँ। इसके बाद वह हँस कर बोली—बाहर के उजलेपन में ही तुम सदैव मस्त रहे। इसकी उपेक्षा की बात मैं नहीं कहती, भीतर पसीने से गंदगी बढ़ जाती है, उसे देखना कब सीखोगे? इतना कह कर उसने रतन को पुकारा। किसी ने जवाब नहीं दिया। मालकिन का जवाब कोई नहीं देता। यह इस घर का नियम है। पाँच-छः मिनट तक मुँह छिपा लेना ही इस घर का नियम है।

राजलक्ष्मी ने हाथ की वस्तु को नीचे रख दिया। उसने बगल के कमरे से

एक धुला हुआ कुरता ला कर मुझे दिया। फिर कहने लगी—अपने मंत्री रतन से कह देना कि जब तक उसने जादू-मंतर नहीं सीख लिया है तब तक आवश्यक कामों को वह अपने हाथ से करे। वह प्याली उठा कर नीचे चली गई।

मैंने कुरता बदलते समय देखा कि सचमुच उसका भीतरी हिस्सा गंदा हो गया था। होना भी चाहिए था और मुझे भी इसके अतिरिक्त कुछ ज्यादा उमीद न थी। किंतु मैं तो सोचने में लगा था और शायद इसी से इस छोटे चोले के भीतर-बाहर एक चोट लगी।

राजलक्ष्मी की इस शुचिता की भावना को हम लोग प्रायः निरर्थक, दुखदायी और कभी-कभी अत्याचार भी समझते थे। अभी एक क्षण में सब धुल गया हो, यह भी सच नहीं है। किंतु यह श्लेष—जिस वस्तु को आज तक मैंने नहीं देखा था उसे देखा। एक दिन मैं साश्चर्य सोचता था कि राजलक्ष्मी लड़कपन में जिससे प्रेम करती थी उसी को पियारी ने अपने यौवनोन्माद की अतृप्त लालसा के कीचड़ से बहुत शीघ्र कमल की तरह निकाल लिया है। आज विदित हुआ कि वह पियारी नहीं—राजलक्ष्मी है। राजलक्ष्मी और पियारी, इन दो नामों में उसके जीवन का कितना बड़ा संकेत छिपा था, देखने पर भी वह अदृश्य रहा, इसी से कभी-कभी मैं संशय में पड़ कर सोचता हूँ कि एक के भीतर दूसरा कैसे जीवित था! किंतु मनुष्य तो ऐसा ही है। इसीलिए तो वह मनुष्य है।

पियारी का समग्र इतिहास मैं नहीं जानता, जानने की इच्छा भी नहीं है। राजलक्ष्मी का पूरा इतिहास भी नहीं जानता। मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि दोनों में कभी सामंजस्य नहीं रहा। सदैव दोनों उलटी धारा में बहती रही हैं। इसी से एक के सुंदर तालाब में जब प्रेम का सुंदर कमल खिला है -तब दूसरे के दुर्दांत जीवन में—आघात क्या करेगा, प्रवेश तक नहीं पा सका। यही कारण है कि आज तक उसकी एक पंखुड़ी भी नहीं झड़ी—जरा-सी धूल उड़ कर भी उसे छू नहीं सकी है।

जाड़े की संध्या शीघ्र ही घनी हो गई। मैं उसी जगह बैठा रहा। मैं मन-ही-मन कहने लगा—मनुष्य तो केवल शरीर ही नहीं होता। पियारी नहीं है, वह मर गई। किंतु, एक दिन यदि उसी देह में उसने स्याही का धब्बा लगा

लिया, तो केवल उसी को बड़ा करके देखता रहूँ ; और राजलक्ष्मी, जो सहस्र कोटि दुखों की अग्नि-परीक्षा पास कर अकलंक शुभ्रता से आकर खड़ी हो गई, तो उसे मुँह फेर कर लौटा दूँ ! मनुष्यों में जो पशु है, केवल उसी के अन्याय से, उसी की भूल-भ्रांति से, आदमी का विचार करूँ ! और जो देवता है, सब दुख, सब व्यथा, सब अपमान चुपचाप सस्मित मुख से सहता गया। उसे बैठने के लिए कहीं भी मैं आसन न दूँ ? यही क्या मनुष्य के प्रति सच्चा न्याय होगा ? मेरा मन आज समस्त शक्ति से कहने लगा—नहीं, नहीं, कभी नहीं, ऐसा कभी नहीं ! ऐसा तो हो ही नहीं सकता। अभी अधिक दिन नहीं बीते हैं कि अपने को दुर्बल, श्रांत और पराजित समझ कर मैंने राजलक्ष्मी के हाथ समर्पित कर दिया है। किंतु उस दिन पराभूत आत्मत्याग के बीच बड़ी दीनता थी। मेरा मन किसी का अनुमोदन नहीं कर पाता था। लेकिन आज वही मन सबल होकर कहने लगा—यह दान दान नहीं है, फाँकी है। तुम जिस पियारी को नहीं जानते थे, उसे वैसे ही रहने दो ; जो राजलक्ष्मी तुम्हारी थी, उसी को सबल चित्त से तुम ग्रहण करो। जिसके हाथ से संसार की सार्थकता झड़ रही है, अपनी आखिरी सार्थकता भी उसी के हाथ सौंप कर निश्चित रहो।

नया नौकर बत्ती ला रहा था ; उसे बिदा कर मैं अंधकार में ही बैठा रहा और मन-ही-मन कहने लगा—राजलक्ष्मी को मैंने उसके सारे गुण और अवगुण के साथ ग्रहण किया। यही मैं कर सकता था, यही मेरे हाथ में था। किंतु इसके अतिरिक्त जिसके हाथ में है, उस अतिरिक्त का बोझ उसी को दे देता हूँ। इतना कह कर मैंने अंधकार में ही खाट की पाटी पर चुपचाप सिर रख दिया।

अगले दिन की तरह यथारीति से आयोजन चलता रहा। उसके बाद भी दिन-व्यापी उद्यम की अवधि न रही। उस दिन दोपहर को एक बड़ी संदूक में लोटा-थाली, कटोरा-गिलास आदि भरा जा रहा था। मैं सब कुछ देख रहा था। एक बार इशारे से बुला कर मैंने पूछा—यह सब क्या हो रहा है ?

राजलक्ष्मी बोली—लौट कर कहाँ आऊँगी, सुनूँ तो ?

मुझे स्मरण हो आया कि यह घर तो वह बंकू को दे चुकी है। मैंने कहा—यदि वहाँ ज्यादा दिन मन न लगे ?

राजलक्ष्मी जरा हँस कर बोली—मेरे लिए तुम्हें रुचि बिगाड़ने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा मन नहीं लगेगा तो चले आना। मैं बाधा न दूँगी।

उसके इस तरह कहने से मुझे चोट लगी। मैं चुप रहा। मैंने बहुत बार देखा है कि मेरे ऐसे प्रश्न को वह सरल चित्त से कभी ग्रहण न कर सकी है। मैं अकपट होकर किसी को प्यार कर सकता हूँ, या उसके साथ स्थिर रह सकता हूँ, यह किसी तरह उसके मन में नहीं बैठता था। संशय के आलोडन से अविश्वास उग्र होकर निकल पड़ता और इसकी ज्वाला दोनों के भीतर धू-धू कर जला करता था। अविश्वास की आग कैसे और कब बुझेगी, सोचने पर भी इसका ओर-छोर मुझे नहीं मिलता था। वह भी सदैव इसी चक्कर में रहती है। गंगामाटी में इसका निर्णय होगा कि नहीं—यह जिसके वश की बात है, वह आँखों की आड़ में चुपचाप बैठा हुआ है।

सर्वविध-आयोजन में चार दिन और कट गए। शुभ क्षण की प्रतीक्षा में दो दिन और भी। इसके बाद एक दिन सबेरे अपरिचित गंगामाटी के लिए हम लोग रवाना हो गए। रास्ता अच्छी तरह नहीं कटा—तबीअत बिलकुल अच्छी नहीं थी। और सब से खराब कटा रतन का। वह मुँह लटका कर गाड़ी के एक कोने में चुपचाप बैठा रहा। स्टेशन पर स्टेशन आया, काम-काज में जरा भी सहायता उसने नहीं की लेकिन दूसरी बातें मैं समझ रहा था। जगह जान है कि अनजान है, अच्छी है कि बुरी है, स्वास्थ्यकर है कि मलेरियल है; इस ओर मेरा ध्यान बिलकुल ही नहीं था। मैं सोच रहा था कि यदि जीवन के इतने दिन बिना उपद्रव के नहीं कटे, इसमें बहुत गलतियाँ हुईं, अनेकों भूल-चूक हुए, बहुत सुख-दुख मिला, फिर भी ये सब मेरे अत्यंत परिचित हैं। इतने दीर्घ काल तक उनसे मेरा सामना तो हुआ ही है, बल्कि एक प्रकार से उनके प्रति मुझे स्नेह हो गया है। उनके लिए मैंने भी किसी को दोष नहीं दिया, मुझे कोई भारी दोष दे कर समय नष्ट नहीं करता। किंतु मैं न जाने किस नूतनता की ओर निश्चित हो कर चला जा रहा हूँ, यही निश्चयता मुझे विकल कर रही थी। आज नहीं कल, कह कर भी देर करने

का रास्ता नहीं था। इसकी बुराई-भलाई को भी मैं नहीं जानता था। इत। त इसका भला-बुरा मुझे किसी तरह अच्छा नहीं लगता था। जैसे-जैसे गाड़ी पास चलती जाती थी वैसे-वैसे किसी अज्ञात रहस्य के बोझ से मेरी छाती भारी होती जा रही थी। मेरे मन में न जाने कितनी बातें आने लगीं, इसका कोई हद-हिसाब नहीं। मेरे मन में आया कि निकट भविष्य में कहीं मुझे ही ले कर न एक भद्दा दल उठ खड़ा हो; मैं न तो इसे अपना सकूँगा और न इसका विरोध ही कर सकूँगा। यह सब सोचते-सोचते मेरा मन बरफ-जैसा जम गया। मैंने मुँह उठा कर देखा। राजलक्ष्मी चुपचाप खिड़की के बाहर देख रही थी। एकाएक ऐसा जान पड़ा कि कभी मैंने इसे प्यार न किया हो। इसी से मुझे प्रेम करना पड़ा—किसी तरफ से निकल कर भाग जाने का रास्ता नहीं बचा। इतनी बड़ी विडंबना संसार में किसके भाग्य में हुई है ! और एक ही दिन पहले इस द्विधा की चक्की से अपने को बचाने के लिए मैंने अपने को उसे समर्पित कर दिया था। मन में ही मैंने जोर से कहा था कि समस्त भलाई-बुराई के साथ तुम्हें ग्रहण करता हूँ लक्ष्मी ! आज मेरा मन ऐसा विक्षिप्त और इतना विद्रोही हो उठा ! संसार में कहने और करने में कितना अंतर है !

३

साँईथिया स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। दिन ढल रहा था। राजलक्ष्मी के गुमाश्ता काशीराम स्वयं नहीं आए थे। वे उधर की व्यवस्था करने में लगे थे। दो आदमियों को चिट्ठी दे कर उन्होंने भेज दिया था। उनके रुक्का से अवगत हो गया कि अत्र यानी उनका और गंगामाटी के और लोगों का कुशल है। मालकिन के आदेशानुसार चार बैलगाड़ियाँ प्रतीक्षा कर रही थीं। उनमें दो खुली थीं और दो बँधी हुई थीं। एक पर थोड़ा-सा पुआल रख कर खजूर की चटाई बिछी हुई थी। यह स्वयं मालकिन के लिए थी। दूसरी गाड़ी पर मामूली पुआल रखा हुआ था किंतु चटाई न थी। वह नौकर-चाकरों के लिए था। खुली हुई गाड़ियों पर माल-असबाब लादा जायगा। एवं यद्यापि स्यात् संकुलान— नहीं हो तो, पियादों से कहने पर वे बाजार से एक और गाड़ी लाकर हाजिर

कर देंगे। उन्होंने यह भी लिख दिया था कि भोजनादि से ,निवृत्त होकर शाम के पहले ही यात्रा कर देना वांछनीय है क्योंकि मालकिन की नींद में बाधा पड़ेगी। एवं इस विषय में विशेष लिखा गया था कि रास्ते में डर किसी बात का नहीं है। स्वच्छंदता से सो कर जाया जा सकता है।

मालकिन रुक्का पढ़ कर जरा हँसी। और जिसने पत्र दिया, उससे डर आदि के बारे में कुछ न पूछा। बोलीं—हाँ भाई, आस-पास में कहीं पोखरा-वोखरा है ? एक डुबकी लगा आऊँ ?

है क्यों नहीं, माजी ! वह वहाँ—

तब चलो भैया मुझे दिखला दो—इतना कह कर वे रतन को साथ ले कर उस आदमी के साथ एक अनजान तालाब में स्नान-मज्जनादि करने चली गईं। बीमारी प्रभृति का भय दिखला कर मैंने कुछ प्रतिवाद भी नहीं किया। यहाँ अगर वे कुछ खा-पी लेतीं तो वह भी बंद हो जाता।

लेकिन आज तो वे दस मिनट में ही लौट आईं। गाड़ी पर असबाब आदि लादा जा रहा था। एक मामूली बिछावन उस पर फैला दिया गया। राजलक्ष्मी ने मुझसे कहा—इसी समय तुम क्यों नहीं कुछ खा लेते ? सब कुछ तो लेती आई हूँ।

मैं बोला—दो—

एक पेड़ के नीचे आसन बिछा कर वह केले के पत्ते पर भोजन परोस रही थी। मैं निस्पृह हो कर उसे देख रहा था। इसी बीच एक मूर्त्ति सामने आई। खड़ा होकर वह बोला—नारायण। राजलक्ष्मी सिर ढाँकती हुई ऊपर देखने लगी। उसने कहा—आइए।

निमंत्रण का शब्द सुन कर मैंने भी सिर उठा कर देखा। एक साधु खड़ा था। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। उसकी अवस्था ज्यादा न थी, बीस-इक्कीस के भीतर ही होगी, किंतु वह जितना सुकुमार था उतना ही सुंदर भी। चेहरा कृशता की ओर—कुछ लंबा होने के कारण जान पड़ा ; किंतु रंग निखरा सोना जैसा था। आँख, भौंह और चेहरे की बनावट को निर्दोष ही कहना चाहिए। पुरुष का ऐसा रूप मैंने शायद कहीं नहीं देखा है। मुझे ऐसा ही मालूम हुआ। उसका गेरुआ वस्त्र जगह जगह फटा-चिटा था।

उनमें गाँठें पड़ी हुई थीं। शरीर पर के पंजाबी कुरते की जैसी जीर्ण दशा थी, पैरों के पंजाबी जूते भी उसी तरह के थे। यदि वे भूल जायँ तो अफसोस की जरा भी बात नहीं रहे। राजलक्ष्मी ने जमीन पर सिर टेक कर प्रणाम किया। फिर उसने आसन बिछा दिया। मुँह उठा कर बोली—जब तक मैं थाली परोसती हूँ तब तक मुँह-हाथ धोने के लिए जल दिलवा दूँ?

साधु ने कहा—हाँ, उसे तो दीजिए, पर आपके पास मैं दूसरे काम के लिए आया था।

राजलक्ष्मी बोली—अभी तो आप खाने बैठिए। और बातें पीछे होंगी। घर लौटने के लिए टिकट चाहिए न! मैं खरीद दूँगी। यह कह कर, मुँह फेर कर, उसने हँसी रोक ली।

साधुजी गंभीर हो कर बोले—नहीं, उसकी आवश्यकता नहीं है। मुझे मालूम हुआ है कि आप लोग गंगामाटी जा रहे है। मेरे साथ एक भारी बक्स है। आप लोग उसे अपनी गाड़ी पर रख लें तो अच्छा हो। मैं भी उसी ओर जाऊँगा।

राजलक्ष्मी ने कहा—यह कौन-सी बड़ी बात है? किंतु आप स्वयं?

मैं पैदल ही चला जाऊँगा। ज्यादा दूर नहीं है, छः-सात कोस होगा।

राजलक्ष्मी और कुछ न बोली। रतन को पुकार कर उसने पानी दे देने को कह दिया। वह स्वयं साधुजी की थाली परोसने लगी। यह राजलक्ष्मी का अपना काम था। इस काम में ऐसा जोड़ा मिलना कठिन है।

साधुजी भोजन करने बैठे। मैं भी बैठा। राजलक्ष्मी मिठाई का बरतन ले कर पास में ही बैठी रही। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—साधुजी, आपका नाम?

साधुजी खाते-खाते बोले—वज्रानंद!

राजलक्ष्मी ने कहा—बाप रे बाप! और पुकारने का नाम? उसका चेहरा दबी हुई मुसकराहट से चमक उठा था। यह उसके कहने के ढंग से ही स्पष्ट मालूम होता था। वह हँसी नहीं। मैं भी खाने लगा। साधुजी बोले—उस नाम के साथ तो अब कोई संबंध नहीं रहा। न मेरा और न दूसरों का।

राजलक्ष्मी हाँ में हाँ मिलाती हुई बोली—हाँ, ठीक तो है। पर थोड़ी देर बाद फिर पूछ बैठी—घर से निकले कितने दिन हुए?

प्रश्न अत्यंत अभद्र था। मैंने देखा तो राजलक्ष्मी के मुँह पर हँसी तो न थी, पर मैं पियारी का मुँह प्रायः भूल गया था। अभी राजलक्ष्मी को देख कर मुझे वही स्मरण हो आया। वही पुराने दिनों की सरसता उसकी आँख, उसके मुँह और कंठस्वर में सजीव होकर लौट आई।

साधु एक ग्रास निगल कर बोले—आपका यह कोलाहल संपूर्णतः अनावश्यक है।

राजलक्ष्मी जरा भी अप्रसन्न न हुई। अच्छे आदमी की तरह सिर हिला कर बोली—सो ठीक है। एक बार मुझे भी भोगना पड़ा था—इसके बाद मुझे लक्ष्य कर वह बोली—हाँ जी, तुम ऊँट और टट्टू की कहानी तो सुना दो। साधुजी को एक बार सुना दो तो—अहा हा! घर पर कोई इनका नाम ले रहा है।

साधुजी हँसी रोकने की चेष्टा करने लगे। उनका गला फँस गया। अभी तक उनसे मेरी बातचीत न हुई थी। मालकिन महाशया की आड़ में मैं अभी तक अनुचर बना ही बैठा था। गला सम्हाल कर साधुजी बोले—एक बार आप भी सन्यासी हो......

मेरे मुँह में पूरी थी। ज्यादा बात करने का समय नहीं था। दाहिने हाथ की चार उँगलियाँ उठा कर बोला—ऊ-हूँ-हूँ—एक बार नहीं, एक बार नहीं......

इस बार साधुजी की गंभीरता न रही। वे और राजलक्ष्मी खिलखिला कर हँस पड़े। हँसी रोक कर साधुजी बोले—तो फिर लौट क्यों आए?

पूरी का कौर अभी भी लील नहीं सका था। मैंने केवल राजलक्ष्मी को दिखला दिया।

राजलक्ष्मी तर्जन कर उठी—हाँ, ठीक कहते हो। अच्छा, एक बार मेरे लिए—यह भी सच नहीं है—आये खूब बीमार पड़ कर—किंतु और तीन बार?

मैंने कहा—वह इसी तरह—मच्छड़ काटने से। मच्छड़ों का काटना मेरा चमड़ा सह नहीं सका। अच्छा—

साधुजी हँस कर बोले—मुझे वज्रानंद कह कर ही पुकारिएगा। आपका नाम—

मेरे कुछ कहने के पहले ही राजलक्ष्मी ने जवाब दिया। उसने कहा—उनके नाम से क्या होगा? आप से वे उमर में बड़े हैं, इसलिए भैया कहके पुकारिएगा। और मुझे यदि आप भाभी कहेंगे तो मैं रंज न होऊँगी। उमर में मैं भी तो चार-छः साल बड़ी होऊँगी।

साधुजी का मुँह लाल हो उठा। मुझे भी ऐसी आशा न थी। विस्मय से मैंने देखा कि यह वही पियारी है। यह वही स्वच्छ, सहज और स्नेहातुरा आनंदमयी है। यह वही है जो मुझे किसी तरह भी श्मशान नहीं जाने देती थी और किसी तरह राज्य-संसर्ग में टिकने नहीं दिया था। यह लड़का किसी के स्नेह-बंधन को तोड़ कर चला आया है। इससे राजलक्ष्मी का हृदय आंदोलित हो उठा है। वह इसे घर लौटा देना चाहती है।

साधु बेचारा लज्जा के धक्के को सम्हाल कर बोला—देखिए, हम सन्यासी लोग भैया कह कर तो किसी को पुकारते नहीं हैं।

राजलक्ष्मी जरा भी अप्रतिभ न हुई। उसने कहा—क्यों नहीं! भैया की बहू को सन्यासी लोग तो मौसी कह कर नहीं पुकारते, फूफी कह कर भी नहीं—यह छोड़ कर मुझे और क्या कह कर पुकारोगे—सुनूँ!

लड़का निरुपाय हो कर अंत में हँसता हुआ बोला—अच्छा, बेश। आप लोगों के साथ और भी छः-सात घंटे रहना है। इस बीच यदि आवश्यकता पड़ी तो वही कह कर पुकारूँगा।

राजलक्ष्मी ने कहा—तो पुकारो न एक बार!

साधु हँस कर बोला—आवश्यकता पड़ेगी तो पुकारूँगा—झूठ-मूठ पुकारना उचित न होगा। राजलक्ष्मी उसकी पत्तल पर चार संदेश और बरफी परसती हुई बोली—अच्छा, बेश तो, इसी से मेरा काम चल जायगा। आवश्यकता पड़ने पर मैं तुम्हें क्या कह कर पुकारूँगी, यह नहीं समझती। मुझे दिखला कर बोली—इन्हें तो मैं सन्यासी महाराज कह कर पुकारती थी। सो

अब नहीं हो सकता—गड़बड़ हो जायगा। तुम्हें नहीं होगा तो साधु देवर कह कर पुकारूँगी—क्या राय है ?

साधुजी और तर्क न कर सके। गंभीरता से बोले—बेश, अच्छा तो।

और सब बातों में वे चाहे जैसे हों, पर, देखा कि उनमें आहारादि का रसबोध था। पश्चिम की अच्छी मिठाइयों की वे कदर करते थे। उन्होंने किसी वस्तु का असम्मान नहीं किया। एक व्यक्ति तो बड़े जतन और स्नेह से परोसती जा रही थी और दूसरे चुपचाप, बिना संकोच के उसे निगलते चले जा रहे थे। पर मैं उद्विग्न हो उठा। मन-ही-मन समझ गया कि साधुजी पहले चाहे जो करते हों, पर अभी तक इतनी प्रचुर मात्रा में उपादेय भोज्य सामग्री सेवन करने का मौका नहीं मिला है। किंतु दीर्घकालव्यापी त्रुटि को कोई एक बार में ही दूर करना चाहे तो उसे देख कर दर्शकों को धैर्य नहीं रह जाता। राजलक्ष्मी के और भी चार-पाँच पेड़े-बरफी देते ही मेरी नाक और मुँह से एक दीर्घ निश्वास निकल पड़ा। राजलक्ष्मी और उसके नए अतिथि एकदम चौंक उठे। राजलक्ष्मी मुझे देख कर जल्दी से बोल उठी—तुम रोगी आदमी हो, उठ कर हाथ-मुँह क्यों नहीं धो लेते ? हम लोगों के साथ बैठे रहने की आवश्यकता नहीं है।

साधुजी मेरी ओर, राजलक्ष्मी की ओर और हाँड़ी की ओर देख कर बोले—दीर्घ श्वास लेने की बात ही है। कुछ तो नहीं बचा।

राजलक्ष्मी बोली—और है। इतना कह कर मेरी ओर क्रुद्ध दृष्टि से देखने लगी।

ठीक इसी समय रतन पीछे से आ कर बोला—मा, चूड़ा तो बहुत मिलता है। पर दूध या दही कुछ भी नहीं मिलता।

साधु बेचारा अतिशय अप्रतिभ होकर बोला—मैंने आप लोगों के आतिथ्य पर भयानक अत्याचार किया। इतना कह कर वह उठना ही चाहता था कि राजलक्ष्मी बोल उठी—मेरे सिर की कसम है साधुजी, अगर उठे। मैं सब-के-सब उठा कर फेंक दूँगी।

साधुजी विस्मित हो सोचने लगे कि यह कैसी विचित्र औरत है जो क्षण भर में ही इतनी घनिष्ठ हो उठी। राजलक्ष्मी का पियारी का इतिहास जो नहीं

जानता, उसके लिए यह विस्मय की बात है ही। इसके बाद वह हँस कर बोला—मैं सन्यासी आदमी ठहरा। मुझे खाने-पीने में कोई बाधा नहीं, मगर आपको भी तो खाना चाहिए। कसम खाने से तो पेट भर नहीं जायगा।

राजलक्ष्मी जीभ काट कर गंभीरता से बोली—छिः-छिः ऐसी बात स्त्रियों को नहीं कहना चाहिए भाई। मैं यह सब नहीं खाती, यह सब मुझसे बरदाश्त नहीं होता। नौकरों को खाने के लिए भी यथेष्ट है—रात भर की ही बात है न, जो भी मिल जाय, एक मुट्ठी चूड़ा-वूड़ा खा कर पानी पी लेने से मेरा काम चल जायगा। यदि तुम भूखे ही उठ जाओगे तो मेरा खाना नहीं हो सकेगा। विश्वास न हो तो उनसे पूछ लो। इतना कह कर उसने मुझ से अपील की। इतनी देर बाद मुझे भी बोलना पड़ा। मैं बोला—यह सच है, मैं हलफ ले कर कह सकता हूँ। साधुजी, मिथ्या तर्क करने से कोई लाभ नहीं भाई, हो सके तो बरतन को औंधा उलटवा देने तक खाते चले जाओ; यह सब और काम में नहीं आयगा। इतना सामान रेलगाड़ी में आया है—भूखों मर जाने पर भी कोई उसे नहीं खा सकता। यह सच्ची बात है।

साधुजी कहने लगे—मगर मिठाई तो गाड़ी में नहीं छुआती।

मैं बोला—इसकी मीमांसा मैं इतने दिन बाद भी नहीं कर सका हूँ। तुम एक ही बैठक में इसे समाप्त कर दोगे ? इससे तो काम खतम करके उठ कर बैठ जाना कहीं अच्छा है, नहीं तो सूर्यास्त होने पर चूड़ा-पानी भी मुँह में नहीं जायगा। तुम तो अभी साथ रहोगे, हो सका तो रास्ते में समझा देना—उससे यदि काम नहीं निकलेगा तो कुछ हरज भी न होगा। इस समय जो होता है वही होने दो।

साधु ने पूछा—दिन भर इन्होंने कुछ नहीं खाया है ?

मैं बोला—नहीं। कल भी न जाने क्या था ? सुनने में आया कि दो-चार फल-मूल के सिवा मुँह में कुछ भी नहीं गया है।

रतन पीछे ही था, सिर हिला कर कुछ कहते-कहते मालकिन की आँख बचा कर इशारे से चुप हो गया।

साधु ने राजलक्ष्मी को देख कर कहा—इससे आपको कष्ट नहीं होता ?

जवाब में वह केवल हँसी, किंतु मैं बोला—इसे आप प्रत्यक्ष या अनुमान,

किसी तरह से भी नहीं जान सकते। हाँ, आँखों से देख कर दो-एक दिन जोड़े जा सकते हैं।

राजलक्ष्मी प्रतिवाद करती हुई बोली—देखा है तुमने आँखों से? कभी नहीं।

इसका न तो मैंने कोई जवाब ही दिया और न साधुजी ने कोई प्रश्न ही किया। समय देख कर, भोजन समाप्त करके वे उठे।

रतन और उसके दो साथियों को खाते-पीते कुछ और देर लगी। राजलक्ष्मी ने अपने लिए क्या प्रबंध किया सो वही जाने। हम लोग गंगामाटी को चले। उस समय शाम हो चुकी थी। एकादशी का चंद्रमा अभी साफ नहीं हुआ था। कहीं अंधकार भी नहीं था। असबाब की गाड़ियाँ पीछे थीं। राजलक्ष्मी की गाड़ी बीच में थी। हम लोगों की गाड़ी थी सबसे आगे—अच्छी होने के कारण। साधुजी को मैंने पुकारा—भाई साहब, तुम्हें पैदल चलने की तो कोई कमी नहीं। आज भर तो मेरी गाड़ी पर चले आओ।

साधु बोला—साथ ही तो चलता हूँ। थकूँगा तो बैठ लूँगा। अभी जरा पैदल ही चलने दीजिए।

राजलक्ष्मी मुँह निकाल कर बोली—तब मेरे बॉडीगार्ड हो कर चलो ठाकुर पो। तुम्हारे साथ बातें करते चलूँगी। उसने साधुजी को अपनी गाड़ी के पास बुला लिया। सामने ही मैं था। बीच-बीच में गाड़ीवान और बैलों के उपद्रव के बीच उनकी बातचीत का कुछ अंश सुन लेता था। राजलक्ष्मी ने कहा—तुम्हारा घर इधर नहीं है। हम ही लोगों के तरफ है। तुम्हारी बातों से इसका पता चलता है, लेकिन आज कहाँ जा रहे हो, सच बताओ तो भाई?

साधु ने कहा—गोपालपुर।

राजलक्ष्मी ने पूछा—गंगामाटी से वह कितनी दूर है?

साधु ने जवाब दिया—आपकी गंगामाटी को भी नहीं जानता और अपने गोपालपुर को भी नहीं। संभवतः ये दोनों नजदीक-पास में ही होंगे। सुना तो ऐसा ही है।

तो इतनी रात बीते उस गाँव को कैसे पहचानोगे और जिसके घर जा रहे हो, उसे कैसे पहचानोगे?

साधु हँस कर बोला—गाँव पहचानने में कोई कठिनाई न होगी। शायद रास्ते पर ही एक सूखा हुआ तालाब है। उसके कोस भर दक्षिण जाने से वह गाँव मिल जायगा। घर ढूँढ़ने में भी दुख नहीं होगा क्योंकि सब-के-सब अनजान हैं। किसी पेड़ के नीचे थोड़ी जगह मिल जायगी, ऐसी उमीद है।

राजलक्ष्मी व्याकुल होकर बोली—इस शीत की रात्रि में गाछ तले! एक मामूली कंबल के सहारे! मैं इसे नहीं सह सकूँगी ठाकुर पो!

उसके उद्वेग से मुझे भी चोट लगी। साधु थोड़ी देर तक चुप रहा। फिर बोला—हम लोगों को तो घर-द्वार नहीं है। हम लोग तो पेड़ तले ही रहते हैं दीदी!

राजलक्ष्मी कुछ देर चुप रह कर बोली—मगर दीदी के सामने नहीं। अपने भाई को रात के समय मैं निराश्रय नहीं छोड़ सकती। आज मेरे साथ चलो। कल तुम्हें स्वय भेज दूँगी।

साधु चुप रहा। राजलक्ष्मी ने रतन को बुला कर कह दिया कि बिना उसकी आज्ञा के चीजें गाड़ी से न उतारी जायँ। अर्थात् सन्यासी महाराज का बक्स रात भर के लिए रुक जाय।

मैं बोला—क्यों ठंढ़े में कष्ट कर रहे हो भैया, मेरी गाड़ी पर चले आओ न!

साधु कुछ सोच कर बोला—अभी रहिए। दीदी के साथ बातें करता जा रहा हूँ।

मैंने भी सोचा कि ठीक है। नूतन संबंध स्वीकार करने के लिए साधुजी के दिल में द्वद्व चल रहा है। यह मैं समझ रहा था। अंत तक वे बच न सके। स्वीकार करना ही पडा। मैं बार-बार सोचने लगा कि कह दूँ—भाई, भाग जाते तो अच्छा होता, कहीं मेरी जैसी दशा हुई तो?

मैं चुप रहा।

दोनों में धड़ल्ले से बातचीत होने लगी। बैलगाड़ी के झटके एवं नींद के झकोरे के बीच में उन लोगों की बातें भी सुन लेता था। यदि कुछ बाकी भी रह जाता तो उसे कल्पना से पूरा कर लेता। रास्ता बुरी तरह नहीं कटा।

मैं तंद्राभिभूत हो रहा था। पूछे जाते सुना—हाँ आनंद, तुम्हारे बाक्स में क्या क्या है भाई!

कुछ किताब और दवा-ववा है दीदी।

दवा क्यों? तुम डाक्टर हो?

मैं सन्यासी हूँ। अच्छा, आपने नहीं सुना दीदी, आपकी ओर कालरा फैल रहा है!

नहीं जानती। मेरे गुमाश्ता ने भी तो यह नहीं बतलाया। अच्छा, ठाकुर पो, तुम कालरा अच्छा कर सकते हो!

साधु जरा मौन रह कर बोला—अच्छा करने के मालिक तो हम लोग नहीं हैं दीदी, हम लोग तो केवल दवा देकर चेष्टा कर सकते हैं। मगर इसकी आवश्यकता है, यह उन्हीं का आदेश है।

राजलक्ष्मी बोली—सन्यासी तो दवा देते हैं, लेकिन दवा देने के लिए ही तो सन्यासी नहीं हुआ जाता! अच्छा आनंद, तुम इसीलिए सन्यासी हुए हो भाई!

साधु ने कहा—सो ठीक से नहीं बता सकता दीदी। तब देश की सेवा करने का भी हम लोगों का व्रत है।

हम लोगों का! तब समझती हूँ कि तुम लोगों का एक दल है ठाकुर पो।

साधु चुप रहा। राजलक्ष्मी ने फिर कहा—किंतु सेवा करने के लिए सन्यासी होने की आवश्यकता नहीं है, भाई। तुम्हें इस तरह की बुद्धि किसने दी, कहो तो!

जान पड़ता है कि साधुजी ने इस प्रश्न का भी कुछ उत्तर नहीं दिया क्योंकि बहुत देर तक कुछ बातचीत न हुई। दस मिनट के बाद सुना, साधुजी कह रहे थे—दीदी, मैं बहुत छोटा सन्यासी हूँ, मुझे वह नाम न भी दिया जाय तो काम चल जायगा। केवल अपना थोड़ा-सा भार फेंक कर दूसरों का लाद लिया है।

राजलक्ष्मी चुप रही। साधुजी कहने लगे—शुरू से ही आप मुझे घर लौटा देने की कोशिश कर रही हैं। शायद दीदी होने के कारण। हम जिनका भार लेने को घर से निकल पड़े हैं, वे कितने दुर्बल, कितने रुग्ण, कैसे निरुपाय और कितनी संख्या में हैं; यह यदि आप जानतीं तो शायद कभी लौट जाने को न कहतीं।

राजलक्ष्मी ने इसका भी जवाब न दिया। मैं समझ गया कि इस प्रसंग से दोनों में मेल हो जायगा। साधुजी ने ठीक जगह पर निशाना लगाया है। देश की स्थिति, सुख-दुख को मैं स्वयं खूब समझता था, फिर इतनी छोटी उमर में साधुजी ने इसे अच्छी तरह अपना लिया है। सुनते-सुनते मैं सोने के बजाय रोने लगा। क्षोभ, क्रोध, दुख और व्यथा से हृदय जलने लगा। इतनी देर तक राजलक्ष्मी ने और न पूछा। इस चुप्पी से बेचारा साधु न जाने क्या कहता होगा ? पर इस चुप्पी का अर्थ मुझ से गुप्त नहीं रहा।

देश का अर्थ होता है गाँव-देहात जहाँ चौपट जनता रहती है। साधुजी गाँवों की कहानी ही कह रहे थे। पानी, प्राण, स्वास्थ्य सभी चीजों का एकदम अभाव। जंगल की गंदगी से हवा आदि रुका हुआ—ज्ञान, विद्या, धर्म, जहाँ सब-के-सब बे-तरतीब हों। इन दुःखों का हाल भी हम छापे के अक्षरों में पढ़ते हैं, आँखों से देखते हैं। इसका न होना भी कितना बड़ा न होना है। मुझे मालूम हो रहा था कि आज से पहले इस बात को मैं नहीं जानता था। देश की गरीबी एक-एक व्यक्ति की भयंकर गरीबी है। पहले ऐसी मेरी धारणा न थी। सुनसान मैदान से हो कर हम जा रहे थे। ओस से धूल गीली हो गई थी। गाड़ी के पहियों की खड़खड़ाहट और बैलों के चलने का शब्द कभी-कभी सुनाई पड़ता था। आकाश की चाँदनी पांडुर होकर आदृष्टि फैल रही थी। जाड़े की रात में हम लोग धीरे-धीरे जा रहे थे। नौकरों में कितने जगे हैं, कितने सोए, इसका पता न था। वे सकल अंग ढँक कर चुप सो गए थे। अकेले सन्यासीजी मेरे साथ चल रहे थे। सूनेपन में उन्हीं के मुँह देश के अज्ञात भाई-बहिनों की वेदना की कहानी धू-धू कर निकल रही थी। शस्य श्यामला भूमि कैसे शुष्क हो गई, यहाँ का माल-जाल कैसे विदेशों में चला गया ? किस तरह यहाँ के लोगों का शोषण हुआ ? वह युवक इस शृंखलाबद्ध इतिहास का सजीव वर्णन कर रहा था।

सहसा साधु ने राजलक्ष्मी को चाळ कर पूछा—जान पड़ता है कि मैंने तुम्हें पहचान लिया है, दीदी।

मन में आता है कि तुम जैसी स्त्रियों को ले जाकर एक बार उन भाई-बहनों को दिखला दूँ।

पहले तो राजलक्ष्मी कुछ न बोल सकी। फिर रुँधे कंठ से बोली—मुझे यह सुयोग नहीं मिल सकता है, आनंद ! मैं स्त्री हूँ, इसे कैसे भूल जाऊँ, भैया ?

साधु ने कहा—क्यों नहीं मिल सकता, बहन। तुम स्त्री हो, यदि इसे भूल जाओ तो तकलीफ से वहाँ ले जाकर दिखलाने से क्या लाभ ?

४

साधु ने पूछा—गंगामाटी तुम्हीं लोगों की जमींदारी में है, दीदी ?

राजलक्ष्मी मुसकरा कर बोली—देख क्या रहे हो, भाई ? हम लोग एक बड़े भारी जमींदार हैं।

इस बार साधु भी हँसा। बोला—बड़ी जमींदारी से बड़ा सौभाग्य नहीं मिलता, दीदी। उसकी बात से उसकी पार्थिव अवस्था पर मुझे संदेह हुआ, किन्तु राजलक्ष्मी उस ओर नहीं गई। वह सरल भाव से स्वीकार करके बोली—सच बात है, आनंद। इन सबों से जितनी दूर रहा जाय उतना ही अच्छा होता है।

अच्छा दीदी, उनके अच्छे हो जाने पर तो तुम शहर को लौट जाओगी ?

लौट जाऊँगी। किंतु आज से बहुत दूर की बात है, भाई।

साधु ने कहा—यदि हो सके तो फिर न लौटना, दीदी। इन अभागों को जब तुम छोड़ कर चली गई हो तभी इनका दुःख-दैन्य चौगुना बढ़ गया है। जब पास थी, तब भी इन लोगों को तुमने दुख न दिया होगा, किंतु दूर रह कर इतना निर्मम, दुख न दे सकी होगी। जैसे दुख दिया है वैसे ही दुख में हाथ भी बटाया है। दीदी, यदि देश का राजा देश में ही रहे तो शायद दुख का स्रोत गले तक न उमड़ आय। इस गले तक आ जाने का क्या मतलब है ? शहर में रह कर सब तरह से आराइश की चीजें जुटाने का अभाव और दुरुपयोग क्या है, इसे यदि तू एक बार आँख खोल कर देख लेती, दीदी—

आनंद, घर के वास्ते तुम्हारा मन नहीं घबड़ाता ?

साधु ने संक्षेप में कहा—नहीं। वह बेचारा समझ नहीं सका। मैं समझ गया कि राजलक्ष्मी ने उस बात को दबा दिया, महज इसलिए कि वह इसे बरदाश्त नहीं कर सकती थी।

राजलक्ष्मी थोड़ी देर तक चुप रही। फिर दर्द-भरी आवाज में पूछा—तुम्हारे घर पर कौन-कौन हैं?

साधु बोला—किंतु अब तो मेरा घर नहीं है।

इस बार भी थोड़ी देर चुप रह कर राजलक्ष्मी बोली—अच्छा आनंद, इसी उमर में सन्यासी हो जाने से तुम्हें शांति मिली है?

साधु ने हँस कर कहा—अरे बाप रे! सन्यासी को इतना लोभ! नहीं दीदी, मैं केवल दूसरों के दुख का थोड़ा-सा भार लेना चाहता हूँ। सिर्फ वही मुझे मिला है।

इस बार राजलक्ष्मी चुप हो रही। साधु ने कहा—मालूम होता है, वे सो गए हैं, अब जरा उनकी गाड़ी में जा कर बैठूँ। अच्छा दीदी, यदि दो चार दिन तुम लोगों का अतिथि बन कर रहूँ तो वे नाराज तो न होंगे?

राजलक्ष्मी ने हँस कर कहा—कौन? तुम्हारे भाई साहब।

साधु ने भी हँस कर कहा—अच्छा, वे ही।

राजलक्ष्मी बोली—मैं रंज होऊँगी कि नहीं, यह तो तुमने नहीं पूछा। अच्छा एक बार गंगामाटी तो चलो, फिर देखा जायगा।

साधुजी ने क्या कहा, यह मैं नहीं सुन सका। जान पड़ता है वे चुप हो रहे थे। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे गाड़ी के पास आकर मुझे पुकारा—भैया, आप सो गए क्या?

मैं जगा हुआ था। लेकिन कुछ जवाब न दे सका। मेरे निकट ही साधुजी अपना फटा हुआ कंबल लपेट कर सो गए। एक बार इच्छा हुई कि थोड़ा और घसक कर बेचारे को जगह दे दूं। इधर-उधर हिल-डुल करने से शायद उन्हें मेरी नींद टूट जाने का संदेह होता और यदि मैं जगा रहता तो कहीं रात भर देश की गंभीर समस्या की आलोचना होने लगती; इस विचार से मैं चुपचाप लेटा रहा।

मैं नहीं जान सका कि गंगामाटी में गाड़ी कब पहुँची। गाड़ी जब नए मकान के दरवाजे पर आ कर खड़ी हुई तब मुझे मालूम हुआ। सबेरा हो गया था। इकट्ठे चार बैलगाड़ियों के विविध एवं विचित्र कोलाहल से चारो ओर भीड़ भी कम नहीं हुई। रतन ने पहले ही जना दिया था कि इस गाँव में

मुख्यतः छोटी जाति के लोग ही रहते हैं। रंजीदगी में भी वह झूठ नहीं बोला था। जाड़े-पाले में पचास-साठ छोटी जाति के लड़के नग्न एवं अर्द्धनग्न अवस्था में उठ कर तमाशा देखने आए थे। मा-बाप का दल भी इसके बाद ताकने-झाँकने लगा। उनके कपड़े-लत्ते और वेष-भूषा से दूसरे जितना भी इनकी कुलीनता का खयाल करें, पर रतन के मन में जरा भी संशय न रहा। वे सबेरे ही सो कर उठे थे। उनका मुँह बिरनी या हड्डे के छत्ते की तरह भयंकर प्रतीत होता था। मालकिन के दर्शन के लिए व्यग्र हो कुछ लड़के तो सटते आ रहे थे। रतन ने उन्हें इस तरह डाँट कर खदेड़ दिया कि गाड़ीवान न होते तो शायद रक्तपात हो जाता। रतन इससे जरा भी न लजाया। मेरी ओर देख कर बोला—दुनिया के सारे छोटे लोग यहीं बसते हैं। देखिए न बाबूजी, साले छोटों की हिमाकत—जान पड़ता है कि रथ-यात्रा देखने आए हैं। हमारी ओर के भले आदमी यहाँ रह सकते हैं! अभी सब छू-छा कर एक कर देंगे।

'छुआ-छूत' सबसे पहले राजलक्ष्मी ने सुन लिया। वह अप्रसन्न-सी हो गई।

साधुजी अपना बक्स उतारने में व्यस्त थे। अपना काम खतम कर लेने के बाद वे एक लोटा निकाल कर छोटे लोगों के लड़कों से कहने लगे—अरे लड़के, जाओ तो भाई, यहाँ किधर अच्छा पोखरा-वोखरा है, एक लोटा पानी डुबा लाओ—चाय बनाऊँगा। उनके हाथ में उन्होंने लोटा धरा दिया। सामने खड़े एक प्रौढ़ व्यक्ति से बोले—चौधरी, नजदीक-पास में कहीं किसी के यहाँ गाय हो तो बताओ भाई—एक कनवाँ दूध ले आऊँ। गाँव की टटकी-खाँटी चीज है—चाय का रंग बहुत सुंदर होगा, दीदी—इतना कह कर वे मुझे और अपनी ओर देखने लगे। किंतु दीदी ने इस उत्साह में तनिक योग न दिया। अप्रसन्न मुँह से जरा हँस कर बोली—रतन, जाओ तो भाई, लोटा माँज कर पानी ले आओ।

रतन के मिजाज की खबर इसके पहले ही दे चुका हूँ। इसके बाद सबेरे जाड़े-पाले में जब उसे एक अनजान साधु के लिए, अनजान तालाब से पानी ले आना पड़ा, तब वह अपने को सम्हाल न सका। क्षण भर में ही उसका सारा क्रोध एकदम छोटे लड़के पर उतरा। उसे धमका कर बोला—बदमाश, पाजी, साला! तुमने लोटा क्यों छू दिया? चल हरामजादा, लोटा माँज कर

जल में डुबा देना—इतना कह कर उस लड़के को आँख और मुँह चमका कर मानों गरदनिया दे कर ले चला।

उसकी करनी देख कर साधु हँसने लगा। मैं भी हँसा। राजलक्ष्मी स्वयं भी लजाती हुई हँस कर बोली—गाँव में तो तुमने तहलका मचा दिया, आनंद! साधुओं को रात बीतने के पहले ही शायद चाय चाहिए!

साधु बोला—गृहस्थों के लिए रात नहीं बीती कि साधुओं के लिए भी नहीं? क्या खूब! मगर दूध का जुगाड़ तो करना ही चाहिए। अच्छा, घर में हेल कर देखा जाय कि लकड़ी-काठ, चूल्हा-चौका है कि नहीं। ओ चौधरीजी, चलो न भाई, किसके यहाँ गाय है, जरा दिखला दो। दीदी, हाँड़ी में बरफी आदि कुछ है कि नहीं या गाड़ी में ही समाप्त कर दिया उसे?

राजलक्ष्मी हँस पड़ी। टोले-पड़ोसे की दो चार स्त्रियाँ जो दूर से खड़ी होकर देख रहीं थीं, उन्होंने मुँह फेर लिया।

इसी समय काशीराम कुशारी महाशय अस्त-व्यस्त हुए आ पहुँचे। उनके साथ में तीन-चार आदमी थे। किसी के सिर पर ओड़े में तर-तरकारी थी, किसी के हाथ में भर टहरी दूध, किसी के हाथ में दही का नादा और किसी के हाथ में बड़ी-बड़ी मछलियाँ। राजलक्ष्मी ने उन्हें प्रणाम किया। वे आशीर्वाद देकर सामान लाने में जो देर हुई उसके लिए बहुत तरह से कैफिअत देने लगे। मुझे आदमी अच्छा मालूम पड़ा। उमर पचास से अधिक हो चुकी थी। दुबला-पतला आदमी, दाढ़ी-मूँछ साफ, रंग गोरा—मैंने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने भी प्रति-नमस्कार किया। किंतु साधुजी इस प्रचलित शिष्टाचारों के पास भी न फटके। तरकारी की टोकरी उतरवा कर वे एक-एक की प्रशंसा करने लगे। दूध खाँटी है, इस विषय में उन्होंने अपना मत प्रकट किया। मछलियों के वजन का अंदाज लगा कर उन्होंने उसके स्वाद का विवेचन भी कर दिया।

साधु महाशय के आने की खबर गुमाश्ताजी को पहले से न थी, इसलिए कुशारी महाशय को कुछ कुतूहल-सा हुआ। राजलक्ष्मी बोली—सन्यासी को देख कर डरिये मत कुशारी महाशय, ये मेरे भाई हैं। फिर हँस कर मीठे स्वर में बोली—बार-बार गेरुआ वस्त्र छुड़वाना मेरा काम-सा हो गया है।

साधुजी ने भी इसे सुना। वे बोले—यह काम उतना आसान न होगा,

दीदी—और मेरी ओर देख कर हँसे। इसका मतलब मैं भी समझ गया और राजलक्ष्मी भी समझ गई। जवाब में केवल हँस कर बोली—देखा जायगा।

घर में झाँक कर देखा गया तो कुशारी महाशय का इंतजाम कोई बेजा न था। जल्दीबाजी में पुरानी कचहरी को मरम्मत करा के उन्होंने उसे रहने लायक बना दिया था। भीतर रसोई और भंडार घर के अतिरिक्त दो और कमरे थे। मिट्टी का घर था। फूस का छप्पर किंतु बेस ऊँचा और बड़ा। बाहर में बैठकखाना भी बहुत अच्छा था। आँगन बड़ा था। चारो ओर मिट्टी की चहारदिवारी थी। एक ओर एक छोटा कुँआ था। उसके अगल-बगल में दो-चार तगड़ और शेफाली के पेड़ थे। दूसरी ओर तुलसी, जूही और मल्लिका की झाड़ी थी। सब तरह से जगह बहुत अच्छी थी। देख कर मन तृप्त हो गया।

सब से अधिक उत्साह सन्यासी महाशय को था। सभी चीज़ों को देख कर उन्होंने उत्साह प्रकट किया। मालूम होता था कि उन्होंने ऐसा कभी देखा ही न था। मैं भीतर-ही-भीतर प्रसन्न हुआ। रसोई घर में राजलक्ष्मी अपने भैया के लिए चाय बना रही थी। इसलिए उसका चेहरा तो न देख सका, पर हृदय का भाव छिपा भी न रहा। केवल रतन ने साथ न दिया। वह फुला कर खंभे से ओटंघ कर चुपचाप बैठा था।

चाय तैयार हुई। कल की बची मिठाई के साथ साधुजी दो प्याला चाय सिरोक गए। फिर मुझसे कहने लगे—चलिएगा, जरा घूम-घाम कर गाँव देख आया जाय। बाँध यहाँ से अधिक दूर नहीं है, उधर ही से नहाते भी आवेंगे। यहाँ भद्र तो कोई है नहीं, तो लजाने से क्या मतलब ! जायदाद खूब है, देख कर लालच लगता है।

राजलक्ष्मी हँस कर बोली— मैं जानती हूँ। सन्यासी ऐसे ही होते हैं।

साथ में एक ब्राह्मण रसोइया और एक नौकर भी आया था। वे दोनों रसोई की टंट-घंट करने लगे। राजलक्ष्मी कहने लगी—महाराज. ऐसी ताजी मछली तुम्हारे भरोसे छोड़ देने को जी नहीं चाहता। नहा कर आने के बाद मैं स्वयं ही बनाऊँगी। इतना कह कर वह हम लोगों के साथ चलने की तैयारी करने लगी।

अभी तक रतन ने किसी भी काम में योग न दिया था। चलते समय उसने कहा—माजी, बाँध या तालाब, उसे यहाँ के लोग चाहे जो भी कहते हों, उसमें आप स्नान न कीजिएगा। एक-एक हाथ के जोंक हैं।

राजलक्ष्मी डर गई। उसका चेहरा फीका पड़ गया।—क्या रतन, बहुत जोंक हैं!

रतन ने सिर हिला कर कहा—सुनने में तो यही आया है।

साधु डाँट कर बोला—जी हाँ, सुन लिया होगा इसने। साला नौआ, सोचते-सोचते अच्छा फंदा निकाल लिया। इसके मन का भाव और जाति का परिचय साधु ने पहले ही जान लिया था। हँस कर बोला—दीदी, उसकी बात मत सुनो, आओ। जोंक के होने या न होने का इम्तिहान हम लोगों से ही लिवा लेना।

लेकिन उनकी दीदी एक डेग भी आगे न बढ़ी। जोंक का नाम सुनते ही अचल होकर बोली—आज रहने दो, आनंद। नई जगह बिना जाने-बूझे इतना साहस करना कभी ठीक न होगा। रतन, जाकर कुँए से पानी ला दो। मुझसे उसने कहा—तुम हो कमजोर आदमी। किसी अनजान पोखर-वोखर में नहा-धो न करना। यहीं दो लोटा जल उझल कर काम चला लो।

साधुजी हँस कर बोले—तो केवल मैं ही इतना मारा-फेंका हूँ, दीदी! कि मुझे अकेले ही जोंक वाले तालाब में नहाने कहती हो!

बात तो बड़ी नहीं थी। लेकिन राजलक्ष्मी की आँखें डबडबा गईं। कुछ देर मौन रह कर वह बोली—भैया, तुम तो आदमी के बस के बाहर हो। जो अपने मा-बाप का कहना न मान सका वह एक अपरिचित बहन की बात कैसे मानेगा!

साधुजी जाने के लिए उतावले हो रहे थे। वे जरा रुक कर बोले—अनजान और अपरिचित की बात रहने दो, बहन। आप ही लोगों को पहचानने के लिए तो मैं घर से निकल चुका हूँ, मुझे क्या जरूरत थी इसकी! इतना कहने के बाद वे बाहर निकल गए। मैं भी उनके साथ चल पड़ा।

दोनों आदमी घूम-घूम कर गाँव देखने लगे। गाँव छोटा था। छोटी जाति का था, दो घर तमोली और एक घर लुहार से अलावा पानी चलाने-

वाली दूसरी जाति न थी। डोम और बौरी भरे पड़े थे। बौरी बेंत का काम और मजदूरी कर के जीवन निर्वाह करते थे। डोम सूर, दौरा, डलिया, बेना आदि बना कर गंगामाटी और पोड़ामाटी में बेचते थे। यही उनका जीवन था। उत्तर भर के नाले के उस पार के गाँव का नाम पोड़ामाटी था। सुना कि उस गाँव में बहुत से ब्राह्मण, कायस्थ और दूसरी जाति के लोग रहते थे। कुशारजी का घर भी पोड़ामाटी में ही था। औरों की बात पीछे कहूँगा। अभी गाँव की हालत से मेरा कलेजा मुँह तक चढ़ आया, इसी का वर्णन करूँगा। जहाँ तक बन सका था घर छोटा बना था। फिर भी सोने की भूमि में छाने भर फूस भी नहीं। किसी के पास दो-उँगली धरती भी शायद ही हो। केवल डलिया-दौरा बना कर इनको जीविका चलती है, यह मैं नहीं सोच सका। इनका जीवन इसी तरह बीता है, बीत रहा है और शायद बीतेगा भी। किसी ने एक दिन भी खयाल नहीं किया है इन बेचारों पर। कुत्ते की तरह जन्म लेकर न जाने कब, क्यों और कैसे मर जाते हैं! इनका यही लेखा-जोखा है। इन अभागों की यही हालत है। देश के अन्य लोगों पर इससे अधिक उनका कुछ भी दावा नहीं है। इनका दुःख, इनकी दीनता एवं हीनता, इनकी अपनी आँखों में और दूसरों की आँखों में भी इतनी स्वाभाविक हो गई है कि आदमी आदमी के इस अपमान पर जरा भी नहीं लजाता। साधुजी मुझे देख रहे थे। मुझे यह नहीं मालूम था। वे कहने लगे—भैया, यही देश की असली तसवीर है। मलाल करने की आवश्यकता नहीं। आप समझ रहे होंगे कि इन बातों से ये रात-दिन दुखी रहते हैं। पर ऐसी बात कभी नहीं है।

मैं क्षुब्ध हो गया। आश्चर्य से पूछा—आप क्या कह रहे हैं, साधुजी!

साधुजी कहने लगे—मेरी तरह आप सब जगह घूम-फिर लिये होते तो मेरी बातों पर विश्वास होता। मन ही न दुख झेलता है, भैया! यह कैसी बला है! बेचारों का मन इतने दिनों से चूस-चूस कर मार दिया गया है। यह हमारे बाप-दादों की मशीन है। साधुजी निर्दय की तरह हा-हा करके हँसने लगे। मैं हँसी में शामिल न हो सका। उनकी बात भी ठीक से न समझ सका। इससे कुछ लजा गया।

इस साल की फसल अच्छी न थी। हेमंत ऋतु के धान पानी के अभाव में सूख गए हैं। अभाव की हवा चल चुकी थी। साधुजी बोले—भैया, किसी-न-किसी बहाने से भगवान् ने आपको असामियों के बीच पहुँचा दिया है। जल्दी ऊब कर भाग न जाइएगा। यह साल तो अवश्य यहीं बिताइए। आप कुछ ज्यादा करेंगे, ऐसी बात तो नहीं सोचता। रैयत के दुखों में शामिल होना अच्छा होता है। इससे यदि और कुछ नहीं तो ज़मींदारी करने का पाप तो अवश्य हलका हो जाता है।

मैंने दीर्घ श्वाँस लेकर मन-ही-मन कहा—जान पड़ता है कि मेरी ही जमींदारी है। मैं चुप रहा, कुछ न बोला; पहले ही की तरह।

नहा-धो कर, गाँव घूम कर जब घर आया तब बारह बज चुका था। आज भी राजलक्ष्मी हम दोनों की थाली परोस कर एक ओर बैठ गई। रसोई राजलक्ष्मी की बनाई हुई थी इसलिए सब कुछ पहले साधु को ही मिला। साधुजी थे वैरागी आदमी, पर सात्विक-असात्विक एवं आमिष-निरामिष में जरा भी अंतर न दीख पड़ा। इस विषय में उन्होंने घोर सांसारिक से भी अधिक परिचय दिया। पाक-शास्त्र का मर्मज्ञ मैं नहीं था, इसीलिए शायद पाचकी ने भी मुझे समझाने का प्रयत्न नहीं किया।

साधुजी धीरे-धीरे भोजन करने लगे। खाते-खाते कहने लगे— दीदी, जमींदारी अच्छी है। छोड़ कर चले जाने में ममता होती है।

राजलक्ष्मी बोली—चले जाने के लिए तो हम लोग आग्रह नहीं कर रहे हैं, भैया!

साधु हँस कर बोला—नहीं दीदी, साधु-सन्यासियों को कभी इतना प्रश्रय नहीं देना चाहिए। ठग लेंगे लोग। और जो भी हो, गाँव अच्छा है। ऐसा एक भी आदमी नहीं जिसके हाथ का पानी पिया जा सके। एक घर के छप्पर पर भी ठीक से फूस नहीं है। मुनियों का आश्रम जैसा मालूम होता है।

अस्पृश्य के घरों और आश्रम में काफी सादृश्य था। इसका खयाल करके राजलक्ष्मी जरा हँसी मलिन होकर। फिर मुझ से कहा—सचमुच इस गाँव में छोटी ही जाति के लोग रहते हैं—किसी से एक लोटा पानी मिलने की भी आशा नहीं है। जान पड़ता है ज्यादा दिन रहते नहीं बनेगा।

साधुजी हँसने लगे। मैं चुप रहा। मैं जानता था कि राजलक्ष्मी जैसी करुणामयी स्त्री किस संस्कार से ऐसी बात कह रही थी। साधु की हँसी ने मुझे छू तो लिया जरूर, पर बेध न सकी। चुप तो जरूर रहा मगर मन-ही-मन बोला—राजलक्ष्मी, आदमी का कर्तव्य ही अस्पृश्य और अछूत होना है, आदमी नहीं। यदि ऐसा नहीं होता तो पियारी आज लक्ष्मी कैसे बन जाती। बचपन से ही मानव के शरीर को मैंने मानव-शरीर ही समझा। बचपन से ही बहुत बार मेरी परीक्षा हो चुकी है। मुँह खोल कर इन बातों को किसी से कह भी नहीं सकता।

हम लोग दोनों आदमी खाकर उठे। हम लोगों को पान देकर राजलक्ष्मी शायद स्वयं भी पान खाने चली गई। घंटे भर में वह लौट आई। साधुजी को देख कर इस बार वह मानों आसमान से टपकी-जैसी मालूम पड़ रही थी। मैं भी विस्मित हो गया। वे बाहर से एक आदमी ला कर, उसके सिर पर दवाओं का बक्स लाद कर, जाने को तैयार हैं।

कल यही बात तय हुई थी। मगर मैं उसे बिलकुल भूल गया था। यह बात कल्पना के बाहर की थी कि प्रवासी राजलक्ष्मी के इस आदर-सत्कार की उपेक्षा कर के साधुजी कहीं चले जायँगे। राजलक्ष्मी को विश्वास था कि यह स्नेह की जंजीर जल्दी ही टूट जायगी। वह डर के मारे व्याकुल हो गई। पूछा—जा रहे हो, आनंद ?

साधु बोला—हाँ दीदी, जाता हूँ। अभी न चला जाऊँगा तो बहुत रात हो जायगी।

कहाँ टिकोगे, कहाँ सोवोगे ? अपना आदमी तो वहाँ कोई न होगा ?

पहले पहुँच तो जाने दो।

लौटोगे कब ?

अभी नहीं कह सकता। काम की भीड़ अगर और न बढ़ी तो शीघ्र ही वापस आ सकता हूँ।

राजलक्ष्मी को धक् से लगा। वह रुँधे कंठ से बोली—कभी लौट कर आ सकते हो ? यह नहीं होगा, हरगिज नहीं।

क्या न होने का कारण तो समझ गया। साधुजी फीकी हँसी हँस कर बोले—चले जाने की वजह तो आपको बता ही चुका हूँ।

बता दिया है तुमने ! तो अच्छा आओ। राजलक्ष्मी प्रायः रो पड़ी। जल्दी से कमरे में चली गईं। साधुजी मौन रहे। फिर मुझ से उन्होंने कहा—मेरा जाना बहुत जरूरी है।

मैंने सिर हिला कर कहा—जानता हूँ। बेसी कुछ कहने को था भी नहीं। स्नेह की गहराई समय की लंबाई से नहीं मापी जा सकती। फिर भी यह केवल कवियों की कल्पना ही नहीं है—वास्तव में ऐसा होता है। इसीलिए एक की जिज्ञासा जितनी सच्ची होती है, दूसरे का बरजना उतना ही सत्य होता है कि नहीं, इस संबंध में मुझे जरा भी शक नहीं हुआ।

साधुजी बोले—मैं चला। उस तरफ का काम यदि समाप्त हो गया तो एक बार लौट कर आऊँगा, पर अभी बता देना जरूरी नहीं है।

मैं स्वीकार करके बोला—वही होगा।

साधुजी कुछ बोलना चाहते थे। मगर घर की ओर देख कर उन्होंने साँस ली। फिर हँसे, और धीरे-धीरे कहने लगे—बंगाल भी आश्चर्यजनक देश है। यहाँ राह चलते मा-बहनें मिल जाती हैं। इनसे बच कर कौन जा सकता है ?

साधुजी धीरे-धीरे बाहर चले गए।

उनके चले जाने पर मैंने भी साँस ली। बात वास्तव में ठीक थी। देश की सभी मा-बहनों के दुख से जो बाहर निकल आया है उसे एक ही बहन, दही और मछली देकर कैसे रोक सकती है !

५

साधुजी मजे में चले गए। उनके चले जाने से रतन को कितना दुख हुआ, इसे तो मैं पूछ न सका, संभवतः उसके लिए यह घातक नहीं था। किंतु एक आदमी को तो रो कर घर में घुसते देखा और तीसरा नंबर मेरा था। ठीक से चौबीस घंटों का परिचय नहीं होने पर भी मुझे ऐसा लगा मानों गृहस्थी में एक बड़ा-सा छेद करके वह चला गया। यह अनिष्ट अपने ही तक होगा या वह स्वयं एक दिन सशरीर सिर पर दवा का भारी बक्स

लिए हाजिर हो जायगा। जाते समय यह कुछ भी समझ में न आया। मुझे कुछ अधिक उद्वेग भी नहीं था। कई कारणों से और विशेष कर ज्वर भोगते-भोगते मेरा शरीर और मन इतना निस्तेज हो गया था कि मैंने अपने को राजलक्ष्मी के हाथ समर्पित कर दिया। किसी वस्तु के लिए अलग से चिंता करने की मुझे अब आवश्यकता न थी, शक्ति भी न थी। तब भी मनुष्य का मन चंचल रहता है। तकिए के सहारे बाहर के कमरे में बैठा था। चिंताएँ आ-आ कर मेरे दिमाग में चक्कर काट रही थीं। धीरे-धीरे अँधियाली मेरे मन को उद्विग्न कर देने लगी। मालूम पड़ने लगा कि आज तक जितनी भी रातें बीती हैं, वे सब-की-सब एक साथ इस अदृष्टपूर्व नारी के अवगुंठित मुँह के समान रहस्यपूर्ण हो कर आ रही हैं। इतने पर भी अपरिचिता की प्रकृति और प्रथा जान कर ही अंत तक पहुँचना होगा। बीच में विचार करने से तनिक भी काम न चलेगा। थोड़ी देर के बाद अक्षम चिंता की कड़ियाँ टूट कर उलट जाने लगीं। राजलक्ष्मी इसी समय दरवाजा खोल कर कमरे में आई। उसकी आँखें फूल कर लाल हो गई थीं। मेरे नजदीक बैठ कर बोली—सो रही थी।

मैंने कहा—इसमें अचरज की कौन-सी बात है! तुम जितना भार और जितनी श्रांति ढो रही हो, उतना दूसरा नहीं ढो सकता था। मुझे ढोना पड़ता तो दिन-रात आँख भी न खोलता, कुंभकर्णी नींद में सो जाता।

राजलक्ष्मी हँस कर बोली—पर कुंभकर्ण को तो मलेरिया नहीं होता था। फिर भी तुम दिन में नहीं सोये।

मैंने कहा—अब नींद आने लगी है। जरा सो जाता हूँ। कुंभकर्ण के मलेरिया का तो वाल्मीकि ने कहीं भी जिक्र नहीं किया है।

वह घबरा कर बोली—सोओगे तुम! क्षमा करो—फिर बुखार आने में जरा भी संदेह नहीं रह जायगा। यह न होगा—जाते समय आनंद तुम से क्या कह गया है?

मैंने पूछा—तुम्हें किस बात की उमीद है?

राजलक्ष्मी ने कहा—न जाने वह कहाँ-कहाँ जायगा!—या—

'या' ही तो खास सवाल है।—मैं बोला—वे कहाँ-कहाँ जाएँगे, इसका पता

तो कुछ-कुछ दे गए हैं, पर, इस 'या' के संबंध में कुछ नहीं कह सके। आने की कोई उमीद नहीं है।

राजलक्ष्मी चुप रही। मेरा कुतूहल न रुका। मैंने पूछा—तुमने उसे पहचान लिया है क्या? मुझे भी तो एक दिन ऐसे ही पहचान लिया था तुमने?

वह देर तक मेरी ओर चुपचाप देखती रही, फिर बोली—नहीं।

मैंने कहा—सच-सच बताना। इसे पहले कभी नहीं देखा था?

राजलक्ष्मी मुसकराती हुई बोली—तुम्हारे सामने मैं कसम तो नहीं खा सकती। कभी-कभी मैं भी बड़ी गलती कर बैठती हूँ। किसी अनजान आदमी को देख कर संदेह अवश्य हो जाता है कि इसे कहीं-न-कहीं देखा है।

फिर थोड़ी देर तक चुप रही। इसके बाद बोली—आज तो आनंद चला गया। यदि अब की बार लौट कर आया तो उसे अवश्य मा-बाप के पास भेज दूँगी। निश्चय जानो।

मैंने कहा—तुम्हें इससे क्या मतलब?

उसने कहा—यह लड़का इधर-उधर घूरता फिरेगा, यह सोच कर ही मेरी छाती फटने लगती है। तुम भी तो घर-द्वार छोड़ चुके हो—सन्यासी होने में सचमुच आनंद मिलता है?

मैंने कहा—मैं सचमुच सन्यासी तो हुआ नहीं। उसका पता तुम्हें कैसे दे सकता हूँ। वह लौट कर आ जाय तो उसी से पूछ लेना।

राजलक्ष्मी ने पूछा—घर पर रह कर कोई धर्म नहीं लाभ कर सकता? बिना घर छोड़े भगवान् से भेंट नहीं हो सकती?

मैं हाथ जोड़ कर बोला—इनमें से मुझे एक की भी आवश्यकता नहीं है, लक्ष्मी! मुझ से ऐसा सवाल न पूछा करो। फिर ज्वर चढ़ आयगा।

राजलक्ष्मी हँसी, फिर करुण कंठ से बोली—जान पड़ता है कि आनंद को सब कुछ है, तब भी उसने धर्म के लिए इसी उमर में सब कुछ छोड़ दिया है। किंतु तुम तो नहीं छोड़ सके।

मैं बोला—नहीं, और भविष्य भी जान पड़ता है, ऐसा नहीं करूँगा।

राजलक्ष्मी ने कहा—क्यों नहीं करोगे?

मैंने कहा—उसका प्रधान कारण यह है कि जिसे मुझे छोड़ देना होगा

वह चीज संसार में कहाँ है ? और जिसके लिए छोड़ देना होगा उस परमात्मा के प्रति भी मुझे लोभ नहीं है । इतने दिन उनके अभाव में ही कट गए और बाकी दिन भी अचल नहीं रहेंगे । इस पर पूरा विश्वास है । तुम्हारे आनंद भैया ईश्वर-प्राप्ति के लिए ही गेरुआ वस्त्र धारण कर निकल पड़े हैं, मुझे इसमें भी विश्वास नहीं । मैं भी बहुत बार साधुओं के साथ रह चुका हूँ, आज तक किसी ने भी दवा का बक्स ले कर घूमने से ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग नहीं बतलाया । उसका खाना-पीना भी तो आँखों से देख चुकी ?

राजलक्ष्मी कुछ देर तक चुप रह कर बोली—तब वह झूठ-मूठ का घर-द्वार छोड़ कर कष्ट कर रहा है न ? सब को तुम अपने ही समान समझते हो ?

मैं बोला—नहीं, खूब फर्क है । वह भगवान् को खोजने के लिए नहीं तो जिसके लिए घूम रहा है वह उसके नजदीक पास में ही है—अर्थात् अपना देश । उसका घर-बार छोड़ देने का मतलब गृहस्थी छोड़ देने का नहीं है । साधुजी ने एक छोटी गृहस्थी का छोड़ कर बड़ी गृहस्थी को अपना लिया है ।

राजलक्ष्मी मेरी ओर देखती रही । शायद वह अच्छी तरह इसे समझ न सकी थी । इसके बाद उसने पूछा—जाते समय वह तुमसे कुछ कह गया है ?

मैं सिर हिला कर बोला—नहीं, कुछ नहीं ?

न जाने क्यों एक सत्य छिपा लिया । यह स्वयं मुझे भी मालूम नहीं । किंतु जाते समय साधुजी ने जो भी कहा वह मेरे कानों में उसी तरह गूँज रहा था । जाते समय वे यही कह गए थे—बंगाल भी बड़ा विचित्र देश है । राह-बाट में मा-बहन—कौन इन्हें फाँकी दे कर जा सकता है ?

राजलक्ष्मी चुपचाप मुँह बनाए बैठी रही । मेरे दिमाग में भी बीते दिन की घटनाएँ झाँक-झाँक कर देखने लगीं । अपने मन में धीरे-धीरे कहा—बहुत अच्छा ! ठीक है, साधुजी तुम चाहे जिस स्थिति के हो पर इस छोटी उमर में ही तुमने देश की दयनीय दशा देख ली है । यदि यह न होता तो देश का यथार्थ चित्र तुम इतने थोड़े शब्दों में न खींच देते । मुझे मालूम है कि बहुत-सी कमियों के कारण हमारा देश कीचड़ से लिप गया है पर जिसे इस सत्य की अनुभूति प्राप्त है वह इसकी महत्ता अवश्य स्वीकार करेगा ।

करीब दस-पंद्रह मिनट चुप रहने के बाद राजलक्ष्मी बोली—यदि उसका

उद्देश्य यही है तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि उसे एक-न-एक दिन लौटना ही पड़ेगा। शायद इसमें दूसरों की भलाई करनेवालों की जो दुर्गति होती है, उसका ज्ञान शायद उसे नहीं है। इसका रस मुझे मिला है। एक दिन जब वह बाधाओं एवं कटूक्तियों से विरक्त हो जायगा तो शायद फिर लौट आने को रास्ता भी न मिलेगा।

मैं हाँ में हाँ मिला कर बोला—यह असंभव बात तो नहीं है, लेकिन जान पड़ता है कि इन दुखों को वह खूब जानता है।

राजलक्ष्मी सिर धुन-धुन कर कहने लगी—नहीं, कभी नहीं, हरगिज नहीं। मुझे विश्वास है कि जान लेने के बाद तो कोई उस राह पर जा ही नहीं सकता।

इसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता था। मुझे बंकू से मालूम हुआ था कि ससुराल के गाँव में राजलक्ष्मी के पुण्यात्मक कामों की विगर्हणा हुई थी। इसी व्यथा से वह बोझिल रहती थी। देखने को एक और रास्ता था, पर वेदना के उस बंद मार्ग को खोलने की मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई। मैं चुपचाप रह गया। राजलक्ष्मी भी झूठ न कह रही थी। मैं सोच रहा था कि आखिर ऐसा होता क्यों है ! क्यों एक आदमी के सत्कर्मों पर दूसरा शंका करता है ! इन साधु संकल्पों को सफल बना कर दुःख लोग क्यों नहीं कम होने देते ! मैंने सोचा कि साधुजी यदि फिर यहाँ आवेंगे तो इसकी मीमांसा का भार उन्हीं पर डाल दूँगा।

उस दिन सुबह से ही नौबत झड़ रही थी। कुछ आदमी रतन को अगुआ मान कर आँगन में आ गए। रतन सामने आ कर बोला—माजी, ये लोग राज-वरण देने आए हैं। चले आओ, दे दो—उसने एक प्रौढ़ आदमी को संकेत किया। वह वसंती कपड़ा पहने था। गले में लकड़ी की नई माला थी। उसने सकुचाते हुए नए शाल के पत्ते पर एक रुपया और एक सुपारी रख दिया। फिर जमीन टेक कर प्रणाम करके बोला—माता रानी, आज मेरी बेटी का विवाह है।

राजलक्ष्मी ने उठ कर उसे ले लिया और पुलकित चित्त से बोली—लड़की के ब्याह में यही दिया जाता है !

रतन ने कहा—नहीं मा, यही नहीं, अवकात के माफिक जमींदार को भेंट

दी जाती है। ये लोग छोटे जात हैं—डोम। ये बेसी कहाँ से पावेंगे? कितने कष्ट से बेचारे—

निवेदन समाप्त भी नहीं हुआ था कि वह रुपया रखती हुई बोली—तब रहने दो, इसे भी देने की कोई आवश्यकता नहीं—तुम्हारी लड़की का ब्याह यों ही हो जायगा।

भेंट लौटा देने के कारण लड़की का बाप और रतन दोनों आफत में पड गए। वह खूब समझाने लगा कि राजवरण सम्मान के साथ नहीं लेने से काम ही नहीं चलेगा। राजलक्ष्मी सुपारी और रुपया क्यों नहीं लेना चाहती थी, इसे मैं घर के भीतर ही बैठा-बैठा समझ रहा था। रतन के अनुरोध करने का कारण भी मुझ से छिपा हुआ नहीं था। बहुत संभव है कि लगान का रुपया अधिक होगा और गुमाश्ता कुशारी महाशय से निस्तार पाने के लिए ही उसने यह कौशल रचा था; और रतन हुजूर इत्यादि के फेर में पड़ कर उनका मुखबीर हो कर अरजी पेश करने आया था। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि वह उन लोगों को यथेष्ठ आश्वासन दे कर ले आया था। मैंने उसके इस संकट का मोचन कर दिया। मैं उठ कर आया और रुपया उठा कर बोला—मैंने लिया, तुम घर जा कर विवाह की तैयारी करो।

रतन का मुँह गर्व से उज्ज्वल हो उठा। राजलक्ष्मी भी अस्पृश्य के प्रतिग्रह से छुटकारा पा गई। वह प्रसन्न होकर बोली—अच्छा हुआ, जिसका मान्य था उन्होंने ही अपने हाथ से लिया। इतना कह कर वह हँसी।

मधु डोम कृतज्ञता से भर गया। वह हाथ जोड कर बोला—हुजूर, पहर भर रात बीतते ही लगन है, एक पैरों की धूल दे देते। इतना कह कर, करुण-दृष्टि से वह मुझे और राजलक्ष्मी को देखने लगा।

मैं सहमत हो गया। राजलक्ष्मी हँसती हुई शहनाई की आवाज का अंदाज लगा कर बोली—वही न तुम्हारा घर है, मधु? अच्छा, यदि समय मिला तो मैं भी एक बार आ कर देख जाऊँगी। रतन को देख कर बोली—बड़ा बक्स खोल कर देखो तो, नई साड़ियाँ हैं कि नहीं। जा, लड़की को एक साड़ी दे आ। मिठाई तो यहाँ नहीं मिलेगी। बताशा मिलता होगा। अच्छा वही सही। थोड़ा वही खरीद कर ला दो, रतन। हाँ, तुम्हारी लड़की कितनी बड़ी है?

वर का घर कहाँ है? कितने लोग खाएँगे? इस गाँव में तुम लोग कितने घर हो?

जमींदार गृहिणी के एक साथ इतने प्रश्नों का मधु ने जो उत्तर दिया उससे मालूम हो गया कि उसकी लड़की की उमर नौ साल के भीतर ही है। लड़का जवान है—तीस-चालीस साल से बेसी नहीं होगा—उसका घर इस गाँव के पाँच-छ कोस उत्तर की ओर था। इस गाँव में उसका समाज बड़ा था। पर अधिकतर लोग जातीय व्यवसाय नहीं करते थे। सब खेती-बारी करते थे। सब अच्छी तरह रह जाते लेकिन रात के कारण डर था। वर-यात्रियों की संख्या कितनी होगी, यह कहा नहीं जा सकता, और वे लोग कहाँ क्या फसाद खड़ा कर देंगे। सबेरा होने के पहले इसका अनुमान नहीं किया जा सकता है। वे लोग पैसेवाले आदमी थे—कैसे मान-मर्यादा रहेगी, शुभ-कर्म कैसे संपन्न हो जायगा, इस डर से मधु के मुँह में फेफरी पड़ रही थी। यह सब विस्तार रूप से कह कर उसने बतलाया कि उन लोगों के लिए चूड़ा-गुड़ और दही का प्रबंध किया गया था। अंत में दो-दो बताशे परोसने का भी प्रबंध था। इतने पर भी यदि कुछ गड़बड़ी हुई तो हम लोगों को रक्षा के लिए जाना पड़ेगा।

राजलक्ष्मी कुतूहलवश हिम्मत देकर कहने लगी—जरा भी गोलमाल न होगा मधु, बेटी का विवाह निर्विघ्न समाप्त हो जायगा; मैं आशीर्वाद करती हूँ। खाने-पीने के सामान भी काफी मौजूद हैं कि तुम्हारे समधी का दल खा-पीकर खुश हो जायगा।

मधु ने फिर धरती टेक कर प्रणाम किया और अपने दो अन्य साथियों को लेकर चला गया। उसका मुँह देख कर मालूम हुआ कि आशीर्वाद से उसे कोई विशेष प्रसन्नता न हुई। रात भर के लिए कन्या के पिता के मन में उद्वेग बना रहा।

शुभ-कर्म में पैरों की धूल देने को मधु से कहा गया था, किंतु सचमुच हम लोगों को ऐसी आशा नहीं थी। संध्या के कुछ पहले दीआ के सामने राजलक्ष्मी ने आय-व्यय का ब्यौरा पढ़ कर सुना दिया। बिछावन पर आँखें बंद करके मैं सोया था, किनका सुना, कितना नहीं सुना, मगर विवाह के घर

में हल्लागुल्ला बढ़ गया। राजलक्ष्मी ने मुँह उठा कर कहा—डोम के घर विवाह है, शायद मार-पीट भी उसी का आवश्यक अंग हो।

मैं बोला—ऊँची जाति की नकल यदि की गई है तो बेजा नहीं है। वे सब बातें तुम्हें याद हैं न!

राजलक्ष्मी ने कहा—हूँ। इसके बाद कुछ क्षण तक उसके कान खड़े रहे। फिर एक दीर्घ साँस लेकर बोली—वास्तव में, इस मरे देश में हम लोग लड़कियों को बहा देते हैं। इसमें ऊँचे-नीचे सभी समान हैं। जब वे लोग चले गए तब हमें पता लगा कि कल लोग उस नौ साल की बच्ची को एक अनजान घर में ले जायँगे, कभी आने का मौका भी उसे मिलेगा या नहीं। इन लोगों की यही चाल है। चौबीस रुपयों में लड़की बेंच देगा। वह बेचारी एक दिन भी नैहर आने का नाम न लेगी। आह, लड़की वहाँ कितना रोवेगी—अभी वह ब्याह का क्या जानती है, बतलाओ तो!

ये दुर्घटनाएँ तो मैं जन्म से ही देखता चला आ रहा हूँ, एक प्रकार इसका आदी-सा हो गया हूँ—और अब क्षोभ करने की प्रवृत्ति भी नहीं होती। इसलिए मैं मौन रहा।

जवाब न पाकर वह बोली—हमारे देश में, छोटी-बड़ी सभी जातियों में विवाह तो केवल विवाह ही नहीं है, यह धर्म भी तो है—इसी से, नहीं तो—

मन में आया कि यदि कह दूँ—यदि इसको धर्म कहा जाय तो शिकायत ही न रहे और जिस धर्म से प्रसन्नता के बदले दुख हो तो वह धर्म ही कैसा!

मैं कहने को सोच ही रहा था कि राजलक्ष्मी बोल उठी—इन विधि-विधानों को बनानेवाले त्रिकालदर्शी ऋषि ही थे न; शास्त्र झूठा नहीं है, अनिष्टकारी भी नहीं—हम लोग उसे समझते भी नहीं और अच्छी तरह उसे जानते भी नहीं।

जो कहने को था वह कहा नहीं गया। संसार में सोचने-विचारने की सभी बातों का समाधान त्रिकालज्ञ ऋषि लोग तीनों काल के लिए ठीक कर गए हैं, अब सोचने-विचारने को कुछ भी बाकी नहीं रहा। राजलक्ष्मी के मुँह से ही नहीं बल्कि कइयों के मुँह से मैं यह सुन चुका हूँ और मैं सदैव चुप

रहा। मुझे मालूम है कि आलोचना गरम एवं व्यक्तिगत होकर कटु हो जाती है। त्रिकालदर्शी महात्माओं की अवज्ञा मैं नहीं करता, बल्कि राजलक्ष्मी की तरह मैं भी उनसे अत्यंत भक्ति रखता हूँ। मैं केवल इतना ही सोचता हूँ कि यदि वे अंगरेजी शासन-काल के लिए नहीं सोचे जाते, तो हम लोगों की अनेक चिंताएँ दूर हो जातीं और आज हम लोग सचमुच अच्छी तरह जीते।

मेरे हृदय की बातों को राजलक्ष्मी आईने की तरह देख सकती है, यह मैं पहले ही कह चुका हूँ। वह कैसे देख सकती है, यह मुझे नहीं मालूम; मगर अभी दीए की रोशनी में उसने मुझे नहीं देखा, पर वह ठीक जगह पर वार कर बैठी। उसने कहा—तुम सोचते हो कि यह सरासर अँधेर है—भविष्य के लिए कोई कायदा-कानून कैसे बना सकता है ! पर मैं कहती हूँ—बना सकता है। गुरुदेव से मैंने सुना है। यदि ऐसा न होता तो वे मंत्रों के दर्शन कैसे कर लेते ! मंत्रों में भी प्राण है, यह तो तुम मानते हो !

मैं बोला—हाँ।

राजलक्ष्मी बोली—तुम मानो या न मानो, पर यह सच है। यदि ऐसा न होता तो गुड़वा-गुड़ियों का विवाह भी संसार का सर्वश्रेष्ठ विवाह होता। यह सब उन्हीं सजीव मंत्रों के जोर से होता है न ! और ऋषियों की कृपा से ही। अनाचार और पाप सब जगह है, मगर इस देश के जैसा सतीत्व भी तुम्हें और कहीं मिलेगा !

मैंने कहा—नहीं। यह उसका तर्क नहीं, विश्वास था। इतिहास की बात होती तो मैं उसे दिखला देता कि पृथ्वी पर और भी मंत्र-हीन देश हैं जहाँ की स्त्रियों में अभी तक सतीत्व है। अभया का जिक्र करके यह कह देता कि सजीव मंत्र स्त्री-पुरुष दोनों को क्यों नहीं एक सूत्र में बाँध देता ! पर इसकी जरूरत नहीं थी। मैं समझ रहा था कि वह इन दिनों दूसरी ओर प्रवाहमान हो रही थी।

दुष्कृति की वेदना को वह अच्छी तरह जानती थी। जिससे पूरा दिल देकर प्रेम करती थी उसे कलुषित न कर वह किस तरह से जीवन लाभ करेगी, यह उसे नहीं मालूम था। उसका दुर्बल हृदय एवं प्रबुद्ध धर्म-वृत्ति—ये दो प्रतिकूलगामी प्रचंड प्रवाह किस तरह किस संगम पर सम्मिलित होकर

इस दुखी जीवन में तीर्थ के समान पवित्र हो उठेंगे। उसे इसका ओर-छोर कुछ नहीं मिलता था। किंतु मैं पा गया था। अपने को दूसरे के हाथ बिलकुल समर्पित कर देने पर दूसरे की छिपी हुई मनस्विता पर बराबर मेरी दृष्टि रहती है। यह स्वीकार करता हूँ कि इसे स्पष्ट रूप में नहीं देखता। फिर भी इतना तो अवश्य देखता हूँ कि जिस दुर्दांत कामना से वह मतवाली हो रही थी, वही आज अपने को स्थिर कर सौभाग्य का, प्राप्ति का हिसाब देखना चाहती है। हिसाब के इन आंकड़ों में क्या है, यह तो मैं नहीं जानता, फिर भी इसकी चिंता बराबर बनी रहती है कि यदि इन आंकड़ों में शून्य मिला तो मैं अपने क्षत-छिन्न जीवन की गाँठों को कहाँ जोड़ने जाऊँगा। सोचने से कुछ होता-हवाता नहीं। मैं केवल इतना निश्चित करके बैठा हूँ कि अपने हर-हमेशा के मार्ग पर ही जरूरत पड़ने पर चला जाऊँगा। अपनी सुविधा एवं अपने सुख के लिए किसी दूसरे का जीवन जटिल न बनाऊँगा। सब से आश्चर्य की बात तो यह है कि मंत्रों की सजीवता की आलोचना से ही हम दोनों में क्रांति मच गई। इसी प्रसंग पर दूसरे घर में लोग लड़-झगड़ रहे थे। इसकी खबर हम दोनों को न थी।

एक-ब-एक पाँच-सात आदमी लालटेन लेकर आए। आँगने में खड़े होकर जोर-जोर से पुकारने लगे—हुजूर, बाबू साहब।

मैं घबरा कर बाहर आया। साथ-साथ राजलक्ष्मी भी आई, आश्चर्य से उठ कर। सब साथ मिल कर नालिश करने आए थे। रतन बार-बार उन्हें डाँटने लगा। पर कोई भी चुप न हो सका। चाहे जो हो, बात समझ गया। कन्या-दान रुका था। गलत मंत्र उच्चारण करने के अभियोग में वरपक्ष के पुरोहित ने कन्यापक्ष के पुरोहित को दाबा था। पूजा की सामग्री फेंक दी गई थी। यह सरासर अत्याचार था। पुरोहित लोग बहुत से कीर्ति के काम किया करते हैं। पर ऐसा कम सुना जाता है कि अपने सम-व्यवसायी को दबा कर मंत्रोच्चारण भी रोक दिया गया हो।

राजलक्ष्मी क्या कहती, वह कुछ सोच न सकी थी। घर में से निकल कर रतन गरज कर बोला—तुम लोगों का पुरोहित कैसा होता है रे! इस गाँव में आकर रतन सब को अरे-तरे करने लगा था। उसकी नजर में इससे ज्यादा

सम्मान के लायक यहाँ कोई था ही नहीं। वह फिर बोला—डोम-चमारों का विवाह भी विवाह होता है जो पुरोहित चाहिए ! इनका ब्याह क्या ब्राह्मण कायस्थों का विवाह है जो ब्राह्मण मंत्र पढ़ावेंगे ! यह कह कर वह गर्व से हम लोगों को देखने लगा। पाठकों को इसका स्मरण करा देना चाहिए कि रतन स्वयं नाई था।

मधु डोम स्वयं तो नहीं आ सका था, वह कन्या-दान करने को बैठा था, किंतु उसके और संबंधी आए थे। उस आदमी ने जो कुछ कहा इससे साफ मालूम हो गया कि उन लोगों में कोई ब्राह्मण नहीं होता, अपने ही अपना पुरोहित होते हैं, फिर भी राखाल पंडित उन लोगों के लिए पुरोहित हो के समान हैं। क्योंकि वह जनेऊ पहनता है, उन लोगों का दसो करम कराता है। यहाँ तक कि उन लोगों का छुआ हुआ पानी भी नहीं पीता है। इतनी जबरदस्त सात्विकता के बाद भी कोई प्रतिवाद की जगह नहीं रह जाती। इसलिए, असली और नकली ब्राह्मण में इसके बाद भी भेद रह जायं तो यह साधारण-सी बात है।

जो भी हो, इन लोगों की व्याकुलता और ब्याह वाले घर के प्रबल चीत्कार से हम लोगों को वहाँ जाना ही पड़ा। मैंने राजलक्ष्मी से कहा—चलो न तुम भी, यहाँ अकेली बैठ कर क्या करोगी !

राजलक्ष्मी ने पहले तो सिर हिलाया, पर फिर भी कौतूहल न रोक सकी, चलो कह कर मेरे साथ हो लिया। आकर देखा तो मधु के संबंधी ने बढ़ा-चढ़ा कर जरा भी न कहा था। झगड़ा बढ़ रहा था। पचीस-तीस बराती भी थे और पचीस-तीस घराती भी। बीच में मोटे ताजे शिबू पंडित दुबले-पतले राखाल पंडित के हाथ पकड़े खड़ा था। हम लोगों को देख कर उसने छोड़ दिया। चटाई पर बैठ कर इस आक्रमण का हाल पूछने पर शिबू पंडित बोला—हुजूर, मंतर काम तो जानता ही नहीं यह साला, और अपने को कहता है पंडित ! यह तो आज विवाह का माथ ही मार देता ! राखाल ने मुँह ऐंठ कर प्रतिवाद किया—हाँ, ब्याह का माथ मार देता ! पाँच गाँव में सराध और ब्याह कराता हूँ और मैं मंतर ही नहीं जानता ! मन में सोचने लगा कि यहाँ भी वही मंत्र है। माना कि राजलक्ष्मी का जवाब न दे सका पर यदि यहाँ मध्यस्थ बनना पड़े तो आफत में फँसूँगा। अंत में घोर वाद-विवाद के बाद स्थिर हुआ

कि राखाल ही मंत्र पढ़ावेगा, किंतु कहीं भूल हुई तो शिबू के लिए आसन छोड़ देना होगा। राखाल राजी होकर पुरोहित के आसन पर बैठा, एवं कन्या के पिता के हाथ में कई फूल और वर-कन्या का हाथ देकर वैदिक मंत्र पढ़ना शुरू किया जो मुझे आज भी याद है। ये सजीव हैं कि नहीं, सो मैं नहीं जानता और मंत्रों के संबंध में ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि वेदों में ठीक ये ही शब्द ऋषि लोग छोड़ गए हैं या नहीं।

राखाल पंडित वर से बोले—बोलो, मधु डोमाय कन्याय नमः।

वर ने पढ़ा—मधु डोमाय कन्याय नमः।

राखाल कन्या से बोले—बोलो, भगवती डोमाय पुत्राय नमः।

छोटी लड़की से उच्चारण में कहीं गलती न हो जाय इसलिए मधु स्वयं कह देना चाहता था, इसी बीच शिबू पंडित गरज कर बोला—यह मंतर नहीं है। विवाह नहीं हुआ। मुँह फेर कर देखा कि राजलक्ष्मी हँसी रोकने के लिए मुँह में आँचल डाले हुए है। राखाल पंडित लजा कर कुछ कहना चाहता था, मगर किसी ने उसकी ओर ध्यान ही न दिया। सभी लोग शिबू पंडित से कहने लगे—आप ही मंतर पढ़वा दीजिए, पंडितजी, नहीं तो विवाह न होगा। उन्हें चौथाई दच्छिना देकर बाकी बारह आना आप ही ले लीजिएगा।

शिबू पंडित उदासीनता प्रकट करते हुए बोला—इसमें राखाल का कसूर नहीं है। वास्तव में मेरे सिवा इधर कोई मंतर-वंतर नहीं जानता। मैं अधिक दच्छिना नहीं चाहता। यहीं से मंत्र पढ़ता हूँ, राखाल वर-कन्या से दुहरवावे। और शिबू पंडित मंत्र उच्चारण करने लगा और हारा हुआ राखाल पंडित निरीह भले-मानुस की तरह उसे वर-कन्या से दुहरवाने लगा।

शिबू बोला—बोलो, मधु डोमाय कन्याय भुज्यपत्रं नमः।

वर ने कहा—मधु डोमाय कन्याय भुज्यपत्रं नमः।

शिबू ने कहा—मधु अबकी बार तुम कहो—भगवती डोमाय पुत्राय संप्रदानं नमः।

मधु ने भी कन्या के साथ इसे दुहाराया। सब लोग चुपचाप थे। उस दृश्य को देख कर यही मालूम होता था कि शिबू के समान शास्त्रज्ञ इस प्रांत में कभी आया ही न था।

वर के हाथ में फूल देकर शिबू बोला—तुम कहो विपिन—जितने दिन जीवन तितने दिन लूँगा—भात प्रदानं स्वाहा—

विपिन ने रुक-रुक कर, बहुत देर में इसका उच्चारण किया।

शिबू ने कहा—वर-कन्या दोनों कहो—युगल मिलनं नमः।

वर और कन्या के साथ-साथ मधु ने भी इसका उच्चारण किया। इसके बाद जोरों की ध्वनि हुई। वर-कन्या दोनों को उठाकर घर में ले जाया गया। मेरे चारो ओर सभी एक स्वर से स्वीकार करने लगे कि यह आदमी शास्त्र का पूरा पंडित है! मंतर ठीक से पढ़ चुका है। राखाल अब तक धोखा-धड़ी में कमा-खा रहा था।

वहाँ मैं गंभीर होकर बैठा रहा। अंत में राजलक्ष्मी का हाथ पकड़े घर लौट आया। वहाँ वह न जाने कैसे अपने को रोक कर बैठी हुई थी, मगर घर आते ही जोर-जोर से हँसने लगी। पेट फूलने लगा। बिस्तर पर लोट-पोट कर बार-बार कहने लगी—आज एक सच्चा महामहोपाध्याय देखा, राखाल अब तक इन लोगों को ठग-ठुग कर खाता था। पहले मेरी हँसी भी न रुकी। फिर बोला—दोनों ही महामहोपाध्याय थे। इसी तरह इनकी लड़कियों और दादियों का ब्याह भी तो होता आया है। राखाल के मंत्र चाहे जैसे हो पर शिबू के मंत्र भी तो ऋषिरवाच नहीं थे। इतने पर भी इनका मंत्र विफल नहीं हुआ। विवाह हो ही गया—आज तक गठ-बंधन दृढ़ है—अटूट है।

राजलक्ष्मी चुप होकर बैठ गई। एक टक से मेरी ओर ताकती हुई सोचने लगी।

६

सवेरे उठ कर सुना कि कुशारी महाशय मध्याह्न-भोजन के लिए निमंत्रण दे गए हैं। ठीक यही आशंका मुझे भी हो रही थी। मैंने पूछा—अकेले ही जाना होगा मुझे?

राजलक्ष्मी ने हँस कर कहा—नहीं, मैं भी चलूँगी।

जाओगी?

जाऊँगी क्यों नहीं?

उसके इस निस्संकोच उत्तर से मैं अवाक् रह गया। हिन्दू-धर्म के खान-पान एवं उस पर समाज की निर्भरता का ज्ञान राजलक्ष्मी को खूब था, और कितनी बड़ी निष्ठा से वह इस राह पर चलती थी, यह भी मैं जानता था, अथच यही उसका जवाब था। कुशारी महाशय के संबंध में मैं अधिक नहीं जानता। बाहर से उन्हें जितनी बार देखा है, उससे मालूम पड़ा कि वे आचरण-परायण ब्राह्मण हैं। वे राजलक्ष्मी की कहानी नहीं जानते थे, उन्होंने तो केवल मालिक समझ कर ही निमंत्रित किया था। किंतु राजलक्ष्मी वहाँ जाकर कैसे क्या करेगी यह नहीं समझ सका। मेरा सवाल समझ लेने पर भी जब वह चुप रही तब मैं निर्वाक् रह गया।

यथासमय बैलगाड़ी आकर लग गई। मैं तैयार हो कर बाहर आया तो देखा कि राजलक्ष्मी गाड़ी के पास खड़ी है।

मैंने पूछा—जाओगी नहीं?

उसने कहा—जाने के लिए ही तो यहाँ खड़ी हूँ। इतना कह कर वह गाड़ी में बैठ गई।

रतन साथ जायगा। वह भी मेरे पीछे था। मालकिन के बनाव-सिंगार से वह चकित हो गया। उसके मुँह से यह टपकता था। आश्चर्य तो मुझे भी हुआ, पर मैं रतन की तरह चुप ही रहा। घर पर वह बेसी गहने नहीं पहनती थी। इधर कुछ दिनों से तो एकदम कम हो गया था; आज उसके बदन पर कुछ भी न था। जो हार हमेशा उसके गले में पड़ा रहता था, केवल वही पहने थी और हाथों में एक-एक कड़ा। मुझे ठीक से तो याद नहीं है, पर इतना ही याद है कि शायद रातवाली चूड़ियों को भी उसने उतार दिया था। साड़ी बिलकुल मामूली थी। जिसे नहा कर पहन लिया था, शायद वही थी। गाड़ी में चढ़ कर धीरे-धीरे मैंने कहा—देख रहा हूँ कि एक-एक करके सब को छोड़ दिया है। केवल मैं ही बच गया हूँ।

मेरी ओर देख कर वह हँस कर बोली—यह भी तो संभव है कि इस एक में ही सब कुछ रह गया हो। इसीलिए जो बढ़ती थी वह एक-एक करके झाड़ गई है। इतना कह कर उसने पीछे देखा कि रतन था या नहीं। फिर धीरे-धीरे बोली, ताकि गाड़ीवान न सुन ले—बस तो, तुम ऐसा ही आशीर्वाद करो न।

मेरे लिए तो तुम से बड़ा और कुछ भी नहीं है। इसके बदले तुम्हें भी आसानी से दे दूँ, ऐसा आशीर्वाद तुम करो न।

मैं चुप रह गया। जबान जिस ओर चली गई थी कि जिसका जिक्र करना मेरे दिमाग के बाहर था। वह चुपचाप बड़ा तकिया खींच कर मेरे पैरों के पास पड़ रही। गंगामाटी से पोड़ामाटी जाने की राह एकदम सीधी भी है। नाले में एक बाँस का पतला पुल है, उससे हो कर आदमी दस मिनट में वहाँ पहुँच जा सकता है। बैलगाडी घूम कर जाती है और घूमने में करीब दो घंटे लग जाते हैं। फिर हम दोनों चुप रहे। वह मेरे हाथ को अपने गले तक खींच कर मानों सो गई।

दोपहर को गाड़ी कुशारी महाशय के दरवाजे पर पहुँची। मालिक और मालकिन, दोनों ने ही हम लोगों का स्वागत किया। अत्यंत सम्मानित अतिथि की तरह वे हम लोगों को एकदम भीतर ले गए। थोड़ी देर में ही मैं समझ गया कि शहर से दूर, इन गाँवों में भी परदे का वैसा रिवाज नहीं है। हम लोगों के शुभागमन से कुशारी परिवार के यहाँ बहुत से लोग एकत्रित हो गए। वे अत्यंत प्रीतिपूर्ण और आत्मीय की तरह व्यवहार करने लगे। उनमें सभी स्त्रियाँ ही नहीं थीं। राजलक्ष्मी घूँघट नहीं काढ़ती थी। मेरी ही तरह वह भी बरामदे में एक आसन पर बैठी हुई थी। इस अनजान स्त्री को देख कर भी उन्हें खास संकोच नहीं हुआ। यह भाग्य की बात थी कि बातचीत केवल उन्हीं से नहीं, बल्कि मुझ से भी होने लगी। घर के मालिक और मालकिन दोनों व्यस्त थे। केवल उनकी विधवा लड़की ताड़ के पंखे से राजलक्ष्मी को हवा कर रही थी। और मैं क्या हूँ, मुझे कौन-सी बीमारी है, जगह पसंद है कि नहीं, जमींदार का काम स्वयं नहीं देखने से चोरी होती है कि नहीं, उसमें कुछ नया बंदोबस्त करने की आवश्यकता है कि नहीं।—इत्यादि अर्थ और व्यर्थ नाना तरह के प्रश्नोत्तर से मैं धीरे-धीरे कुशारी महाशय की गार्हस्थि अवस्था का पर्यवेक्षण कर देखने लगा। घर में बहुत से कमरे थे। पर वे सब-के-सब मिट्टी के थे; तथापि सोचा कि काशीनाथ कुशारी की अवस्था संपन्न तो है ही, जान पड़ता है कि ये विशेष रूप से संपन्न हैं। बाहर से प्रवेश करते ही चंडी-मंडप के पास धान का एक ढेर देखा, भीतर आँगन में भी दो ढेर मौजूद थे। रसोई घर

सामने ही था। उसके उत्तर एक छप्पर के नीचे दो-तीन ढेंकियाँ थीं। धन-कुट्टी शायद कुछ दिन पहले ही खतम हो गई थी। सामने ही जमीरी नींबू का एक पेड़ था। उसके नीचे धान उसीनने के दो-तीन चूल्हे थे—लीपे-पुते, साफ-सुथरे। वहीं दो पुष्ट बछड़े भी बँधे हुए थे। उनकी माताओं को तो नहीं देखा, पर समझ गया कि कुशारी परिवार में अन्न की भाँति दूध का भी अभाव नहीं है। दक्षिण के ढाबे में छ-सात गागरें रखी हुई थीं। शायद उसमें गुड़ या और अनाज होगा। मगर हिफाजत देखकर यह कोई नहीं कह सकता कि वे उपेक्षा की चीजें होंगी। खूंटियों में सन और पटुर पड़े हुए थे। इससे इस बात का अनुमान लगाना आसान हो गया कि घर में डोरी-रस्सी-उबहन की आवश्यकता पड़ती ही है। कुशारी महाशय एक बार ही दर्शन देकर अन्तर्ध्यान हो गए थे। शायद कुशारिनजी भी स्वागत-कार्य में ही संलग्न थीं। थोड़ी देर बाद वे घबड़ाए हुए आए और राजलक्ष्मी से बोले—बेटी जाता हूँ, जाप-आह्निक से फुरसत पाकर ही बैठूँगा। पंद्रह-सोलह साल का एक सुंदर और सबल लड़का खड़ा हो कर ध्यान से हम लोगों की बातें सुन रहा था। उसे देखते ही कुशारी महाशय कहने लगे—बेटा हरिपद, मालूम होता है कि नारायण का प्रसाद तैयार हो गया है। जाकर जल्दी से भोग लगा दो। आह्निक खतम कर देने में मुझे अब ज्यादा देर न लगेगी। हम लोगों को देख कर बोले—आज आप लोगों को झूठे ही कष्ट दिया—बड़ी देर हो गई। इतना कह कर वे स्वयं अदृश्य हो गए।

इस बार यथासमय अर्थात् यथासमय से ढेर देरी के बाद मध्याह्न भोजन की खबर आई। मैं बच गया। केवल देर हो जाने से ही नहीं। बल्कि आगंतुकों के प्रश्नबाण से बच जाने के कारण ही मुझे सुख का अनुभव हुआ। भोजन की तैयारी होते देख कर, कुछ देर के लिए वे घर चले गए। मैं अकेले ही खाने बैठा। कुशारी महाशय मेरे सामने में बैठ गए। विनय और गौरव से उन्होंने स्वयं ही बता दिया। जनेऊ पड़ जाने के बाद से आज तक खाने के समय वे बराबर मौन रहे। यह प्रतिज्ञा कभी भंग न हुई। अकेले कोठरी में वे भोजन करते थे। इससे न तो मुझे आश्चर्य ही हुआ और न कुछ आपत्ति ही। राजलक्ष्मी को भी आज शायद कोई मत था। वह आज भोजन न करेगी यह

सुन कर मुझे क्षोभ नहीं हुआ। इसकी आवश्यकता भी मैं न समझ सका। पर राजलक्ष्मी तुरंत इसे समझ गई। वह बोली—इसके लिए तुम नाराज मत होओ। ठीक से खा लो। यह सब को मालूम है कि मैं आज नहीं खाऊँगी।

मैं बोला—सिर्फ मैं ही यह नहीं जानता। यदि ऐसी बात थी तो कष्ट करके आने की क्या जरूरत थी!

राजलक्ष्मी ने इसका जवाब न दिया। कुशारिन ने इसका जवाब दिया। वे बोलीं—इतना कष्ट उठाने के लिए इन्हें मैंने मजबूर किया है बेटा। ये यहाँ भोजन न करेंगी, यह मैं भी जानती थी, लेकिन जिनसे हमारा पेट चलता है उनके पैरों की धूल से हमारा घर पाक हो जाय, इतना लोभ मैं नहीं संवरण कर सकी। ठीक है न बेटी! वे राजलक्ष्मी को देखने लगीं। राजलक्ष्मी बोली—इसका उत्तर आज नहीं किसी दूसरे दिन दूँगी मा। इतना कह कर वह हँसी।

पर मैं अचरज के साथ कुशारिन का मुँह ताकने लगा। गाँव-गँवई की, खास कर ऐसे अलटा गाँव की स्त्री से ऐसी बातें सुनने की आशा मुझे न थी। यह कभी न सोचा था कि इस गाँव-गँवई में एक और आश्चर्यजनक स्त्री का परिचय प्राप्त होगा। परोसने का भार अपनी विधवा बेटी पर सौंप कर कुशारिन जी पंखा लेकर मेरे पास बैठीं। वे मुझ से उमर में ज्यादा बड़ी थीं, शायद इसी से भर कपार कपड़ा के अलावा और कोई परदा न था। वे सुंदर थीं की असुंदर, मुझे कुछ भी मालूम न हुआ। पर निस्संदेह उनमें भारतीय माता की करुणा थी, स्नेह था। कुशारी महाराज दरवाजे पर खड़े थे। उनकी लड़की ने चाल करके कहा—बाबू जी, थाली परोस चुकी हूँ। कुबेर तो बहुत हो गया था। वे शायद इसी की प्रतीक्षा में खड़े थे। इतने पर भी मुझे देखकर बोले—अभी ठहरो बेटी, इन्हें जेंव लेने दो।

ठीक उसी वक्त घरनी बोल उठी—नहीं, नहीं, तुम जाकर खा लो। बेकार दिन मत काटो। मुझे मालूम हुआ है कि रसोई ठंढी हो जाने पर तुम खा नहीं सकोगे।

कुशारी जी दुविधा में थे, वे बोले—क्या बिगड़ता है! ये जेंव लें। बस।

कुशारिन जी बोलीं—मेरे रहते अगर खाने में कोर-कसर रह जाय तो तुम्हारे यहाँ खड़े रहने से पूरा तो होगा नहीं। जाओ—ठीक है न बेटा! और वे मुझे

देख कर हँसी। मैं हँस कर बोला—आप रहिएगा तो कमी रह जायगी। आप जाइए, भूखे खड़े रहने से किसी को भी फायदा न होगा। वे तो धीरे से चुपचाप चले गए। पर मुझे बाद में मालूम हुआ कि सम्मानित अतिथि के भोजन के समय पास नहीं रहने के कारण उन्हें बड़ा संकोच हुआ। यह मेरी बड़ी भूल थी। वे चले गए तब कुशारिन बोली—निरामिष अरवा चावल का भात खाते हैं बेटा, ठंढा हो जाने पर खाते ही नहीं। इसी वजह से जबरन भेज दिया। मगर एक बात है बेटा, अन्नदाता से पहले खा लेना बड़ा कठिन होता है।

इस बात से मैं शरमा गया। मैं बोला—मैं अन्नदाता नहीं हूँ। यदि यह सच भी है तो इतना कम कि छूट जाने पर आपको उसका पता भी शायद न लगेगा।

कुशारिन जी थोड़ी देर तक चुप रहीं। उनका चेहरा धीरे-धीरे फीका पड़ गया। कुछ देर बाद वे कहने लगीं—तुम झूठ नहीं बोल रहे हो बेटा। भगवान् ने हम को दिया है बहुत। अगर इतना भी न देते तो शायद उनकी कृपा ही होती। घर में सिर्फ एक बेवा लड़की ही तो है। कोठी-कोठी धानों का, कड़ाही भर दूध का, मेटा भर गुड़ का कौन भोग करेगा! इनके भोगनेवाले तो हमें छोड़ कर चले गए हैं।

बात कुछ वैसी न थी। पर कुशारिन जी की आँखें छलछला आईं और होंठ फूल गए। मुझे यह समझते देर न लगी कि उनके शब्दों में गंभीर वेदना निहित है। मैंने समझ लिया कि शायद इनका योग्य लड़का मर गया और जिस लड़के का अवलंब था, उससे भी कुछ शांति न मिल रही हो। मैं तो और, राजलक्ष्मी भी उनका हाथ अपने हाथ में लेकर चुपचाप बैठी रही। बाद की बातों से मेरी गलतफहमी दूर हो गई। वे अपने को रोक कर बोलीं—उन लोगों के अन्नदाता भी तो तुम्हीं हो। मैंने उनसे (कुशारी महाशय से) कहा कि मालिक से अपना दुखड़ा रोने में कोई हरज नहीं है। एक दिन उन्हें नेवता दे कर लिवा लाओ। अरज-गरज सुनाने से शायद कुछ लाभ हो। इतना कहकर वे आँख पोंछने लगीं। राजलक्ष्मी भी मेरी ही तरह संशय में पड़ी हुई थी। सब लोग चुप रहे। कुशारिन जी फिर दुखड़ा सुनाने लगीं। हम लोग चुपचाप सुनते रहे। मगर यह समझ लेने में देर न लगी कि इतना कहने के लिए इतनी ही

भूमिका की आवश्यकता थी। राजलक्ष्मी दूसरों के यहाँ भोजन नहीं करती, यह जान कर भी कुशारी जी को निमंत्रण देने के लिए भेज दिया गया था। किंतु और जो भी हो कुशारिनजी ने आँखों में जल भर कर अस्फुट वाक्य में जो कुछ कहा, वह मैं नहीं जानता, और यह बात सच है, इसका निर्णय भी एक पक्ष की बात सुन कर नहीं कर सकता; किंतु हम लोगों से जिस समस्या को हल कर देने के लिए उन्होंने कहा, वह जितनी आश्चर्यजनक थी, उतनी ही मधुर और उतनी ही कठोर।

कुशारिनजी जो दुखड़ा सुना गईं उसकी मोटी कहानी यों है। उसके घर में खाने-पीने को यथेष्ट है। फिर ये चीजें केवल विष नहीं हो गई हैं बल्कि वे लोग संसार के सामने मुँह दिखाने के लायक भी नहीं रह गए हैं। इस दुख का मूल कारण थी उनकी देवरानी सुनंदा। यद्यपि उनका देवर यदुनाथ न्यायरत्न कम दुश्मनी नहीं करता था, किंतु असली कारण सुनंदा ही थी। और विद्रोहिनी सुनंदा और उसका स्वामी जब हम लोगों की ही प्रजा थे, तब चाहे जैसे हो इसका निपटारा करना ही होगा। संक्षिप्त घटना ऐसे है। जब उनके सास-ससुर मर गए तब वे इस घर की वधू थी। यदु उस समय छ-सात बरस का लड़का था। लड़का पोस-पाल कर आदमी बनाने का भार उन्हीं पर था और उस दिन से आज तक वे निर्वाह करती आई थीं। बपौती माल में एक मिट्टी का घर था और केवल तीन बीघा जमीन—कुछ घर जर-जजमान भी। इतनी ही संपत्ति लेकर उनके स्वामी को संसार-सागर में कूदना पड़ा। आज जो इतनी चीज है वह सब उन्हीं का उपार्जन किया हुआ था। देवर जरा भी इसमें सहायक न हुआ था। मदद करने को कभी उससे कहा भी नहीं गया था।

मैंने कहा—जान पड़ता है अब वे दावी कर रहे हैं!

कुशारिन जी सिर हिला कर बोलीं—दावी कैसा बेटा, यह सब तो उसी का है। सब कुछ तो वही लेता, अगर सुनंदा मेरी सोने की गृहस्थी को जला कर राख न बना देती।

मैं अच्छी तरह न समझ सका। अचरज के साथ पूछा—पर आपका यह लड़का!

पहले तो मेरी बात न समझ सकीं, बाद में समझ कर बोलीं—उस विजय की बात कर रहे हो बेटा। वह मेरा लड़का नहीं है बेटा। वह एक विद्यार्थी है। देवरजी के टोल में पढ़ता था, अभी भी वहीं पढ़ता है, मेरे पास केवल रहता है। इससे विजय संबंधी अज्ञता दूर हो गई। वे फिर कहने लगीं—कितनी तकलीफ से पाल-पोस कर देवर को आदमी बनाया है, यह भगवान् ही जानते हैं, टोले-पड़ोसे के लोग भी कुछ-कुछ जानते हैं। किंतु खुद तो आज वह सब कुछ भूल गया है केवल हम लोग ही नहीं भूल सके हैं। इतना कह कर, आँखों का कोना पोंछ कर वे फिर बोलीं—पर वह सब जाने दो बेटा, बहुत सी बातें हैं। देवर को मैंने जनेऊ दिलवाया, मालिक ने उसे पढ़ने के लिए मिहिरपुर—शिबू तर्कालंकार के टोल में भेज दिया। बेटा, लड़के को मैं अकेले नहीं छोड़ सकी और कई दिन तक जा कर मिहिरपुर रह आई। यह सब आज याद नहीं है। जाने दो—इसी तरह कितने बरस बीत गए। देवर का पढ़ना खतम हो गया—मालिक उसे संसारी बनाने के लिए न जाने कहाँ-कहाँ लड़की खोजते फिरे; इसी समय, बिना कहे-सुने शिबू तर्कालंकार की बेटी सुनंदा को ब्याह लाया। मेरी बात मत पूछो बेटा, उसने अपने भाई से भी न पूछा।

मैंने धीरे-धीरे पूछा—न पूछने का कोई विशेष कारण था?

गृहिणी बोलीं—था नहीं। वे हम लोगों से शील-मान-मर्यादा में बहुत छोटे हैं। मालिक रंज हुए, दुख और लज्जा से महीने भर तक किसी से बोले भी नहीं। सुनंदा का मुँह देखते ही मैं गल गई। जब सुना कि उसकी मा मर गई है, बाप देवरजी को सौंप कर सन्यासी होकर चला गया है; तब उस छोटी सी बहू को पाकर कितनी खुशी हुई सो मैं नहीं कह सकती। लेकिन कौन जानता था कि एक दिन वह इसका ऐसा बदला देगी? इतना कह कर वे बिलख-बिलख कर रोने लगीं। मैं समझ गया कि दुख अधिक है; पर चुप रहा। राजलक्ष्मी भी अब तक कुछ न बोली थी; इस बार उसने धीरे से पूछा—आजकल वे कहाँ हैं?

सिर हिला कर उन्होंने जो भी कहा, उससे पता चल गया कि अभी वे लोग इसी गाँव में रहते हैं। बहुत देर तक कुछ बातचीत नहीं हुई। असली बात तो अभी तक समझ में नहीं आई थी। मेरा भोजन भी प्रायः खतम होने को था,

रोने-धोने से भी विशेष विघ्न नहीं हुआ। सहसा वे सीधी हो कर बैठ गईं। मेरी थाली की ओर देखकर अनुतप्त कंठ से बोल उठीं—जाने दो बेटा, सब दुखड़ा सुना देने से बात खतम नहीं होगी और तुम लोगों को धीरज भी न रहेगा। इस सोने की गृहस्थी को जिन्होंने देखा है वे ही जानते हैं कि छोटी बहू ने कितना सत्यानाश कर दिया है। केवल उसी का लंकाकांड तुम लोगों को संक्षेप में सुनाऊँगी।

जिस संपत्ति के ऊपर हम लोग आज निर्भर हैं वह एक जुलाहे की थी। कुछ बरस पहले एक दिन उसकी विधवा स्त्री अपने नाबालिग लड़के को ले कर आई। बिगड़ कर वह न जाने क्या-क्या कह गई, इसका कुछ ठिकाना नहीं। चाहे वह झूठ हो चाहे सच—छोटी बहू स्नान करके रसोई घर में जा रही थी, वह सब सुन कर पथरा गई। वह तो चली गई पर छोटी बहू का यह भाव दूर नहीं हुआ। मैंने चाल करके कहा—सुनंदा खड़ी क्यों हो, कुबेर हो रहा है। उसकी आँखों से अंगारे निकल रहे थे—साँवला मुँह एकदम सफेद हो गया था। जुलाहिन की सारी बातों से उसके शरीर का खून सूख गया था। उस समय तो उसने जवाब नहीं दिया, पर आस्ते-आस्ते नजदीक आकर बोली—दीदी, जुलाहिन को उसकी जायदाद वापस न कर दोगी! उसके एकमात्र नाबालिक लड़के को तुम लोग राह का भिखारी बना दोगी!

आश्चर्यचकित होकर मैंने कहा—सुनो, इसकी बात! कन्हाई बसाक की सारी जायदाद नीलाम हो चुकी थी। अपनी खरीदी हुई चीज कौन किसको दे देता है छोटी बहू!

छोटी बहू बोली—मगर ससुर जी को इतने रुपए कहाँ से आए!

बिगड़ कर मैंने जवाब दिया—जाकर अपने ससुर जी से पूछो, जिनने खरीदा है। इतना कह कर आह्निक करने चली गई।

राजलक्ष्मी ने कहा—खरीद की हुई जायदाद कौन वापस देता है! छोटी बहू कैसे लौटा देने को कहती है!

कुशारिन जी बोलीं—बतलाओ तो बेटी। लेकिन इतना कहते ही उनका चेहरा काला हो गया। फिर कहा—नीलाम होने पर इसकी बिक्री नहीं न हुई थी। हम लोग उसके पुरोहित थे। मरने के समय कन्हाई बसाक सब जायदाद

का भार इन्हीं के ऊपर छोड़ गया। पर इन्हें तो नहीं मालूम था कि उसके ऊपर दुनिया भर का करजा लदा हुआ था।

उनकी बात सुनकर हम लोग दोनों ही फक् हो गए। मेरा हृदय एक गंदी चीज से मैला हो गया। कुशारिन जी इसे न समझ सकीं। वे बोलीं—जप-आह्निक खतम करके लौटी तब तक सुनंदा बैठी थी। पर जरा भी न हिली-डुली। कचहरी का काम समाप्त कर वे आते ही होंगे। बिनू को लेकर देवर मेला देखने गए थे। वे भी जल्दी आ जाते। विजय को नहाकर पूजा करना था—यह सब सोच कर मैं खीस में भूत हो गई। डाँट कर बोली—आज तू रसोई नहीं बनावेगी? जुलाहिन की झूठी बात ही सोचती रहेगी बैठी-बैठी?

सुनंदा बोली—जायदाद अपनी नहीं है दीदी। जब तक तुम उसे लौटा न दोगी तब तक रसोई घर में न ढूकूँगी। एक पितृहीन नाबालिग लड़के की जायदाद छीन कर अपने पति-पुत्र के मुँह में कौर न जाने दूँगी। और वह अपने कमरे में चली गई। यह मुझे मालूम था कि सुनंदा कभी झूठ नहीं बोलती। अपने बाप से उसने बहुत-सा शास्त्र पढ़ लिया था। पर इतना न जानती थी कि वह इतना काठ होगी। मैं जल्दी-जल्दी रसोई बनाने लगी। सब मरद घर आ गए। सुनंदा आकर दरवाजे के पास खड़ी हो गई। मैं हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाने लगी, पर वह न मानी, न मानी। वे खाने को बैठ ही रहे थे तभी पूछ बैठी—जुलाहे की जायदाद के बदले आपने रुपया दिया है? आप ही लोग तो कहते थे कि बाबू जी कुछ छोड़ कर न मरे थे, तो जायदाद खरीदने के लिए रुपए आए कहाँ से?

जो सुनंदा कभी अपनी परछाँही भी न दिखाती थी उसके मुँह से यह सवाल सुन कर उन्हें काठ मार गया। वे बोले—इसका क्या मतलब बेटी?

सुनंदा ने कहा—इसका मतलब तो आप ही जानते होंगे। आज जुलाहिन अपने नाबालिग लड़के को लेकर आई थी। उसने जो कुछ कहा, उसे दुहराना बेकार है। आप तो सब जानते ही हैं। अगर आप उसे उसकी जायदाद नहीं लौटा देंगे तो आज से ताजिंदगी मैं अपने पति-पुत्र को उसका एक दाना भी न खाने दूँगी।

—बेटा, मुझे तो जान पड़ रहा था कि मैं सपना देख रही थी। सुनंदा पर

भूत सवार था। अपने ससुर को वह देवता समझती थी और उन्हीं के साथ ऐसी बात! वे थोड़ी देर तक तो चुपचाप बैठे रहे, फिर बोली—जायदाद चाहे पुण्य की हो या पाप की, यह है मेरी, तुम्हारे पति-पुत्र की नहीं है, अच्छी न लगे तो कहीं और जाकर रहो। वे थाली छोड़ कर उठ गए। दिन भर उन्होंने कुछ खाया-पिया तक नहीं। मैं देवर के पास जाकर बोली—ठाकुर, मैंने तुम्हें पोसा-पाला है। यह उसी का बदला ले रहे हो क्या! उसकी आँखें भर आईं। वह बोला—भाभी, तुम मेरी माँ की तरह हो और भैया पिता की तरह। पर तुम दोनों से भी बड़ी चीज है धर्म। सुनंदा ने जरा भी अनुचित नहीं कहा है। ससुर जी ने सन्यास लेने के दिन उसे आशीर्वाद देकर कहा था—बेटी, धर्म यदि सच में तुझे प्रिय है तो वही एक दिन तुम्हें राह दिखा कर आगे ले चलेगा। मैं उसे छुटपन से ही पहचानता हूँ भाभी, वह बेजा नहीं कहती।

हाय रे, फूटी किस्मत! उसे भी उस कालखाही ने उसका दिया था। एक भादों की रात में, जब ठहाठह पानी पड़ रहा था तभी अपने लड़के को लेकर निकल गई। ससुर जी के समय का एक रैयत था। दो साल पहले ही वह मर गया था। उसके घर में एक कोठरी थी। वह उसी में जाकर रहने लगी—सियार-कुत्ते साँप-मेढकों के साथ। मैंने रो-धो कर कहा—सत्यानाशिन, यदि तुझे यही करना था तो इस घर में क्यों आई थी! बिनू को भी तू यहाँ लेती आई! ससुर की लाज मिटा देने पर तुली हुई है! पर वह चुप रही। मैंने फिर कहना शुरू किया—खाओगी क्या! उसने कहा—ससुर जी के तीन बीघे ब्रह्मोत्तर जमीन में आधी मेरी है। यह सुन कर जी में आया कि सिर फोड़ कर मर जाऊँ। मैंने फिर कहा—अभागिन, उससे एक दिन भी गुजर चलेगा! तुम लोग तो भूखों रह कर मर जाओगे, मगर यह बिनू! उसने कहा—जरा कन्हाई बसाक के लड़के की भी तो सोचो दीदी। अगर उसी की तरह दर-ब-दर घूम कर बिनू जीवित रहे तो बहुत है।

वे चले ही गए। घर भर रोने-कलपने लगा। रात भर घर में न दीया जला और न चूल्हा सुलगाया गया। रात भर हम लोग सोये नहीं। शायद बिनू भूखे रह गया होगा, इसी कारण मैंने राखाल के हाथ गाय भेजवा दी

तो उसने यह कह कर लौटा दी—बिनू को मैं दूध नहीं पिलाना चाहती। बिना दूध के ही जिंदा रहना उसे सिखलाऊँगी।

राजलक्ष्मी ने जोर से साँस ली। कुशारिन जी शायद उस दिन की वेदना और अपमान से चुप रह गईं। मेरे हाथ का दाल-भात सूख गया। खड़ाऊँ की आवाज सुन पड़ी। कुशारी जी का मध्याह्न-भोजन शायद खतम हो चुका था। मैं समझता हूँ कि शायद उनके मौन व्रत में कोई बाधा न पड़ी होगी। कुशारिन आँख पोंछ कर, नाक और गला साफ कर फिर बोलीं—बेटा, गाँव-घर से इतनी फजीहत हुई कि मैं तुम्हें क्या बताऊँ। उन्होंने कहा—चले जाने दो, तकलीफ होगी तो आप ही चली आवेगी। मैंने कहा—तुम उसे नहीं पहचानते, टूट जायगी पर वह कभी नहीं झुकेगी। यों ही आठ महीने बीत गये। वह न झुकी। बच्चों को हम लोग जान से भी ज्यादा समझते थे। देवर भी लड़के की तरह प्यारा था। सोच में पड़ कर वे काँटा हो गये। अंत में एक दिन हम लोगों ने कहलवा भेजा कि जुलाहिन का प्रबंध करा दिया जाता है, उसे कोई तकलीफ न होगी। इस पर भी वह अड़ी रही—उसका जितना भी पावना हो, वह सब दे दें तो उस घर में आऊँगी। तनिक भी बाकी रहा तो मेरा आना न होगा। इसका मतलब था कि हम लोग मृत्यु को निमंत्रण दे दें।

मैं गिलास में हाथ डुबा कर बोला—तो उनका काम-धाम कैसे चलता है!

कुशारिन जी दुखी होकर बोलीं—यह मुझ से न पूछो बेटा। किसी के पूछने पर मैं कान में उँगली डाल देती हूँ—मेरी जान निकलने लगती है। आठ महीने से इस घर भी अभी तक मछली नहीं आई है, दूध नहीं औंटा गया है। घर भर में अभिशाप छोड़ कर चली गई है। इसके बाद वे चुप हो गईं और हम तीनों आदमी कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे।

एक घंटा बाद हम लोग गाड़ी पर सवार हुए। कुशारिन जी राजलक्ष्मी से बोलीं—बेटा, वे भी तुम्हारी ही प्रजा हैं। गंगामाटी में ही रहते हैं।

राजलक्ष्मी सिर हिला कर बोली—अच्छा।

जब गाड़ी चली तब उन्होंने फिर कहा—बेटी, तुम्हारे घर से उनका घर दिखाई पड़ता है। नाले के इधर का टूटा-फूटा घर—वही।

राजलक्ष्मी फिर उसी तरह गरदन हिला कर बोली—अच्छी बात है।

गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी। बहुत देर तक हम लोग चुप रहे। राजलक्ष्मी भी कुछ सोच रही थी। मैंने कहा—लक्ष्मी, जिसको लालच नहीं, जो कुछ नहीं चाहता, उसकी सहायता के लिए जाना विडंबना की बात है।

राजलक्ष्मी मुसकराती हुई बोली—मैं जानती हूँ। तुम से चाहे और कुछ न सीखा हो पर इतना तो अवश्य सीख लिया है।

७

जब मैं अपना विश्लेषण करने बैठता हूँ तो जिन थोड़े-से नारी-चरित्रों ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया, उसमें कुशारी महाशय की विद्रोहिनी भ्रातृ-जाया सुनंदा भी है। अपने लंबे जीवन में मैं सुनंदा को नहीं भूल सका हूँ। मनुष्य को वह बड़ी सरलता से अपने वश में कर लेती है। एक दिन सुनंदा ने मुझे भैया कह कर पुकारा तो उसे आश्चर्य न हुआ। मुझे इस आश्चर्यजनक लड़की को पूर्णरूपेण जानने का दूसरा सुयोग कभी न मिलता। यदुनाथ तर्कालंकार का घर—टूटा-फूटा हुआ, हमारे घर के पश्चिम की ओर था। जब से मैं यहाँ आया तभी से उसे रोज देखता था। मैं केवल इतना ही जानता था कि उसमें एक विद्रोहिनी अपने पति-पुत्र के साथ रहती थी। 'पुल पार कर जाने पर लगभग दस मिनट की राह है। बीच में पेड़-बगान कुछ भी नहीं है, इसलिए ऊसर-सा मालूम पड़ता है। सबेरे जब मैं उठा तो उसी पर निगाह पड़ी। उस श्रीहीन खँड़हर की ओर मैं वेदना के साथ देखता रहा। संसार में बाहर से देख कर किसी चीज का अंदाज नहीं लगाया जा सकता। इसे मैं बहुत बार भूल गया हूँ। सामने के जीर्ण-शीर्ण मकान को कुत्ते-सियारों का घर कौन नहीं कहता! उस खँडहर में संस्कृत ग्रंथों का पठन-पाठन होता था, एवं एक अध्यापक अपने छात्रों को न्याय और मीमांसा उसी खंडहर में पढ़ाता था। कौन जानता था कि उसी खंडहर में इस पुण्य-भूमि की एक युवती धर्म और न्याय की रक्षा करने के लिए स्वेच्छा से अनेकानेक कष्ट सह रही है!

आँगन में कुछ हो-हल्ला हो रहा था। रतन कुछ कह रहा था और राजलक्ष्मी उसका खंडन कर रही थी। रतन की आवाज ही अधिक जोर की थी। मैं वहाँ पहुँच गया। राजलक्ष्मी शरमा गई। वह कहने लगी—नींद टूट गई क्या!

टूटेगी क्यों नहीं। भैया रतन, तू अपनी आवाज कम कर दो बाबा। अब मुझसे नहीं सहा जायगा।

केवल रतन ही नहीं, घर भर के लोग ऐसी शिकायतों से तंग आ गये थे। मैं चुप रहा। देखा कि एक खाँचे में रखा हुआ था—चावल, दाल, तरकारी आदि और एक छोटी डलिया में भाँति-भाँति की और चीजें। शायद रतन से वह नहीं चलता था इसीलिए वह प्रतिवाद कर रहा था। बात भी यही थी। राजलक्ष्मी मुझे लक्ष्य करके बोली—सुनो इसकी बात। इतना बोझ इससे नहीं चलेगा। इतना तो मैं ले जा सकती हूँ, रतन। यह कह कर उसने टोकरी उठा ली।

उसे ले जाना रतन के लिए कोई बड़ा काम न था। पर उसकी इज़्ज़त में बट्टा लगता। राजलक्ष्मी के सामने मारे शरम के वह इसे कबूल नहीं करना चाहता था। मैं उसे देखकर जल्दी से समझ गया। हँस कर बोला—आदमी की तो यहाँ कमी नहीं है तुम्हें—किसी से भेज दो। रतन यों ही हाथ डोलाता चला जायगा।

रतन आँखें छिपा कर खड़ा था। वह हँस पड़ी और बोली—तो इतनी देर से झगड़ क्यों रहा था अभागा? साफ़ साफ़ क्यों नहीं कह देता था कि रतन बाबू यह न ले जाएँगे। जाओ, किसी को बुला लाओ।

रतन के चले जाने पर मैंने पूछा—सबेरे ही उठ कर यह सब क्या कर रही हो?

राजलक्ष्मी ने कहा—खाने की सामग्री तो सबेरे ही भेज देनी चाहिए।

मैंने पूछा—कहाँ भेज रही हो यह भी तो मैं जानूँ?

राजलक्ष्मी बोली—खाएँगे आदमी और जा रही है ब्राह्मण के यहाँ।

मैंने कहा—किस ब्राह्मण के यहाँ?

राजलक्ष्मी हँसने लगी। कुछ देर तक चुप रह कर वह सोचने लगी कि मना बताना उचित था या नहीं। फिर उसने कहा—देकर कहने से पुण्य घट जाता है। तुम जाकर हाथ-मुँह धोओ। तुम्हारे लिए चाय तैयार है।

मैंने और कुछ न पूछा। बाहर चला गया।

करीब दस बजा होगा। कोई काम न था। बाहर के कमरे में तख्ते पर बैठ कर एक पुराने साप्ताहिक का विज्ञापन पढ़ रहा था। इतने में एक

अपरिचित आदमी की आवाज सुनाई पड़ी। देखने पर भी वे अपरिचित ही जान पड़े। उन्होंने कहा—नमस्कार, बाबू जी।

मैंने भी नमस्कार किया और कहा—बैठिए।

ब्राह्मण अत्यंत दीन वेष में था। पैर में जूते न थे। कुरता भी न था। एक मैली चादर ओढ़े हुए था। धोती भी मैली थी, पर इतनी फटी कि गाँठें पड़ी थीं। देहात के भद्र पुरुष का यह वेष विस्मय का विषय नहीं है। इसी से उनकी गार्हस्थिक अवस्था का अंदाज लगाया जा सकता था। वे एक बाँस के मोढ़े पर बैठ कर बोले—मैं भी एक गरीब प्रजा हूँ। मुझे इसके और पहले आना चाहिए था। बड़ी गलती हुई।

जब मुझे कोई जमींदार कहता या समझता तो मुझे शरम लगती और कभी-कभी मैं झुँझला उठता। ये ही ऐसे उपद्रवों का मामला पेश करते थे कि मेरी तबीअत घबड़ा जाती थी। वास्तव में उसका प्रतीकार करना भी मेरे काबू के बाहर की बात थी। इसी कारण शायद इनसे भी मैं प्रसन्न न हो सका। मैंने कहा—इसके लिए आपको दुःख नहीं होना चाहिए। आप यहाँ न भी आते तो मुझे कोई दुख न होता। आपको क्या जरूरत है!

ब्राह्मण लज्जित हो गया। उसने कहा—असमय में आने से शायद आपके काम में बाधा पहुँची। और किसी दिन आऊँगा। इतना कह कर वे उठने लगे।

मैं फिर झुँझला कर बोला—क्या काम था आपको, बताइए न!

वे मेरी रंजीदगी को समझ गये। वे शांत होकर बोले—मैं साधारण आदमी हूँ, मेरी आवश्यकता भी साधारण ही है। मा जी ने मुझे स्मरण किया था, शायद उन्हें कुछ काम है—मुझे कुछ नहीं चाहिए।

जवाब रूखा था, पर था सच्चा। मेरे सवाल के मुताबिक बेढंगा भी न था। जब से यहाँ आया था, ऐसा रूखा उत्तर देने वाला कोई भी आदमी न मिला था। शायद इसीलिए ब्राह्मण का कठोर उत्तर सुन कर मैं कुछ रंज-सा हो गया। यों तो मैं रूखा आदमी नहीं हूँ। अगर रूखा आदमी होता तो इसका इतना खयाल भी नहीं करता। ऐश्वर्य की क्षमता बहुत बुरी चीज है। कोई उसे टाल नहीं सकता। मैं भी कुछ कहना ही चाहता था कि वे बाहर निकल गये। उसी समय बगल का द्वार खुला। राजलक्ष्मी उठ कर आ गई।

प्रणाम कर के अत्यंत विनीत भाव से बोली—अभी आप बैठिये। मत जाइये। आप से बहुत-सी बातें करने को हैं।

ब्राह्मण फिर बैठ गया। उसने कहा—मा जी, आपने तो घर की बहुत दिन की दुश्चिता दूर कर दी है। उतने से हम लोगों का काम बहुत दिन तक चल जायगा। अभी कोई समय नहीं था—व्रत-नियम-पूजा आदि कुछ भी नहीं। ब्राह्मणी मुझ से पूछ रही थीं—

राजलक्ष्मी ने हँस कर कहा—ब्राह्मणी केवल व्रत-पूजा के दिन ही जानती हैं। वे भेंट-सौगात आदि की बात नहीं जानतीं। उनसे कह दीजियेगा कि इसके संबंध में वे मुझ से सीख लें।

ब्राह्मण—इतना ज्यादा सीधा था—

वे पूरा-पूरा न कह सके। शायद जान-बूझ कर चुप रह गये हों। मैं उस आत्माभिमानी ब्राह्मण की बात पूर्णरूप से समझ गया। मुझे डर लग रहा था कि कहीं मेरी ही तरह राजलक्ष्मी को भी कड़ी बात न कह दे। इस आदमी का एकांगी परिचय तो सुन ही चुका था। मेरी इच्छा न हुई कि बाकी परिचय भी मेरे ही सामने मिले। पर राजलक्ष्मी किसी के सामने चुप न रहती थी। राजलक्ष्मी इस राह को काट कर निकल गई। वह कहने लगी—सुनने में आया है तर्कालंकार महाशय कि आपकी स्त्री गुस्सेवर हैं—बिना पूछे चले जाने से कहीं वे रंज न हो जायँ—न हों तो इसका जवाब उन्हें ही दे आना।

मैं समझ गया कि ये ही यदुनाथ कुशारी थे। अध्यापक थे। अपनी प्रियतमा की तबीअत का उल्लेख सुन कर वे अपने को खो बैठे—हा-हा कर सारा घर गुँजा दिया। वे प्रसन्न हो कर बोले—नहीं माता जी, बिगड़े दिल क्यों होगी? सीधी सादी औरत है। हम लोग हैं गरीब, आप जायँ भी तो आपके लायक सम्मान न हो सकेगा, अतएव वही एक दिन चली आवेगी नहीं तो फुरसत मिलने पर मैं उसे साथ में ले आऊँगा।

राजलक्ष्मी ने पूछा—आपके यहाँ कितने विद्यार्थी रहते हैं?

कुशारी जी बोले—कुल पाँच हैं। इधर ज्यादा छात्र मिलते कहाँ हैं? पढ़ाना-लिखाना तो सिर्फ नाम के लिए होता है।

आप सब को खाना-कपड़ा देते हैं?

जी नहीं। विजय भैया के घर रहता है। एक और गाँव ही का विद्यार्थी है। केवल तीन विद्यार्थी मेरे यहाँ रहते हैं।

राजलक्ष्मी मृदु स्वर में बोली—ऐसे कठिन समय यही क्या कम है तर्का-लंकार महाशय?

इसकी आवश्यकता थी। नहीं तो अभिमानी अध्यापक गरम हो जाते। इस बार उनका मन उधर को नहीं बहका। आसानी से उन्होंने अपनी परिस्थिति कबूल कर ली। बोले—यह तो हम दोनों आदमी ही जानते हैं। इतने पर भी भगवान् भास्कर का उदय और अस्त तो होता ही है मा। अपने हाथ में इसके अतिरिक्त और है क्या? ब्राह्मण का काम है पढ़ाना। आचार्य से तो मुझे इतना धरोहर ही न मिला है, एक दिन उसे फेर ही देना पड़ेगा। जरा रुक कर बोले—ऐसा भी समय था जब इसका भार भू-स्वामियों पर था। आजकल जमाना बदल गया है। उन्हें अब वह अधिकार भी नहीं है और दायित्व भी नहीं। आजकल तो रक्तशोषण के अलावा उनका कोई काम ही नहीं बचा है। आजकल भू-स्वामी से घृणा होती है।

राजलक्ष्मी ने हँस कर कहा—यदि कोई प्रायश्चित्त करना चाहे तो आप विघ्न न दें।

कुशारी महाशय लजा कर बोले—दूसरी ओर ध्यान बट जाने के कारण आपकी बात का मुझे ध्यान ही न रहा। हम लोग विघ्न क्यों उपस्थित करेंगे?

राजलक्ष्मी ने कहा—पूजा-पाठ करते समय हम लोग एक वाक्य भी शुद्ध नहीं बोल सकतीं—यह आपका कर्त्तव्य, इसका स्मरण करा देती हूँ।

कुशारी महाशय हँसते हुए बोले—वही होगा मा। इतना कह कर वे चलने के लिए उठे। राजलक्ष्मी ने प्रणाम किया। मैं भी किसी तरह हाथ उठा कर छुट्टी पा गया।

वे चले गये तो राजलक्ष्मी ने कहा—आज सबेरे वही खा लो।

क्यों?

आज दोपहर को सुनंदा के घर चलना है।

मैं विस्मित होकर बोला—मुझे क्यों जाना है? तुम्हारा रतन तो है ही?

राजलक्ष्मी माला फेरती हुई बोली—उससे अब काम न चलेगा। अब मैं जहाँ जाऊँगी तुम्हें लेती जाऊँगी।

मैंने कहा—अच्छा, वही सही।

८

एक मुझे सुनंदा ने भैया कह कर पुकारा था। इसका जिक्र मैं पहले ही कर चुका हूँ। मैंने उसे अपने एकदम नजदीक पाया। अगर बढ़ा-चढ़ा कर इसका वर्णन किया जाय तो शायद अविश्वास करने का कोई कारण न होगा। पहली जान-पहचान में शायद विश्वास दिलाना कठिन हो जायगा। बहुत से लोग इसे अद्भुत कहेंगे और बहुत से लोग शायद इसे कहानी की ही बात समझें। और लोग कहेंगे—हम भी इसी देश के रहने वाले हैं, यहीं पले हैं, पर आज तक तो ऐसा कहीं नहीं देखा-सुना। मैं भी कहता हूँ कि इसी देश में इतना बड़ा हुआ पर एक से अधिक सुनंदा मुझे भी न मिली। परंतु यह है सच।

राजलक्ष्मी अंदर चली गई। मैं ढही-गिरी दीवारों के पास खड़ा होकर खोज रहा था छाया। इसी बीच एक सत्रह-अठारह बरस का लड़का आकर बोला—भीतर चलिए।

तर्कालंकारजी शायद आराम कर रहे होंगे?

वे पैंठ करने गए हैं। केवल माता जी हैं, आप आ जाइये। वह लड़का आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे चला। इसमें कभी सामने का दरवाजा भी था पर अभी तो उसका कोई चिह्न मौजूद नहीं है। ढेंकी-घर से हो कर मैं अंतःपुर में प्रविष्ट हुआ। आँगन में जाते ही सुनंदा को देखा। उन्नीस-बीस वर्ष की युवती, रंग साँवला, शरीर पर एक भी आभूषण नहीं। पतले ढाबे में बैठ कर वह फरही भूँज रही थी। राजलक्ष्मी के आ जाने से वह उठ कर खड़ी हो गई थी। मेरे लिए भी उसने एक पुराने कंबल का आसन बिछा दिया। वह प्रणाम कर के बोली—बैठिए। लड़के से कहा—चूल्हे में आग है। जरा तमाखू तो चढ़ा लाओ। राजलक्ष्मी बिना आसन के ही बैठी थी। उसकी ओर देख कर सलज्ज हास्य से बोली—आपको मैं पान नहीं दे सकती। घर में पान है ही

नहीं। हम लोगों को देख कर अजय को—वह अपनी गुरुपत्नी की बात से सहसा अत्यंत व्यस्त हो कर बोल उठा—नहीं, इसी से जान पड़ता है कि पान ओरा गया है। सुनंदा उसकी ओर कुछ क्षण मुँह फेर कर देखती रही। वह बोली-आज अकस्मात् ओरा गया है। वह आज अकस्मात् नहीं चुक गया है। केवल एक दिन के लिए था। यह कह कर खिलखिल हँसती हुई राजलक्ष्मी से बोली-उस इतवार को छोटे महंथ ठाकुर के आने की बात पर एक पैसे का पान खरीदा गया था। कोई दस दिन की बात है। यही बात है, इसी पर हमारा अजय एकदम आश्चर्य में आ गया कि पान अकस्मात् चुक कैसे गया, यह कह कर वह फिर हँस पड़ी। अजय अप्रतिभ हो कर कहने लगा—वाह, यह बात है। तब तो यही होना था—खतम ही होना था।

राजलक्ष्मी सहास्य मुख तरस खाकर बोली—तो ठीक ही है। वह बेचारा पुरुष ठहरा, वह क्या जाने कि तुम्हारी गृहस्थी में कौन-सी चीज घट गई है।

अजय एक आदमी को अनुकूल पाकर कहने लगा—देखिए तो, देखिए तो और मा समझती हैं—

सुनंदा उसी तरह हँसती हुई बोली—मा के समझने से क्या? नहीं दीदी, हमारा अजय ही गृहस्थिन है। वह सब जानता है। यदि यहाँ कोई कष्ट है तो वह बाबूगिरी का है। यही वह नहीं कबूलता।

क्यों नहीं कबूलूँगा? वाह, बाबूगिरी भी अच्छी चीज है! वह तो हम लोगों को—यही कहते-कहते बिना बात समाप्त किये ही जैसे वह मेरे लिए तमाखू चढ़ाने बाहर चला गया। सुनंदा बोली—ब्राह्मण के घर और क्या होगा? खोजने-ढूँढ़ने से कहीं एकाध सुपारी हुई तो मिल सकती है। अच्छा मैं देखती हूँ। यह कह कर वह भी जब जाने का उपक्रम करने लगी तो राजलक्ष्मी ने उसका आँचल पकड़ कर कहा—इससे मेरा अपमान न होगा भाई। सुपारी का भी काम नहीं है। तुम जरा मेरे पास स्थिर होकर बैठ जाओ, दो बातें कर लूँ। यह कह कर एक तरह से उसने उसे जबरदस्ती बगल में बैठा लिया।

आतिथ्य-दान से अव्याहति पाकर क्षण काल तक दोनों ही नीरव रहे। इसी बीच मैंने और एक बार फिर नये सिरे से सुनंदा को देख लिया। पहले मन में आया कि वस्तुतः यह दारिद्र्य नाम की जो चीज है कितनी अर्थहीन है,

कोई भी तो उसे स्वीकार नहीं करता। यह जो हमारे साधारण बंगाली घर की एक सामान्य स्त्री जिसमें बाहर से कोई विशेषता नहीं, न रूप है, न वस्त्रालंकार। इस भग्न गृह पर जिस ओर दृष्टिपात करो केवल अभाव एवं दारिद्रय की ही छाया है। इतना होने पर भी वह छाया ही है। वह इसे छाया ही समझती है। इस स्त्री ने अभाव के दुख को आँखें दिखा कर ही भगा दिया है। गरीबी में इतनी हिम्मत कहाँ थी कि उसके सामने वह घर में पैर रखे। प्रशंसा की बात यह है कि महीने भर पहले सब कुछ विद्यमान था। घर-द्वार, अपने-बेगाने, लौंडी-नफर, यानी कमी किसी चीज की न थी। सिर्फ एक-एक अन्याय का तीव्रतम विरोध करने के कारण वह सब छोड़ कर चली आई थी—पुराने कपड़ों की तरह। सब से मजे की बात तो उसमें यह थी कहीं से भी कटुता नहीं टपकती थी।

राजलक्ष्मी ने मुझे लक्ष्य करके कहा—मेरा अनुमान था कि सुनंदा की उमर ज्यादा होगी। हे हरि, यह तो एकदम लड़की है!

अजय अपने गुरुदेव के हुक्के पर ही तमाखू चढ़ा कर ले आ रहा था। सुनंदा उसे दिखा कर बोली—लड़की कैसे हूँ? इतने बड़े-बड़े तो लड़के हैं तो मेरी उमर कम कैसे होगी? यह कह कर वह हँसने लगी। उसकी हँसी में स्वच्छंदता थी, सरलता थी। अजय के यह पूछने पर कि वह स्वयं अपने हाथों से चूल्हे में से आग निकाल ले कि नहीं, वह बोली—मुझे क्या मालूम कि तुम किस जात के लड़के हो बेटा, चूल्हा छूने की जरूरत नहीं है। दहकता अंगारा चूल्हे से निकालना कठिन होता, इसलिए स्वयं चिलम पर आग रख कर वह हँसती हुई अपनी जगह पर बैठ गई। साधारण देहाती स्त्री सुलभ हँसी-मजाक और मसखरी से लेकर बातचीत तक में कोई विशेषता न थी, इसी बीच मुझे जो सामान्य परिचय मिला वह असाधारण था। असाधारणता का कारण तुरंत ही मालूम हो गया। अजय मेरे हाथ में हुक्का देता हुआ बोला—माता जी, अब उसे उठा कर धर आऊँ?

सुनंदा ने इशारे से कह दिया। मैंने देखा कि बगल में ही पीढ़े पर एक मोटी पोथी इधर-उधर छितराई पड़ी थी। अब तक हम लोगों ने उसे नहीं देखा था। पन्ना बटोरता हुआ अजय बोला—आज भी उत्पत्ति-प्रकरण नहीं खतम हो सका, माताजी! शायद अब वह खतम भी न होगा।

राजलक्ष्मी ने पूछा—कौन-सी पोथी है, अजय ?

योगवासिष्ठः ।

तुम्हारी मा फरही भूँज रही थी और तुम उन्हें सुना रहे थे क्या ?

नहीं, मैं मा से पढ़ता हूँ ।

अजय के इस सरल एवं संक्षिप्त उत्तर से सुनंदा लजा गई । उसका चेहरा लाल हो गया । वह बोली—पढ़ने जैसी चीज तो उसकी मा के पास खाक नहीं है । नहीं दीदी, दोपहर को जब वे चले जाते हैं तब ये लड़के जो बका करते हैं उसका तिहाई भी नहीं सुन पाती । इसको जो मन में आया कह दिया ।

अजय योगवासिष्ठ ले कर चला गया । राजलक्ष्मी गंभीर हो कर बैठी रही। थोड़ी देर के बाद वह साँस ले कर बोली—यदि आस-पास में मेरा घर होता तो मैं तुम्हारी चेली हो जाती बहन । एक मैं यों ही कुछ नहीं जानती, पूजा-पाठ के मंत्र का शुद्ध उच्चारण भी नहीं कर सकती ।

मन्त्रोच्चारण के संबंध वह कई बार खेद प्रकट कर चुकी थी । मैं सुनते-सुनते ठेह हो गया था । इस पर सुनंदा ने भी कुछ न कहा, केवल वह तनिक मुसकराई । मैं नहीं कह सकता कि उसे कैसा खयाल हुआ । वह सोचती होगी कि जिसका प्रयोग नहीं जानती, जिसका मतलब तक नहीं समझती तो फिर उसके शुद्ध उच्चारण से क्या मतलब ? ऐसा भी हो सकता है कि वह जैसे और औरतों से सुनती रही हो । पर न तो वह इन सब का उत्तर ही देती है और न प्रतिवाद ही करती है । यह भी हो सकता है कि स्वाभाविक विनय के वश होकर बैठी रही । इतने पर भी मुझे यह खयाल तो जरूर हो गया कि आज वह अपने अनजान अतिथि को एकदम साधारण स्त्री की तरह समझ रही है तो एक बार उसे अपना मत अवश्य परिवर्तित करना पड़ेगा ।

क्षण भर में ही राजलक्ष्मी ने अपने को सम्हाल लिया । यह मुझे मालूम है कि किसी के मुँह खोलने के पहले ही वह उसके मन की बात जान जाती है । इतने पर भी वह मंत्र-तंत्र के किनारे न हुई । मामूली घर-गृहस्थी की बातें करने लगी । वे दोनों बातें करती रहीं । मैं उसे न सुन सका और सुनना चाहता भी न था । मैं तो तर्कालंकार महाशय के हुक्के में अजयदत्त का दिया हुआ सूखा और कठोर तमाखू खींचने में ही जी-जान से लगा ।

दोनों स्त्रियाँ घुल-मिल कर धीरे-धीरे क्या बातें कर रही थीं, यह मैं नहीं जान सका। पर मुझे ऐसा लगा कि जैसे एक प्रश्न का जवाब मिल गया। हम लोगों ने औरतों को हीन बना के रखा है, यह शिकायत हमारे विरुद्ध है। यह कठिन काम हम लोग कैसे कर सके हैं, इस पर मैं बहुत बार माथा-पच्ची कर चुका हूँ। सुनंदा को देख कर मेरा संशय दूर हो गया। स्त्री-स्वतंत्रता मैं देख चुका हूँ—देश में भी और विदेश में भी। बरमा में मैंने जो भी देखा था वह भूल जाने की चीज नहीं हैं। बरमा के राजपथ पर मैंने तीन-चार सुंदरियों को एक नौजवान एक्केवान को ईख से पीटते देख कर मैं हाल-बेहाल हो गया था। अभया उन्हें देख कर बोली थी—श्रीकांत बाबू, अगर बंगाली स्त्रियाँ भी शायद ऐसे ही—

मेरे चाचा भी एक दफे दो मारवाड़ी औरतों पर नालिश करने गए थे। रेलगाड़ी में उन लोगों ने इनके नाक-कान मल दिया था। जब मेरी चाची ने सुना तो वे अफसोस प्रकट करके बोली—बंगालियों के घर में अगर ऐसी चाल होती तो बहुत अच्छा होता। बंगालियों के यहाँ यदि ऐसा चलन होता तो शायद मेरे चाचा साहब इसका विरोध करते। इससे नारी जाति की अवस्था कैसी रहती मैं नहीं कह सकता। सुनंदा के टूटे-फूटे घर में, फटे कंबल पर बैठ कर मैं सोच रहा था कि यह सब कैसे संभव है। मेरी तो उससे कुछ बातचीत नहीं हुई। उसने केवल आइये कह कर मेरा स्वागत किया। पर अजय के दिखलावे के उत्तर में जो उसने कहा कि घर में पान नहीं था और न खरीदने का सामर्थ्य ही। इसे ही मैं वह दुर्लभ वस्तु कहता हूँ। उसकी यही बात मुझे आज तक याद है। केवल परिहास से ही दरिद्रता की पूरी लज्जा न जाने कहाँ छिप गई। फौरन मालूम हो गया कि ऐसी परिस्थिति में इस स्त्री का स्थान ऊँचा है। अध्यापक पिता ने अपनी लड़की को पढ़ा-लिखा कर श्वशुर-कुल में भेज दिया। इसके बाद उन्हें इस बात की चिंता न रही होगी कि लड़की आधुनिका बन सड़कों पर घूमेगी, मुरही भूँजेगी या योगवासिष्ठ पढ़ावेगी। स्त्रियों को हम लोगों ने हीन बना दिया है, इस पर बहस करना ही बेकार है। हम अगर उन्हें इससे वंचित रखते हैं तो इसका फल तो हमें भोगना ही पड़ेगा।

उत्पत्ति प्रकरण की बात यदि अजय नहीं चलाता तो सुनंदा की शिक्षा के

बारे में हम कुछ भी न जानते। मुरही भूँजने से और साधारण-से-साधारण बातों से तो योगवासिष्ठ की झलक न आई। पति की अनुपस्थिति में एक अनजान अतिथि के स्वागत करने में भी उसे कुछ संकोच नहीं हुआ। अकेले घर में सत्रह-अठ्ठारह साल के लड़के की वह मा बन गई थी। पति के दिमाग में शासन करने की जरा भी भावना न रही। आजकल तो हरेक घर में इसके लिए पहरेदार नियुक्त हैं।

तर्कालंकार जी से मिल कर जाने की इच्छा थी मगर वह पैंठ करने चले गए थे। अबेर हो रहा था। राजलक्ष्मी को शायद यह खयाल हुआ कि इस गृहिणी का न जाने कितना काम पड़ा होगा। वह खड़ी होकर बोली—अब आज जा रही हूँ, रंज नहीं होओगी तो कभी फिर आऊँगी।

मैं भी खड़ा हो कर बोला—बात करनेवाला कोई आदमी मुझे भी नहीं मिलता। आप कहेंगी तो मैं भी चला आया करूँगा।

सुनंदा कुछ बोली तो नहीं, पर हँस कर गरदन हिला दी। रास्ते में राजलक्ष्मी ने कहा—स्त्री बड़े मजे की है। जैसा पति वैसी ही स्त्री। इन्हें भगवान् ने मिलाया है।

मैंने कहा—हाँ।

राजलक्ष्मी बोली—घर का जिक्र आज नहीं कर सकी। कुशारी जी को तो अभी मैं अच्छी तरह नहीं पहचानती, पर ये दोनों देवरानी-जेठानी मजे की स्त्री हैं।

मैंने कहा—बात तो इसी तरह की है। लेकिन तुम तो आदमी को वश में करना जानती हो। एक बार कोशिश करके देखो न।

राजलक्ष्मी मुसकरा कर बोली—तुम्हें वश कर लेने से तो प्रमाण नहीं मिल गया। और भी स्त्रियाँ ऐसा कर सकती हैं।

मैंने कहा—शायद हो सकता है। अगर कोशिश करने का मौका ही न न मिले तब?

राजलक्ष्मी उसी तरह हँसती हुई बोली—बहुत अच्छा। अभी ही मत समझ लो कि दिन बीत गये।

आज बदली थी। सूर्य बादलों में छिप गया था। आकाश रंगीन था।

इसी की छाया से सामने के मैदान, बाँस की कोठी और इमली के पेड़ों पर सुनहला पानी फेर दिया था। राजलक्ष्मी को मैंने कुछ उत्तर न दिया। मेरा मन रंगीन हो गया। कनखियों से देखा तो उसके चेहरे से हँसी नहीं गई थी। विगलित स्वर्णप्रभा में परिचित मुखड़ा बहुत सुंदर मालूम हुआ। वह केवल आकाश का ही रंग नहीं हो सकता है। यह भी संभव है कि वही प्रकाश इसके हृदय में खेलता हो जिसे एक और स्त्री से चुरा लाया था। रास्ते में हम ही दोनों थे। सामने की ओर उँगली दिखाते हुए मैं बोला—बतलाओ तो तुम्हारी छाया क्यों नहीं पड़ती? मैंने खूब गौर से देखा तो हम दोनों की छाया एक हो कर अस्पष्ट हो गई थी? मैंने कहा—कोई चीज होती है तब न छाया पड़ती है—शायद अब कोई ही चीज ही नहीं है।

पहले थी क्या?

मैंने ध्यान से नहीं देखा।

राजलक्ष्मी हँस कर बोली—मुझे खूब याद है—कोई चीज न थी। छोटी उमर से ही मैं उसे देखना जानती हूँ। तृप्त होकर वह बोली—मुझे आज का दिन बड़ा अच्छा लगा। इतने दिनों के बाद एक साथी मिला। इतना कह कर वह मेरी ओर देखने लगी। मैं चुप रहा, पर मन-ही-मन सोचा कि यह बिलकुल झूठ नहीं है।

घर पहुँचा। पैर धोने का भी अवकाश न मिला, शांति और तृप्ति दोनों एक साथ ही अंतर्हित हो गई। देखा कि बाहर का आँगन भरा हुआ था। दस-पंद्रह आदमी बैठे थे। हम लोगों को देख कर उठ गये। मालूम होता था कि रतन इतनी देर से भाषण कर रहा था। उसका मुँह उत्तेजना और निगूढ़ आनंद से चक-चक कर रहा था। नजदीक आकर बोला—माँ, जो मैं बार-बार कहता था वही हुआ।

राजलक्ष्मी अधीर होकर बोली—मुझे याद नहीं है कि क्या कहता था, फिर से कहो।

रतन ने कहा—नवीन को पुलीस वाले हथकड़ी देकर ले गये हैं।

बाँध कर ले गये? कब? क्या किया था उसने?

मालती को एकबार उसने मार डाला था।

क्या कहता है रे !

उसका मुँह एक बारगी फक हो गया।

बात खतम होने के पहले ही बहुत आदमी एक साथ ही बोल उठे—ना, ना, मालकिनजी, खून नहीं हुआ। खूब मारा, लेकिन मार कर फेंक न दिया।

रतन आँख लाल करके बोला—तुम लोग क्या जानते हो ! उसे अस्पताल भेजना होगा, खोजने से तो वह नहीं मिलती। गई कहाँ ! तुम लोगों को हथकड़ी पड़ सकती है, जानते हो ! यह सुन कर सब का मुँह सूख गया। कोई कोई तो सरक जाने की चेष्टा करने लगा। राजलक्ष्मी रतन को आँखें दिखा कर बोली—तुम उस तरफ जाकर खड़े हो जाओ। जब पूछूँगी तब कहना। भीड़ में मालती का बाप भी खड़ा था। हम लोग सब उसको पहचानते हैं। इशारे से उसे नजदीक बुला कर पूछा—क्या हुआ है, सच-सच बताओ तो विश्वनाथ ! छिपाने से या झूठ बोलने से विपत्ति में फँस सकते हो।

विश्वनाथ ने संक्षेप में यों कहा—कल रात तक मालती अपने बाप के घर थी। आज दोपहर को वह तालाब पानी लाने गई थी। उसका पति नवीन न जाने कहाँ लुका हुआ था। उसे अकेली देख कर उस पर विषम प्रहार किया—ऐसा प्रहार कि उसका माथा फूट गया। मालती पहले रोती हुई यहाँ आई, किंतु हम लोगों को यहाँ न देख कर कुशारी महाशय की खोज में उनके घर गई। वहाँ जब उनसे मुलाकात न हुई तब एकदम थाने में चली गई। वहाँ मार-धर का चिह्न दिखला कर साथ में पुलीस लेती आई। इस तरह उसने नवीन को धरवा दिया। वह उस समय घर ही में था। हाथ धोकर भोजन करने बैठा था। भागने का मौका भी न था। दारोगा बाबू ने लात से भात फेंक दिया और उसे बाँध कर ले गए।

यह सुनकर राजलक्ष्मी आग हो उठी। वह जैसे मालती को न देखना चाहती थी उसी तरह वह नवीन से भी प्रसन्न न थी। किंतु उसका समस्त क्रोध मेरे ऊपर पड़ा। क्रुद्ध कंठ से बोली—तुम्हें एक सौ बार मना किया कि छोटी जातियों के नीच काण्ड में तुम मत पड़ो। जाओ सम्हालो, मैं कुछ नहीं जानती ! इतना कह कर बिना किसी ओर देखे वह घर में चली गई और कहते-कहते

गई—नवीन को फाँसी हो जाना उचित है और वह हारामजादी यदि मर जाय तो आपत्ति चली जाय !

कुछ देर के लिए सब लोग जड़वत् हो रहे। फटकार सुन कर मुझे ऐसा मालूम हुआ कि कल जो मैंने मध्यस्थ बन कर फैसला कर दिया था वह एकदम ठीक नहीं था। नहीं करता तो आज यह दुर्घटना होती कैसे ? लेकिन मेरा मतलब अच्छा ही था। मैंने समझा था कि जिस प्रेम-लीला के गँदले स्रोत से सारा टोला गंदा हो रहा है उसे साफ कर देने से अच्छा होगा। देखा कि मेरी भूल थी। किंतु इसके पहले विस्तार से इसे कह जाने की आवश्यकता है। मालती नवीन डोम की स्त्री जरूर थी, किंतु यहाँ आते ही देखा था कि सारे डोम टोला में वह अँगारा-सी है। कब किस परिवार में वह आग लगा देगी, इससे किसी स्त्री को शांति न थी। यह युवती जितनी सुंदर थी उतनी ही चपल भी। वह काली बिंदी लगाती थी। नींबू का तेल डाल कर जूड़ा बाँधती थी। आँचल यदि कंधे पर सरक कर चला आता तो वह उसकी परवा न करती। सामने कुछ कहने का साहस किसी को नहीं होता था, पर पीठ पीछे मुहल्ले भर की स्त्रियाँ जो विशेषण जोड़ती थीं उसका जिक्र यहाँ नहीं किया जा सकता। पहले तो सुना था कि मालती नवीन के साथ रहने से इनकार कर चुकी थी, अपने मायके में रहती थी। कहती थी कि वह मुझे खिलावेगा क्या ? शायद इसी फटकार से गाँव छोड़ कर नवीन किसी शहर में चला गया था। कुछ दिन बाहर प्यादागिरी करके घर लौट आया था। आते समय वह मालती के लिए एक रुपा की पहुँची, महीन सूत की साड़ी, रेशम का फीता, एक बोतल गुलाब जल और एक टीन का बक्स लेता आया था। इन चीजों के बदले वह अपनी स्त्री को घर ही न ले आया पर उस पर अधिकार भी जमा लिया। यह सब मैंने सुना है। फिर न जाने कब उसे अपनी स्त्री पर शक हुआ और कब उसे अकेली पाकर ठोक दिया। हम लोग जब से यहाँ आए हैं तब से एक दिन के लिए भी पति-पत्नी की लड़ाई बंद नहीं हुई थी। कपर-फुटौवल सिर्फ आज ही नहीं और भी कई बार हो चुकी थी। यही कारण था कि नवीन मंडल अपनी स्त्री का सिर फोड़ कर निश्चित हो कर खाने बैठा था। उसे यह खयाल कतई नहीं था कि मालती पुलीस बुला कर उसे गिरफ्तार करवा देगी। कल सबेरे

हो मालती की कर्कश ध्वनि सुन कर राजलक्ष्मी ने मुझ से कहा था—घर के नजदीक रोज कटकट अच्छा नहीं लगता। कुछ रुपए-पैसे दे कर कहीं इन्हें भेज न दो।

मैं बोला--नवीन कम बदमाश है। कुछ काम-धाम करता नहीं, केवल जुलफी चीर कर मछली बझाता चलता है। हाथ में पैसा रहता है तो पी-पा कर मार-पीट शुरू कर देता है।

दोनों के दोनों एक ही हैं—कह कर राजलक्ष्मी अंदर चली गई।—काम-काज कैसे करे बेचारा, हरामजादी जब छुट्टी दे तब न!

सच में अब बात सहने से बाहर की हो गई थी। न जाने कितने मुकदमों का फैसला मैंने किया है। इसका कोई नतीजा न निकला। सोचा था कि दोपहर को खाना-पीना हो जाने के बाद सब को बुला कर फैसला कर दूँगा। मुझे बुलाने की जरूरत न पड़ी। दोपहर में खुद मुहल्ले के स्त्री-पुरुष जुट गए। नवीन ने आकर कहा—बाबू जी, यह औरत खराब है। मैं इसे नहीं रखना चाहता। यह मेरे घर से निकल जाय।

मालती घूँघट के भीतर से बोली—मेरा साँखा-नोआ खोल दो।

नवीन बोला—रुपा की पहुँची लौटा दे।

मालती ने उसी समय पहुँची उतार कर फेंक दी।

उसे उठा कर नवीन ने कहा—टीन का बक्स भी दे दे।

मुझे नहीं चाहिए—इतना कह कर मालती ने चाबी फेंक दी।

नवीन ने आगे बढ़ कर साँखा-नोआ तोड़ डाला। उसने कहा—जा तुझे विधवा कर दिया।

मैं तो अवाक् हो गया। एक बूढ़ा आदमी मुझे समझा कर बोला—यह नहीं होने से मालती निकाह नहीं कर सकती थी। सब कुछ ठीक-ठाक है।

बात-बात में घटना और भी विशद हो गई। विश्वेश्वर के बड़े दामाद का भाई आज छ महीने से दौड़ धूप कर रहा था। उसकी हालत अच्छी है। बीसू को वह बीस रुपए नकद देगा। मालती को उसके छड़े, चाँदी की चूड़ियाँ और सोने का नत्थ देगा। वह बीसू के पास वे चीजें जमा भी कर चुका है।

ये घटनाएँ मुझे बुरी मालूम हुईं। अब मुझे जरा भी शक न रहा। बहुत

दिनों से यह कुत्सित षड़यंत्र चल रहा था। मैंने सहायता की बिना समझे-बूझे। नवीन बोला—मेरी भी यही राय थी। अब मैं शहर में जाऊँगा। ठाट से नौकरी करूँगा और ऐसी शादी तो मैं बीसों कर सकता हूँ। राँगा माटी का हरिमंडल अपने लड़की से ब्याह कर देने के लिए न जाने कितने दिन से खुशामद-बरामद कर रहा है। तुम तो उसके गोड़ में भी नहीं हो। इसके बाद रुपे की पहुँची और कुंजी ले कर वह चला गया। उसके चेहरे से मुझे मालूम हुआ कि शहर की नौकरी और हरिमंडल की लड़की से उसे काफी आशा है।

रतन आकर बोला—बाबूजी, मा कहती है इन गंदे झगड़ों को दूर कर देने के लिए।

मुझे कुछ करना पड़ा। विश्वेश्वर अपनी लड़की को ले कर उठ गया। मैं घर के भीतर चला गया, इस डर से कि कहीं वह पैर न छूने आवे। मैंने सोचा, जो हुआ सो अच्छा हुआ। दोनों का मन फट ही गया, दूसरा उपाय भी जब है; तब बेकार ऐसे दांपत्य को ढोने से क्या लाभ? मार-पीट और कपर-फुटौवल से यह अच्छा ही न हुआ?

सुनंदा के घर से जब मैं लौटा तब मालूम हुआ कि इस फैसले का कोई असर नहीं पड़ा। विधवा मालती से संबंध तोड़ लेने पर भी मार-पीट का अधिकार उसने नहीं छोड़ा है। वह इस टोले से उस टोले में जा कर छिपा हुआ था और इसी बीच यह दुर्घटना कर बैठा। मालती न जाने कहाँ गई?

सूरज डूब गया। पश्चिम की ओर देख कर सोच रहा था कि शायद वह पुलीस के डर से कहीं छिप गई होगी। नवीन को पकड़वा कर अच्छा काम नहीं किया। ठीक दंड मिला—जान बची लड़की की।

शाम को दीया लेकर राजलक्ष्मी कमरे में आई। कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही। वह बगल के कमरे में पैर रखना ही चाहती थी कि एक भारी चीज के गिरने के साथ-साथ वह अस्फुट चीत्कार करने लगी। मैं दौड़ कर वहाँ पहुँचा। जाकर देखा तो एक पोटली सी चीज सामने सिर धुन रही थी। दीआ राजलक्ष्मी के हाथ से गिर कर भी जल रहा था। उठा कर देखा तो महीन सूत की काली किनारी वाली साड़ी।

मैंने कहा—यह मालती है।

राजलक्ष्मी बोली—शाम को मुझे छू दिया अभागी! ऐं, कैसी विपत्ति है! बताओ।

दीये के प्रकाश में देखा कि उसके सिर से खून निकल रहा था। राजलक्ष्मी के पैर रंग गए थे। वह फूट-फूट कर रो रही थी। वह कह रही थी—जान बचाइए मा जी!

राजलक्ष्मी ने बिगड़ कर कहा—क्या हुआ?

वह रोते-रोते बोली—दारोगा जी कहते हैं कि कल वे चालान कर देंगे और पाँच बरस के लिए बँध जायगा।

मैंने कहा—जाने दे जेल, जैसी करनी वैसी भरनी।

राजलक्ष्मी ने कहा—तो इससे तुझे क्या?

उसके रोने से ऐसा जान पड़ा मानों आँधी छाती फाड़ कर निकल रही है। वह बोली—बाबूजी को कहने दीजिये—ऐसी बात आप न कहिये। उसके मुँह का कौर तक मैंने निकलवा लिया है। वह सिर धुनती-धुनती फिर बोली—अब की बार बचा दीजिये मा जी। अब परदेस में जा कर भीख माँगूगी। इसी से गुजर होगा, नहीं तो तालाब में डूब कर मर जाऊँगी।

राजलक्ष्मी की आँखें बरसने लगीं। वह धीरे-धीरे बोली—अच्छा चुप रहो। मैं देख लूँगी।

उसी को देखना पड़ा। राजलक्ष्मी के बक्स से दो सौ रुपए गायब हो गए, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। दूसरे दिन नवीन मंडल या मालती की शकल देखने को गंगा में न मिला।

९

उनके चले जाने से सब की जान बच गई। राजलक्ष्मी छोटी-छोटी बातें कहाँ तक याद रखती यह तो वही जानती है। टोले-पड़ोसवालों ने सोच लिया कि यहाँ से एक पाप हट गया। केवल अकेले रतन खुश न था। बुद्धिमान आदमी था। जल्दी में अपने मन का भाव नहीं कहता था। उसका चेहरा देख कर मैंने यह जान लिया कि इस काम से वह तनिक भी खुश न था। उसको मध्यस्थ बन कर शासन करने का मौका न मिला। एक ही रात मालिक के घर

का रुपया भी चला गया और यह घटना भी हुई। इससे रतन समझने लगा कि उसका अपमान हुआ और चोट-सी भी लगी। पर वह चुप ही रहा। घर की मालकिन का ध्यान ही दूसरी ओर था। उसे तो सुनंदा से शुद्ध मंत्रोच्चारण सीखने का भूत सवार था। वहाँ जाने में एक दिन भी नागा नहीं होता। वहाँ उसे कितना ज्ञान प्राप्त होता था, यह उसी को मालूम है। उसमें मुझे परिवर्त्तन जान पड़ने लगा। और इस परिवर्त्तन की गति भी तेज थी, अचिंतनीय भी थी। दिन में मैं बराबर देर करके भोजन करता था। राजलक्ष्मी बराबर आपत्ति ही करती थी, अनुमोदन कभी नहीं। यह ठीक है, लेकिन इस त्रुटि में संशोधन के लिए भी मैं कभी सचेष्ट नहीं हुआ। संयोगवश यदि कभी अधिक देर हो जाती तो मैं स्वयं लजा जाता था। राजलक्ष्मी कहती—तुम रोगी आदमी हो। इतनी देरी क्यों करते हो! अपनी ओर न देखो तो कम-से-कम नौकर-चाकरों को तो देखना ही चाहिये। तुम्हारे आलस्य से वे मर जाते हैं। बातें तो पहले की सी हैं ही, पर ठीक वैसी ही नहीं। सस्नेह प्रश्रय का स्वर अब नहीं बजता—अब बजती है विरक्ति की कटुता। इस झनकार को नौकर-चाकर क्या, मेरे सिवा भगवान् भी नहीं समझते। भूख नहीं रहने पर भी मैं नौकर-चाकरों के कारण नहा-धो कर जल्दी से खा लेता। मेरी इस कृपा को नौकर-चाकर किस दृष्टि से देखते थे सो वे ही जानें; पर राजलक्ष्मी दस-पंद्रह मिनट में ही घर से निकल जाती थी। कभी रतन साथ जाता, कभी दरबान और कभी अकेली भी वह चली जाती थी। किसी के लिये वह नहीं ठहरती थी। दो-चार रोज पहले तो मुझ से चलने को कहा पर इन्हीं दो-चार दिन में समझ गया कि मेरे जाने से दोनों में से किसी को भी सुविधा नहीं होती थी। मैं अपने कमरे में पड़ा रहता और वह धर्म-कर्म एवं मंत्र-तंत्र में मस्त रहती। इस तरह हम दोनों धीरे-धीरे अलग होने लगे।

तीखी धूप में वह मैदान पार कर जाती थी। मैं खिड़की से यह देखता रहता। दोपहर का समय कैसे कटता था—इस ओर सोचने की फुरसत कहाँ थी उसको! जहाँ तक दृष्टि जाती वहाँ तक उसे बिना देखे मुझ से नहीं रहा जाता था। तिरछी-मिरछी पगडंडियों में कब वह विलीन हो जाती, यह मैं देखा करता था। कभी-कभी तो ऐसा ध्यानमग्न होकर देखता था कि वह मानों

अभी तक चलती ही जा रही है। इतनी देर बाद मैं आँखें पोंछ कर लेट जाता। कभी-कभी अकर्मण्यता की क्लांति के कारण सो भी जाता था। नजदीक-पास के बबूल पर घूग्घू बोला करता था, डोमों के बाँस-झाड़ से हवा ऐसी लगती थी मानों मेरे हृदय से निकल रही हो। भय होता था कि शायद अब अधिक दिन न सहा जाय।

यदि रतन रहता तो कभी-कभी पैर जाँते तमाखू दे जाता था। कभी-कभी उसे देख कर भी मैं चुप रह गया ताकि मेरे जगे रहने पर कहीं कुछ वेदना न पाले। उस दिन जब राजलक्ष्मी सुनंदा के यहाँ चली गई तो मुझे बरमा की याद आई और मैं अभया को पत्र लिखने बैठ गया। जिस फर्म में मैं काम करता था उसी फर्म के साहब से चिट्ठी लिखकर जवाब मँगाने की राय भी हुई। फिर सोचा क्यों खबर मँगाऊँ, क्या खबर मँगाऊँ, किसलिए खबर मँगाऊँ? एक-ब-एक ऐसा जान पड़ा कि सामने से जो स्त्री घूँघट काढ़े चली गई वह मालती जैसी थी। उठ कर झाँका, मगर कुछ दिखलाई न पड़ा। आँचल की किनारी ठीक उसी समय मेरे मकान की दीवार से आड़ होकर सट गई।

एक महीना बीत जाने से लोग उस डोम की लड़की को भूल गए थे। मैं ही न भूला था। नहीं कह सकता क्यों उस दिन शाम के आँसू आज तक मेरे दिल के एक कोने में वर्त्तमान हैं। मैं सोचता था कि वह न जाने कहाँ चली गई होगी। यह जानने की इच्छा होती थी कि गंगामाटी के वातावरण के बाहर उसके दिन अपने पति के साथ कैसे कटते होंगे। मेरी राय थी कि अब वे यहाँ जल्दी न आवें। लौट कर पत्र समाप्त करने लगा। एक या दो लाईन लिख सका था कि पैरों की आहट मिली। घूर कर देखा कि रतन। वह गुड़गुड़ी और चिलम ले कर आया था, बोला—तमाखू पीजिये बाबू जी।

मैं सिर हिलाता हुआ बोला—अच्छा।

वह खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद गंभीर होकर बोला—बाबू जी, रतन परामाणिक यहीं नहीं जानता कि यह कब मरेगा।

उसकी भूमिका हम लोग जानते थे। राजलक्ष्मी रहती तो चट से कह देती—खैर जानता होता, मगर तू कहना क्या चाहता है? मैंने तो सिर्फ हँस दिया। रतन वैसा ही गंभीर बना रहा। वह बोला—मा जी को मैंने उसी दिन

कहा, था कि छोटी जाति के फेर में पड़ कर दो सौ रुपयों पर पानी मत फेर दीजिये, मैंने कहा था न। उसने नहीं कहा था, यह मैं जानता हूँ। ऐसा अभिप्राय उसके मन में हो तो दूसरी बात है, परंतु उसे कहने की हिम्मत तो उसमें क्या मुझ में भी न थी। मैंने पूछा—क्या मामला है, रतन?

रतन बोला—शुरू से जो जानता हूँ वही है।

मैंने कहा—मैं तो अब भी नहीं जानता। मुझे साफ-साफ बतला दो न।

रतन ने साफ-साफ कह दिया। इसका मेरे ऊपर क्या असर पड़ा यह बताना मुश्किल है। मुझे तो केवल इतना ही याद है कि उसकी निष्ठुरता से मैं एकदम विवश हो गया। रतन को उसका सारा इतिहास नहीं मालूम था। उसने मुझे बतलाया कि नवीन मंडल अभी जेल की सजा भुगत रहा है और मालती अपने बहनोई के छोटे भाई के यहाँ गंगामाटी में रहने के लिए ले आई है। अगर मालती को आज न देखता तो शायद मुझे यह विश्वास न होता कि राजलक्ष्मी के रुपयों का ऐसा सदुपयोग हुआ।

खाते समय मैंने राजलक्ष्मी से सब कह दिया। सुन कर वह आश्चर्य से बोली—रतन क्या कहता है, सच बात है! तब तो उस छोकड़ी ने अच्छा तमाशा किया—रुपये भी यों ही चले गये और बेसमय नहाना पड़ा सो अलग। तुम्हारा खाना हो गया, अच्छा होता कि तुम खाने न बैठते।

ऐसे बेकार सवालों का जवाब मैं नहीं देता था। एक बात का अनुभव मुझे हुआ। आज मुझे भूख न थी। जरा भी न खा सका। उसकी दृष्टि मेरे कम खाने पर पड़ी। यों तो मेरी खुराक बहुत दिनों से घटी जा रही थी, पर कभी वह ध्यान न देती थी। पहले वह इतना ध्यान देती थी कि मेरे खाने-पीने में जहाँ भी जरा शिकायत होती कि वह फौरन मुझ से जवाब तलब कर देती। अकारण उसे भुला देने की हिम्मत मुझ में न थी। मैं चुपचाप उठ गया।

मेरे लिये दिन एक ही तरह से उठ कर समाप्त हो जाता है। न तो मुझे आनंद होता है, न कोई विचित्रता मालूम होती है और न कोई शिकायत ही रहती थी। शरीर साधारणतया अच्छा रहता।

दूसरे दिन नहा-खा कर मैं अपने कमरे में बैठ गया। सामने खुली हुई

खिड़की और सूखा मैदान। पत्रा के मुताबिक आज विशेष उपवास की विधि थी। वह सुनंदा के घर चली गई। मैं भी जंगले से बाहर देखता रहा। इतने ही में याद पड़ा कि कल की चिट्ठियों को पूरी करके भेज देना है। मैं अपने काम में लग गया। चिट्ठियाँ खतम हो गईं। मैं पढ़ने लगा। एक व्यथा-सी होने लगी। सोचने लगा कि न लिखता तो बहुत अच्छा होता। बार-बार पढ़ा। जरा भी कमी न मालूम हुई। पर एक बात याद है। अभया की चिट्ठी में रोहिणी भैया को नमस्कार लिख कर आखिर में लिख दिया—बहुत दिनों से तुम लोगों की कोई खबर न मिली। तुम लोग किस तरह हो और तुम लोगों के दिन किस तरह बीत रहे हैं, सिवा कल्पना करने के और मैं कुछ सोच नहीं सकता। सुख-चैन में हो या न हो; तुम लोगों की जीवन-यात्रा को एक दिन भगवान् पर छोड़ कर मैं स्वेच्छा से परदा डाल आया था। शायद आज भी वह वैसे ही लटक रहा है—मेरी इच्छा उठा देने की कभी नहीं हुई। तुम लोगों के साथ मेरी बहुत दिनों की गाढ़ाई नहीं है। हम लोगों का परिचय जिस दुख से शुरू हुआ और एक और दिन खतम हुआ था, उसे समय की गति के अनुसार मापने की कोशिश किसी ने नहीं की। जब मैं भयानक रोग से पीड़ित था तो उस दिन सिवा तुम्हारे मुझे और स्थान ही कहाँ था! तुम जरा भी न हिचकी—तुमने मुझे अहलेदिली से अपने यहाँ रखा। यह भी मैं नहीं कहता कि वैसी बीमारी में किसी और ने मुझे नहीं बचाया, पर दोनों में अंतर है। इसका अनुभव मैं दूर से ही कर रहा हूँ। तुम लोगों की सेवा में, निर्भरता में, अकपट शुभकामना में एकता विद्यमान है। पर तुम में एक ऐसी निस्वार्थ सुकोमल निर्लिप्तता और अनिर्वचनीय वैराग्य था जिसने सेवा करने में ही अपने को खाली कर दिया। मेरे अच्छे हो जाने में वह एक कदम आगे नहीं बढ़ा। रह-रह कर यह बात मुझे याद आ रही है। अत्यंत स्नेह शायद मुझ से नहीं सहा जाता या जो स्नेह तुम्हारी आँखों और मुँह पर देखा था—मेरा सारा मन उसी के लिए उन्मुक्त हो गया है। एक बार बिना तुम्हें देखे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।

साहब का पत्र भी समाप्त हो गया था। उन्होंने एक बार मेरा उपकार किया था। इसके लिये मैंने उन्हें बहुत धन्यवाद दिया। प्रार्थना का एक शब्द

भी न लिख सका। मगर बहुत दिन बाद धन्यवाद देकर मैं स्वयं शरमाने लगा। चिट्ठी बंद करते हुए देखा कि समय बीत गया। जल्दी करने से भी चिट्ठियाँ नहीं जा सकेंगी। तब मैं शांति का अनुभव करने लगा।

रतन आकर कहने लगा कि कुशारिन जी आई हैं। वे फौरन् ही मेरे कमरे में आ गईं। मैं अस्त-व्यस्त सा हो गया। चंचल हो कर बोला—वे घर पर नहीं हैं, शायद शाम तक लौटें।

मैं जानती हूँ—कहते हुए खिड़की पर से आसन लेकर वे बैठ गईं। वे कहने लगीं—शाम ही काहे, रात भी हो जाती होगी।

मैं सुनता था कि अमीर की स्त्री होने के कारण वे किसी के घर आती-जाती न थीं। इस घर के संबंध में भी शायद ऐसा ही व्यवहार था। इतने दिनों से तो उन्होंने घनिष्ठता बढ़ाने का प्रयत्न तक नहीं किया। इसके पहले शायद दो बार आई थीं। मालिक के घर के वजह से वे एक बार स्वयं आ गई थीं और एक बार निमंत्रण में आई थीं। न जाने आज वे कैसे पहुँचीं जब कि उन्हें मालूम था कि घर में कोई नहीं है।

बैठ कर वे बोलीं—छोटी बहू के साथ तो आजकल वे एक हो गई हैं।

मेरी व्यथा की जगह पर ही उन्होंने चोट पहुँचा दी। मैंने धीरे से कहा—हाँ, कभी-कभी जाती हैं। वे बोलीं—रोज-रोज जाती हैं। हर रोज। मगर छोटी बहू भी आपके यहाँ आती है। सुनंदा ऐसी स्त्री नहीं है कि मान का मान रखे। इतना कह कर वे मुझे देखने लगीं। मैं एक के जाने की बात ही सोचता था, दूसरे की आने की बात नहीं। अतएव मुझे भारी धक्का लगा। मैं इसका क्या उत्तर देता? उनके आने का मतलब ठीक से समझ लिया और एक बार सोचा कि कह दूँ—मैं क्या करूँ? एक अक्षम आदमी को शत्रु-पक्ष के विरुद्ध उत्तेजित करने से कोई लाभ नहीं। मेरे कहने पर क्या होता, यह तो मैं नहीं जानता, पर नहीं कहने से सारा उत्ताप और सारी उत्तेजना उनकी आँखों में जल उठी। कब क्या और कैसे हुआ था, इसकी विस्तृत व्याख्या में वे अपनी ससुराल की दस साल की कहानी सुना गईं।

उनकी बातें सुनते-सुनते मैं अन्यमनस्क-सा हो गया। इसका वजह भी था। मन में आया कि वे एक ओर का स्तुतिवाद-दया-दाक्षिण्य, तितिक्षा प्रभृति

शास्त्रानुकूल सद्गुणों की विस्तृत आलोचना करने लगीं। दूसरे पक्ष की शिकायत गर-गवाही, टोले-मुहल्ले आदि का विशद वर्णन भी हो गया। आरंभ में यही बात थी। धीरे-धीरे उनका कंठस्वर बदलने लगा और तब मैं उनकी ओर आकर्षित हुआ। मैंने अचरज से पूछा—क्या हुआ? कुछ देर तक वे मुझे देखती रहीं, फिर बोली—क्या होगा? सुना कि देवर जी स्वयं कल हाट में बैगन बेच रहे थे।

मुझे इस पर विश्वास न हुआ। अच्छा रहता तो शायद हँसता भी। मैंने कहा—वे अध्यापक आदमी हैं। उन्हें बैगन कहाँ मिले और क्यों बेचने गये!

कुशारिन बोली—उस हतभागी की करनी से। शायद घर में कुछ बैगन फला था, उसे बाजार में बेंच आये। इस प्रकार शत्रुता का निर्वाह करने से इस गाँव में कैसे रहा जायगा?

मैंने कहा—इसे आप शत्रुता का निर्वाह कैसे कहती हैं? वे तो आप लोगों की किसी बात में नहीं पड़ते। अभाव के कारण वे अपनी चीज बेंचने गये थे तो इससे आपको क्या हर्ज?

यह बात सुन कर वे मेरी ओर विह्वल-दृष्टि से देखने लगीं—जब आपका यही इंसाफ है तो मुझे और कुछ कहने को नहीं है। मालिक से मेरी कोई फरियाद नहीं है—अब जा रही हूँ।

इतना कहते-कहते उनका कंठ रुद्ध-सा हो गया। मैंने कहा—देखिये, यह बात यदि आप मालकिन से कहिये तो वे समझेंगी और आपका उपकार भी करेंगी।

वे सिर हिला कर बोल उठीं—और मैं किसी को कहना नहीं चाहती। उपकार करने की भी आवश्यकता नहीं है। इतना कह कर वे आँचल से आँखें पोंछ कर बोली—मालिक बोले थे, दो महीने के बाद वे लोग खुद आ जायँगे। उसके बाद उन्होंने ढ़ाढ़स दिया कि दो महीना और ठहरो न, सब सुधर जायगा - किंतु इसी आशा में यह दो साल बीत गये। कल जब सुनने में आया कि बाजार में वे बैगन बेच रहे थे तब मुझे किसी की बातों पर इतमीनान न रहा। हतभागी सब राख कर देगी, किंतु उस घर में पैर न रखेगी। बाबू, स्त्री की जाति पत्थर की तरह होती है, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।

वे फिर बोलीं—मालिक उन्हें कभी न पहचान सके, किंतु मैं अच्छी तरह पहचानती थी। पहले-पहल इनका उनका नाम लेकर चीजें भेज देती थी तो वे कहते थे कि सुनंदा जान कर ही लेती है—इस तरह करने से वह ठीक न होगी। मैं भी कुछ वैसा ही सोच रही थी। किंतु एक दिन सारा भ्रम दूर हो गया। न जाने कैसे उसे पता लग गया कि सब कुछ मैंने ही भेजवाया है, वह एक आदमी के सिर पर लाद कर मेरे आँगन में फेंक गई। मालिक को इतने पर भी होश न आया—मैं समझ रही थी।

अब मैंने उन्हें समझा। सदय कंठ से बोला—तो आप क्या करना चाहती हैं?—वे तो आप लोगों के विरुद्ध कोई शत्रुता नहीं कर रहे हैं।

कुशारिन जी अब की रो कर और सिर पीट कर बोलीं—भाग्य! तब तो कोई रास्ता निकल ही जाता। उसने हम लोगों को इस तरह त्याग दिया है कि एक दिन भी नाम न सुना हो। ऐसी कठोर, पत्थर है वह स्त्री। हम दोनों आदमी को सुनंदा माता-पिता से ज्यादा मानती थी। किंतु जिस दिन उसने सुना कि ससुर का धन पाप का धन है, उसी दिन वह पत्थर हो गई। पति-पुत्र के साथ वह खट-खट कर मर जायगी पर एक पैसा न छूएगी। किंतु इतनी बड़ी संपत्ति क्या यों ही लुटा दी जाती है, बाबू! वह ऐसी बेदया-माया है कि लड़केवालों के साथ भूखों मर सकती है मगर हम तो ऐसा नहीं कर सकते।

कुछ जवाब न मिलने पर धीरे से मैं बोला—विचित्र स्त्री है।

दिन ढलता जा रहा था, कुशारिन जी चुपचाप सिर हिला कर उठ खड़ी हुईं; किंतु हठात् दोनों हाथ जोड़ कर बोलीं—सच बोलती हूँ बाबू, इन लोगों के बीच पड़ कर मेरी छाती फटी जा रही है। अब तो सुनती हूँ कि वह बहू जी का अधिक कहना मानती है—कोई उपाय नहीं हो सकता? मैं अब नहीं सह सकती।

मैं चुपचाप रह गया। वे भी कुछ और न बोल सकीं—आँसू पोंछते-पोंछते बाहर चली गईं।

१०

परलोक की चिंता के सामने मनुष्य को दूसरी चिंता नहीं रहती। यदि रहती तो राजलक्ष्मी मेरे खाने-पहरने की चिंता क्यों छोड़ देती? इससे बढ़ कर

आश्चर्य संसार में और क्या हो सकता है ? हम लोगों को गंगामाटी आये हुए बहुत कम दिन हुए होंगे और इतने ही दिनों में राजलक्ष्मी इतनी दूर हट गई है। खाने को रसोइया पूछता और खिला देता रतन। यों तो एक प्रकार से जान बच गई। जिद्दा-जिद्दी नहीं होती थी। कमजोरी की हालत में यदि ग्यारह के भीतर न भी खाता तो बुखार न आता था। अब तो जिस चीज की इच्छा होती वह खा ले सकता था। रतन की उत्तेजना एवं बाबाजी के कारण कम खाने का मौका ही नहीं मिलता। बेचारा रसोइया बार-बार यही सोचता कि भोजन अच्छा नहीं बनने के कारण ही मैं नहीं खाता था। इन लोगों को संतुष्ट कर बिछावन पर जाकर लेट जाता। खुली हुई खिड़की—सामने में ऊसर जैसा विस्तीर्ण मैदान। दोपहर का नीरस समय काटते-काटते सहसा एक प्रश्न सामने आ गया—हम लोगों का संबंध क्या है ? वह मुझसे प्रेम करती है। संसार में उसका एकदम अपना हूँ लेकिन परलोक में एकदम पराया। मैं धर्म का साथी नहीं। धार्मिक मामले में वह मुझ पर दावा नहीं कर सकती। मुझे प्यार करने से शायद इस पृथिवी के परे उसे स्थान न मिलेगा। यह संदेह शायद उसे हो गया था।

इन बातों में वह लग गयी थी। मेरे दिन इस तरह कट रहे थे। कर्महीन, उद्देश्यहीन जीवन का दिवारंभ श्रांति में होता था और अवसान ग्लानि में। अपनी उमर की हत्या अपने ही हाथों करने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। बीच-बीच में कभी-कभी रतन चाय और हुक्का दे जाता था। वह कुछ बोलता न था। उसके चेहरे से जान पड़ता कि अब उसकी कृपा मुझ पर रहती थी। वह कभी आकर कह जाता—बाबू जी, लू चल रही है, खिड़की बंद कर लीजिये। मैं यों ही कह देता—रहने दो। ऐसा लगता था कि कितने अनजान आदमियों का तप्त उसास मुझे मिलता था। यह भी संभव है कि मेरे लड़कपन का मित्र इंद्रनाथ आज भी जीवित हो और यह गरम हवा तुरंत उसे छू कर मेरे पास आई हो। आज भी वह अपने बाल्यकाल के बिछुड़े हुए साथी की याद कर रहा हो। और अन्नदा दीदी! सोचने लगता कि उसके समस्त दुखों का अंत हो गया होगा। यदा-कदा ऐसा भी मालूम होता कि बरमा इसी कोण पर है और हवा में अभया का स्पर्श आ रहा था। अभया आसानी से मेरे दिमाग से

अलग नहीं होना चाहती। सोचता कि रोहिणी काम पर चला गया होगा और अभया घर का दरवाजा बंद कर सिलाई के काम में लगी होगी। मेरी ही तरह वह भी दिन में न सोती होगी, किसी बच्चे के लिए कथड़ी या तकिये का खोल बना रही होगी।

कलेजे में तीर चुभ जाता। युग-युग का संस्कार और भले-बुरे विचारों का अभिमान भी तो मेरे खून में विद्यमान था। मैं कैसे उसे चिरायु होने का आशीर्वाद देता! संकोच और शरम के मारे मन एकबारगी छोटा हो जाता।

कार्य-रत, अभया की प्रसन्न छवि मैं देखता था। उसके पास एक निष्कलंक बालक सो रहा था। नव-कुसुमित कमल के समान उसमें शोभा, गन्ध, मधु जान पड़ता था। दुनिया को क्या इसकी आवश्यकता न थी! मानव-समाज में मानव-शिशु का कोई स्थान नहीं, जरा भी सम्मान नहीं, तनिक भी नियंत्रण नहीं। घृणा से उसे दूर कर देना होगा! कल्याण की संपत्ति को चिर-अकल्याण में निर्वासित कर देने के अतिरिक्त मानव का और क्या काम है!

मैं अभया को पहचानता था। केवल इतना ही पाने के लिये उसने कितना दिया है, इसे दूसरा नहीं, मैं जानता हूँ। हृदयहीन बर्बरता से केवल अश्रद्धा और उपहास करने से ही संसार में सभी प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल जाता। एकदम स्थूल और लज्जाजनक देह का भोग यह भी हो सकता है। अभया को धिक्कारने की बात भी है।

बाहर से गरम हवा आती और मेरे आँसू सूख जाते। बरमा से आ जाने की बात याद आ जाती। जब रंगून में भयंकर बीमारी की अवस्था में भाई-भाई का, बेटा बाप का साथ न देता था—उस समय मुझे बिना संकोच के अपनी नई जमाई हुई गृहस्थी में उसने स्थान दिया। मेरी कहानी की कुछ लाइनों को पढ़ कर ही नहीं समझा जा सकता। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वह क्या है! और भी अधिक—अभया के लिए कुछ भी कठिन नहीं। मृत्यु भी उसके आगे बहुत छोटी है। शरीर की भूख, जवानी की प्यास—इन शब्दों से अभया का उत्तर पूरा नहीं हो सकता। हृदय का पानी बाहरी घटनाओं को शृंखलाबद्ध जुटा देने से नहीं मापा जा सकता।

पुराने मालिक के पास काम-धंधे के लिए एक अरजी भेज दी थी—नामंजूर

होने की कोई आशा न थी। फिर मुलाकात होने की आशा थी, दोनों ओर बहुत-सा अघटन घट चुका था। उसका सब भार साधारण नहीं, उसने अपनी असाधारण सरलता से और अपनी इच्छा से उसने भार इकट्ठा किया था। मेरा भार एकत्रित हुआ था ठीक उसके उलटा—बलहीनता एवं इच्छा-शक्ति के अभाव के कारण। मैं नहीं कह सकता कि इनका रंग और चेहरा उस दिन कैसा दिखायी देगा।

दिन भर अकेले हाँफते रहने के बाद शाम को मैं टहलने निकलता। पाँच-सात दिन से टहलने की एक आदत हो गई थी। जिस राह से गंगामाटी आया था उसी राह से एक दिन जा रहा था। यों ही अनमना-सा चलते-चलते देखा कि धूल का पहाड़-सा उड़ाता कोई सवार आ रहा था। मारे डर के मैं रास्ता छोड़ कर नीचे उतर गया। जरा आगे बढ़ जाने के बाद वह रुका। मेरे सामने खड़ा होकर पूछा—श्रीकांत बाबू आप ही का नाम है न? आपने मुझे पहचाना?

मैंने कहा—मेरा नाम तो यही है, मगर आपको मैं पहचान नहीं सका।

घोड़े पर से वह उतर गया। मैली-कुचैली साहबी पोशाक—फटी हुई, वह पहने हुए था। सिर पर से हैट उतार कर बोला—मेरा नाम सतीश भारद्वाज है। थर्ड क्लास में मुझे प्रोमोशन नहीं मिला और मैं सर्वे स्कूल में पढ़ने चला गया था। याद नहीं है?

मुझे स्मरण हो आया। मैं प्रसन्न हो कर बोला—ओः, तुम हमारे मेढ़क हो। यों क्यों नहीं कहते? साहब बने कहाँ जा रहे हो?

मेढ़क ने हँस कर कहा—साहब, अपने मन से नहीं बना हूँ भाई। रेलवे कंस्ट्रक्शन में सब-ओवरसियरी करता हूँ। जिंदगी कुलियों को चराने में बीती जा रही है तो हैट-कोट के बिना कहाँ गुजारा है? ऐसा न हो तो एक दिन वे ही मुझे चरा कर अलग कर दें। सोपलपुर से लौट रहा हूँ—वहीं काम था। यहाँ से एक मील पर मेरा तंबू है। साँइथिया से जो नई लाइन निकल रही है उसी पर मेरा काम होता है। चलो न डेरे पर—चाय पी कर चले आना।

अस्वीकार करते हुए मैंने कहा—आज तो नहीं जा सकता। किसी दिन फ़ुरसत मिली तो आऊँगा।

मेढ़क और भी बहुत सी बातें पूछने लगा। तबीयत कैसी रहती है, कहाँ रहते हो, क्या करते हो, बाल-बच्चे कितने हैं ? आदि।

मैंने जवाब दिया—तबीअत एकदम ठीक नहीं रहती। गंगामाटी में रहता हूँ। यहाँ आने का भी विशेष कारण है। बाल-बच्चा एक भी नहीं है, तुम्हारा यह प्रश्न ही बिलकुल बेकार है।

मेढ़क था सीधा-सादा आदमी। बातों को ठीक से नहीं समझने पर भी उसे पूछ-पाछ कर समझ लेना उसका संकल्प नहीं था। वह अपनी बात कहने लगा। जगह अच्छी थी। साग-सब्जी मिल जाता था और कोशिश करने पर घी-दूध और मछली भी। तकलीफ केवल एक थी—कोई संगी-साथी न मिलता था। साहब लोग चाहे जैसे भी हों पर बंगालियों से बहुत अच्छे थे। टेम्पोररी तौर पर ताड़ी का शेड खोल दिया गया था। लोग पीते थे मगर बिना पैसे के। यदि मैं चाहता तो वह साहब से कह सुन कर एक नौकरी भी दिलवा सकता था। घोड़े की लगाम पकड़े बहुत वह दूर तक मेरे साथ बकता चला गया। वह मुझ से बार-बार अपने डेरे पर आने की बात पूछता। अंत में उसने कहा—कई काम से मैं पोड़ामाटी जाता हूँ। हो सका तो गंगामाटी भी आऊँगा।

उस दिन घर लौटने में जरा देर हो गई। रसोइये ने आ कर कहा कि भोजन तैयार था। हाथ-मुँह धो कर खाने बैठा। राजलक्ष्मी की आवाज सुन पड़ी। वह चौखट पर बैठ गई। हँस कर बोली—मैं पहले ही बतला देती हूँ तुम किसी बात पर एतराज न करोगे न ?

मैंने कहा—नहीं, तनिक भी नहीं। जरूरत समझो तो किसी समय कह देना।

राजलक्ष्मी की नजर सहसा मेरी थाली पर पड़ी। वह गंभीर हो गई। बोली—तुम भात खा रहे हो। रात को तुम्हें भात नहीं पचता—अच्छा होने की राय नहीं है क्या ?

भात मुझे पचता था कि नहीं, इसके कहने से कोई फायदा नहीं। राजलक्ष्मी ने जोर से पुकारा—महाराज ! महाराज दरवाजे के पास आये। थाली दिखला कर वह बोली—मैंने तुम्हें हजार बार मना किया है कि बाबू को रात में भात मत खिलाया करो। जुरमाने में एक महीने का वेतन चला गया, जाओ।

सभी नौकर-चाकर जानते थे कि जुरमाने का रुपयों के रूप में कुछ भी मतलब नहीं होता, फटकार के रूप में तो उसका मतलब है ही। महाराज गुस्सा कर बोला—घी नहीं है तो मैं क्या करूँ ?

नहीं क्यों है, जरा सुनूँ तो ?

उसने जवाब दिया—दो तीन बार कह चुका हूँ कि घी ओरा गया है। आदमी भेज कर मँगवा लीजिये। आप आदमी न भेजें तो मेरा क्या कसूर ?

घर-खर्च के लिए मामूली घी यहीं मिल जाता था। पर मेरे लिए विशुद्ध घी साँइथियाँ के नजदीक से आता था। राजलक्ष्मी ने शायद घी की बात न सुनी या वह भूल गई। उसने पूछा—घी कब से नहीं है महाराज ?

पाँच-सात दिन से।

इतने दिन से इन्हें भात ही खिला रहे हो ?

उसने रतन को बुलाकर कहा—मैं भूल गई थी तो तू घी नहीं मँगा सकता था ? तुम लोग सब मिल कर मुझे इस तरह तंग करोगे ?

भीतर से रतन भी मा जी पर खुश न था। वे दिन-रात घर से बाहर रहतीं और मेरी ओर से उदासीन भी, इसलिये रतन और भी चिढ़ गया था। मालकिन के जवाब में उसने भले आदमी की तरह मुँह बना कर कहा—मैं क्या जानूँ मा जी, आप सुन कर भी चुप रह गईं तो मैंने समझा कि अब अच्छे घी की आवश्यकता ही न रही। नहीं तो पाँच-सात दिन से ऐसे कमजोर आदमी को भात क्यों खिलाया जाता ?

राजलक्ष्मी के पास इसका कोई जवाब न था। नौकर के मुंह से इतनी बड़ी बात सुन कर वह चुपचाप चली गई।

रात भर बिस्तर पर मैं छटपटाता रहा। तब शायद झपकी लगी। राजलक्ष्मी दरवाजा खोल कर मेरे पास आई और बोली—सो गये क्या ?

मैं बोला—नहीं।

राजलक्ष्मी ने कहा—तुम्हें पाने के लिये जितना मैंने किया ; भगवान् को पाने के लिये अगर उसका आधा भी करती तो वे मिल जाते। पर मैं तुम्हें न पा सकी।

मैंने कहा—यह संभव हो सकता है कि आदमी का पाना कठिन हो।

आदमी का पाना—राजलक्ष्मी स्थिर हो कर बोली—चाहे जो भी हो मगर प्रेम भी तो बंधन है ? तुम यह भी नहीं सह सकते। तुम्हें तकलीफ होती है।

इसका कुछ प्रतिवाद न था, यह अभियोग शाश्वत और सनातन था। उत्तराधिकार-सूत्र आदिम मानव-मानवी से मिला हुआ है। इस कलह की मीमांसा करने वाला कोई आदमी नहीं है। जिस दिन यह विवाद खतम हो जायगा, उसी दिन संसार की सारी मधुरता तीती हो जायगी, मैं चुप रहा इसी से।

राजलक्ष्मी भी चुप रही। उत्तर के लिये उसने जिद न किया। जीवन के इतने बड़े प्रश्न को वह पलक मारते ही भूल गई। बोली—न्यायरत्न जी एक व्रत की बात कह रहे थे। शायद कठिन होने से वह नहीं कर सकते—इतनी सुविधा भी कितने लोगों को नसीब होती है !

मैं चुप रहा। वह कहने लगी—तीन दिन उपवास करना पड़ता है। सुनंदा की भी यही राय है। दोनों का व्रत एक ही साथ हो जाता पर—वह स्वयं जरा हँस कर बोली—पर तुम्हारी राय के बगैर कैसे—

मैंने पूछा—मेरी राय न होने से भी क्या होगा !

राजलक्ष्मी बोली—तो फिर होगा ही नहीं।

मैंने कहा—तो मेरी राय नहीं है। इस विचार को छोड़ दो।

ठहरो—मजाक मत करो।

मजाक नहीं—सच में मेरी राय नहीं है, मैं मना करता हूँ।

मेरी बात सुन कर राजलक्ष्मी के मुँह पर बादल घिर आये। वह स्तब्ध होकर बोली—हम लोग ठीक-ठाक कर चुके हैं। आदमी भेज दिया गया है सामान लाने के लिये। कल हविष्य करके परसों से—वाह ! कैसे मना कर दोगे ! सुनंदा के सामने मैं कैसे मुँह दिखलाऊँगी ! यह केवल तुम्हारी चालाकी है—सच-सच बतलाओ तुम्हारी राय क्या है !

मैंने कहा—है। पर तुम कब मेरी राय-बेराय की परवा करती हो, लक्ष्मी ! आज क्यों दिल्लगी करने आई हो ? मैंने तो कभी यह दावा नहीं किया है कि तुम्हें मेरी बात बराबर माननी ही पड़ेगी।

राजलक्ष्मी मेरे पैरों पर हाथ रख कर बोली—अब ऐसा कभी न होगा। केवल अब की बार खुशी मन से आज्ञा दे दो।

मैं बोला—अच्छा। लेकिन तुम्हें तो शायद सबेरे ही जाना होगा, इसलिए जाकर सो रहो।

राजलक्ष्मी बैठ कर मेरे पैरों पर हाथ फेरने लगी। मुझे जब तक नींद नहीं आई तब तक मैं यही सोचता रहा कि वह स्नेह-स्पर्श अब नहीं रहा। जिस दिन वह आरा स्टेशन से मुझे अपने घर ले जाकर हाथ फेर कर सुलाना चाहती थी, वह भी ज्यादा दिन की बात नहीं। वह चुप तो इसी तरह रहती थी मगर दसों उँगलियाँ मेरे दसों इंद्रियों को नारी जाति का सब कुछ मेरे पैरों पर उड़ेल देती थी। न तो मैंने माँगा ही था और न मेरी इच्छा ही इस तरह की थी। इसे लेकर मैं क्या करूँगा, यह भी न सोच सका था। आते समय भी उसने मुझ से नहीं पूछा, जाते समय भी शायद ही वह मेरे मुँह की ओर देखेगी। आसानी से आँसू मेरी आँखों से नहीं गिरते। मेरा संसार में कुछ भी नहीं है। किसी से कुछ नहीं मिला है। दे दो कह कर किसी के सामने हाथ फैलाते मुझे शरम आती है। किताबों में पढ़ने से ही न जाने कितना विद्रोह, कितनी जलन, कितनी कसक और मान-अभिमान—कभी-कभी प्रमत्त पश्चात्ताप भी हो उठता है। स्नेह का अमृत गरल हो जाने की न जाने कितनी ही कहानियाँ हैं। यह मैं जानता था कि ये सब झूठी बातें हैं फिर मन का तंद्राच्छन्न वैरागी चौंक कर बोला—छि-छि-छि।

मुझे सोता समझ कर राजलक्ष्मी चली गई। उसे इसका पता न था कि मेरे निद्राहीन निमीलित नेत्रों से आँसू बह रहे थे। बराबर आँसू गिरते रहे किंतु आज की यह आपन्नातीत संपदा मेरी ही थी। इस बेकार हाहाकार से अशांति फैला देने की मेरी रुचि बिलकुल न हुई।

११

सबेरे ही नहा-धो कर, रतन को साथ में ले कर, राजलक्ष्मी चली गई यह उठ कर मैंने सुना। यह भी सुना कि लगातार तीन दिन तक वह घर में न आवेगी। वहाँ कोई विराट् कांड नहीं हो रहा था। दस-पाँच ब्राह्मणों की आवाज ही थी। खाने-पीने का प्रबंध भी कुछ था। खिड़की से ही यह आभास मुझे मिल गया। वह व्रत कौन-सा है, उसका अनुष्ठान कैसा है और उसे समाप्त कर लेने से स्वर्ग का रास्ता कितना सुगम हो जाता है, यह मैं नहीं

जानता था और न जानने का कौतूहल भी था। रोज शाम को रतन आकर कहता—आप एक दफे भी नहीं गये बाबू जी ?

मैं कहता—मेरी क्या जरूरत है ?

इससे रतन संकोच में पड़ जाता था। वह बना कर कहता—आपका न जाना लोगों को कैसा लगता होगा ? यह भी तो हो सकता है कि लोग समझ बैठें कि आपकी राय बिलकुल नहीं है।

मैं पूछता—तुम्हारी मालकिन क्या कहती हैं ?

रतन कहता—उनकी बात तो आपको मालूम ही है। आपके बिना वह अच्छी तरह नहीं रहती। लेकिन कोई पूछता है तो कह देती हैं कि बीमार रहते हैं, कमजोर हैं। इतनी दूर पैदल आने से शायद फिर दोहरा कर बीमार पड़ जायँ। और आकर क्या करेंगे ?

मैंने कहा—सो तो ठीक है। लेकिन तुम्हें यह भी तो मालूम है रतन कि यज्ञ-याग, पूजा-पाठ और व्रत-उपवास में मैं अजीब-सा लगता हूँ।

वह हुँकारी भरता हुआ बोला—ठीक है।

राजलक्ष्मी की ओर से मैं समझता था कि मेरी उपस्थिति वहाँ—जाने दो इस बात को।

एक-ब-एक यह सुना कि मालकिन के आराम के लिए सपत्नीक कुशारी जी भी वहाँ जुट गये हैं।

क्या रे रतन, एकदम सपत्नीक ?

जी हाँ। और बिना किसी निमंत्रण के ही।

मैं उसी समय समझ गया कि इसमें राजलक्ष्मी का कौशल चल रहा है। यह भी जान पड़ा कि इसीलिए अपने घर में यह प्रबंध न कर के दूसरे के घर में किया।

रतन कहने लगा—बड़ी बहू बीनू को गोद में लेकर रोने लगीं—आप अगर देखते तो……। छोटी बहू ने अपने हाथ से उनके पैर धो दिये और उन्हें आसन पर बैठा कर बच्चों की तरह खिलाया भी। मा जी की आँखों से आँसू गिरने लगे; कुशारी महाशय भी फूट-फूट कर रो रहे थे। बाबू जी, ऐसा मालूम होता है कि काम खतम होते ही खँड़हर की माया-ममता छोड़

कर छोटी बहू अपने घर में चली जायँगी। यदि यह हुआ तो गाँव-भर के लोग खुश होंगे। और यह करनी भी मा जी की है बाबू जी।

जहाँ तक मैं सुनंदा को जानता था वहाँ तक ऐसी उमीद मुझे न थी। किंतु राजलक्ष्मी के ऊपर मेरा अभिमान देखते-देखते शरत् के मेघाच्छन्न आसमान की तरह साफ हो गया।

इन दोनों भाइयों और बहुओं का व्यवहार न तो सत्य ही था और न स्वाभाविक ही। मन में जरा भी मैल न होने पर भी बाहर से एक बड़ा-सा फाँट दिखाई पड़ रहा था। उस फाँट को जोड़ देने का कौशल जिसमें है उससे बड़ा कलाकार और कौन है! कितने दिनों से वह इसके लिए गुप्त रूप से प्रयत्न करती चली आ रही है, इसका कुछ ठीक नहीं। एकांत मन से मैंने आशीर्वाद दिया कि उसकी सदिच्छा पूर्ण हो। कुछ दिनों से जो भार मेरे दिल पर पड़ रहा था वह आज हलका हो गया। दिन भी बड़े मजे में बीत गया। किस शास्त्रीय-व्रत में राजलक्ष्मी लगी थी, यह मैं नहीं जानता, किंतु तीन दिन मियाद बीत जाने पर साक्षात् होगा, यह बात मुझे नये सिरे से याद हो गई।

दूसरे दिन सबेरे राजलक्ष्मी न आ सकी, किंतु बहुत दुख कर के रतन से कहला भेजा कि मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि एक बार आकर सूरत भी न दिखा सकी—दिन लग्न बीत जायगा। पास ही में कहीं बक्रेश्वर नामक तीर्थ है, वहाँ जाग्रत देवता हैं और गरम जल का कुंड है। उसमें अवगाहन करने से पितृकुल, मातृकुल और श्वसुरकुल के तीन जन्म के लोग जो जहाँ हैं वहीं उनका उद्धार हो जाता है। साथी जुट गये हैं, दरवाजे पर बैलगाड़ी खड़ी है, यात्रा का मुहूर्त हो ही रहा है। दो-एक अत्यावश्यकीय चीजें रतन ने दरवान से भेज दीं। वह बेचारा भी दौड़ता चला गया। सुना कि लौट आने में पाँच-सात दिन लगेंगे।

पाँच-सात दिन और! मालूम पड़ता है कि अभ्यासवश ही आज उसे देखने के लिये इतना उन्मुख हो उठा। किंतु रतन के मुँह से तीर्थ यात्रा का संवाद पाकर निराशा, अभिमान या क्रोध के बदले मेरी छाती करुणा और व्यथा से भर आई। पियारी सचमुच मर गई थी। उसके कृत-कर्म के भार से आज राजलक्ष्मी का सारा मन और शरीर वेदना के आर्त्तनाद से उच्छ्वसित

हो उठा है। उसे रोक कर रखने का रास्ता उसे ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल रहा है। इस अभ्रांत विक्षोभ का, जीवन से निकल भागने की दिग्विहीन व्याकुलता का कोई अंत नहीं है। पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह सिर धुन-धुन कर क्या वह मर जायगी ! मैं क्या चिरकाल तक पिंजड़े के लौह शलाका की तरह उसकी मुक्ति के द्वार पर बैठा ही रहूँगा ! जिसे संसार कभी किसी चीज से नहीं बाँध सका वह भाग्य क्या मेरे ही हिस्से में पड़ा है ? वह मुझे खूब चाहती थी। छोड़ देने पर भी मेरा मोह उससे नहीं छूटता। इसी का पुरस्कार देने के लिए क्या मैं उसकी समस्त सुकृति के पैरों की बेड़ी बन कर रहूँगा ?

मन-ही-मन बोला—मैं उसे छुट्टी दे दूँगा—उस बार की तरह नहीं,—एकांत चित्त से, अंतर का समस्त शुभाशीर्वाद दे कर हमेशा के लिए मुक्त कर दूँगा। और, यदि हो सका तो उसके लौट कर आने के पहले ही मैं यह देश छोड़ दूँगा। किसी कारण, किसी बहाने संपद और विपद के किसी आवर्तन में पड़ कर भी उसके सामने न आऊँगा। एक दिन मेरे ही अदृष्ट ने मुझे शांत न रहने दिया, किंतु और मैं उसके आगे किसी तरह अपनी हार नहीं स्वीकार करूँगा।

मैं मन-ही-मन बोला—इसे ही तो अदृष्ट कहते हैं। एक दिन जब मैं पटने से बिदा हो रहा था तब होतल्ले के बरामदे में पियारी चुपचाप खड़ी थी। मुँह से वह कुछ न बोली, किंतु विरुद्ध अंतर का अश्रुगाढ़ भर राह मेरे कानों में गूँजती रही थी। किंतु, लौटा नहीं। देश छोड़ कर सुदूर विदेश चला गया था। किंतु वह रूपहीन, भाषाहीन, दुर्निवार आकर्षण मुझे रात-दिन खींचने ही लगा। देश-विदेश का व्यवधान उसके निकट कितना था ! एक बार फिर लौट आया। बाहरी लोगों ने मेरे पराजय की ग्लानि को ही देखा। मेरे गले की अम्लानकांत जयमाला उनकी आँखों तले नहीं पड़ी।

होता भी ऐसा ही है। एक दिन फिर मेरी बिदाई की घड़ी आवेगी। यह मैं जानता था। इस बार भी जब मैं जाने लगूँगा तब भी वह चुप रहेगी। अब फिर कोई आह्वान नहीं सुनाई पड़ेगा।

मैं मन-ही-मन सोचने लगा—यह जो रहने का निमंत्रण है उसमें भी कितनी व्यथा है ! इसका कोई भी साक्षी नहीं है। व्यथा गढ़ा खोद कर मेरे

ही दिल में रहेगी। संसार ने मुझे राजलक्ष्मी से प्रेम करने का अधिकार नहीं दिया; यह एकाग्र प्रेम, हँसना, रोना एवं मानाभिमान त्याग और निबिड मिलन जिस तरह समाज की दृष्टि में बेकार है उसी तरह आसन्न विच्छेद का असह्य अंतर्दाह भी बाहरवालों की दृष्टि में अर्थहीन है। सब से ज्यादा मुझे यह बात चुभने लगी कि एक का मर्मांतक दुख दूसरे के लिए अपमान की चीज कैसे हो जाती है। यदि हो जाती है तो संसार में इससे बढ़ कर ट्रेजेडी और क्या हो सकती है! लेकिन होता तो यही है। लोकाचार में रहते हुए भी जिस आदमी ने अत्याचार किया वह फरियाद भी किसके सामने करे? यह समस्या शाश्वत है, सनातन है, प्राचीन है। सृष्टि के आरंभ से आज तक यह विद्यमान है। भविष्य में भी इसका कोई समाधान नजर नहीं आता। यह अन्याय अवांछनीय है। फिर भी मनुष्य के पास इतनी बड़ी संपत्ति, इतना बड़ा ऐश्वर्य क्या है? स्त्री-पुरुष के अबाध्य एवं अवांछित हृदय-वेग की मौन वेदनाओं को इतिहास में स्थान दे कर चुपचाप पुराणों, काव्यों और कथाओं के अभ्रभेदी सौध खड़ा किया गया है। इसका कोई ठीक नहीं।

यदि आज यह रुक जाय!—मन-ही-मन कहा—रुक जाने दो। मैं आशीर्वाद करता हूँ कि राजलक्ष्मी को धर्म में रुचि हो, वक्रेश्वर का मार्ग सुगम हो, मंत्रोच्चारण शुद्ध हो और उसका पुण्यार्जन का रास्ता निर्विघ्न और अकंटक हो जाय। अपने दुख को तो मैं अकेला ही ढोऊँगा।

दूसरे दिन नींद टूटी। मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे गंगामाटी के घर, गली-कूचे, खुले मैदान सभी मुझे एकदम शिथिल से मालूम पड़े। राजलक्ष्मी के लौटने का कोई ठीक नहीं था। एक क्षण भी मेरा मन यहाँ नहीं रहना चाहता था। रतन स्नान करने के लिए तकाजा करने लगा क्योंकि राजलक्ष्मी कड़ा हुक्म दे कर निश्चिंत न हो गई थी वरन् रतन से पैर छुवा कर कसम ले ली थी कि उसकी गैरहाजिरी में वह जरा भी मेरी ओर से लापरवाह न रहेगा। रात को आठ बजे और दिन को ग्यारह बजे मैं भोजन करता था। घड़ी देख कर समय लिख लेने का हुक्म रतन को दिया गया था। सब को एक-एक महीने का वेतन इनाम में भी देने को कह गई थी। बिछावन पर पड़ा-पड़ा मैं समझ गया कि रसोइया भोजन बना कर इधर-उधर डोल रहा है और कुशारी

महाशय स्वयं घी-दूध और मछली आदि पहुँचाने आये हैं। किसी बात की उत्सुकता न थी—यही सही—आठ बजे और ग्यारह बजे। मेरे वजह से वे लोग महीने भर के वेतन से वंचित न रहेंगे।

कल रात में मैं बिलकुल न सो सका था। आज खा कर ज्योंही बिछावन पर पड़ा कि नींद आ गई।

चार बजे उठ कर मैं रोज नियमित रूप से टहलने जाता था। आज भी हाथ-मुँह धो कर, चाय पीकर घूमने चला गया। बाहर एक आदमी बैठा था। उसने एक चिट्ठी दी। चिट्ठी सतीश भारद्वाज की थी। बहुत मुश्किल से एक पंक्ति लिख कर किसी ने बताया था कि मैं न पहुँचूँगा तो वह मर जायगा।

मैंने पूछा—उसे क्या हुआ है?

वह आदमी बोला—हैजा।

मैं प्रसन्न हो कर बोला—चलो। प्रसन्न इसलिए नहीं हुआ कि उसे हैजा हो गया था। प्रसन्नता इसलिए हुई कि घर से कुछ दिन के लिए संबंध टूटने का मौका मिल गया। मैंने इसमें अपना लाभ ही समझा।

एक बार खयाल आया कि रतन को इसकी खबर दे दूँ, पर उसकी गैर-हाजिरी में यह भी करते न बना। मैं बाहर ही से चल पड़ा। घर में किसी को मालूम न हुआ।

करीब छ मील का रास्ता तय कर शाम को सतीश के कैंप पर पहुँचा। मैं समझता था कि रेलवे कंस्ट्रक्शन इनचार्ज S. C. Bhardwaj के यहाँ बहुत कुछ देखूँगा। पर वहाँ ईर्ष्या करने के लायक कोई चीज नहीं थी। वह छोटे से डेरे में रहता था। कुछ दूर पर पुआल की एक झोपड़ी में रसोई बनती थी। वहीं एक हृष्ट-पुष्ट बोउरी की लड़की कुछ उसीन रही थी। मुझे वह अपने साथ तंबू में ले गई।

इतने ही में रामपुर-हाट से एक छोकरा-सा पंजाबी डाक्टर आ पहुँचा। मुझे सतीश का साथी जान कर वह जी-सा गया। रोगी के संबंध में उसने कहा—केस सीरियस नहीं है, जान का कोई डर नहीं है। फिर बोला—मेरी ट्राली तैयार है, यदि अभी न जाऊँगा तो हेडक्वार्टर पहुँचने में देरी हो जायगी तो तकलीफ का ठिकाना नहीं रहेगा। मेरे बारे में क्या होगा, यह वह नहीं सोच

सका, उससे कोई मतलब नहीं। कब क्या करना होगा, यह उपदेश भी वह देता गया। ठेला गाड़ी पर चढ़ते समय दो-तीन शीशियाँ देता हुआ वह बोला—हैजा छूत की बीमारी होती है। लोगों को मना कर दीजिएगा कि तालाब का पानी काम में न लावें। इतना कह कर उसने एक गढ़े की ओर इशारा करते हुए कहा—हो सकता है कि कुलियों को भी हैजा हो जाय। उस समय इन दवाओं को इस्तेमाल कीजिएगा। दवा देने की सभी तरकीब बता कर वह चला गया।

आदमी बुरा नहीं था। दया-माया रखता था। मुझे बार-बार सचेत कर गया कि अपने बाल-सखा की तबीयत का हाल कल अवश्य मालूम हो जायगा। कुलियों पर खास तौर से निगाह रखने को वह कह गया।

सब अच्छा ही हुआ। राजलक्ष्मी वक्रेश्वर तीर्थ करने चली गई और मैं रंज होकर घूमने निकला। राह में एक आदमी से भेंट हुई। बचपन की जान-पहचान थी, इसलिए वह मेरा बाल्य-बंधु तो था ही। पंद्रह-सोलह साल मुलाकात न होने के कारण स्मृति थोड़ी धुँधली पड़ गई थी। दो-चार दिनों में ही फिर घनिष्ठता हो गई। उसके इलाज का भार, तीमारदारी की जिम्मेदारी। डेढ़ सौ कुलियों की रखवाली का भार—यह सब आफत मेरे ही सिर पर टूट पड़ी। बचा था केवल उसका हैट, टट्टू और वह मजदूर की लड़की! उसकी मान-भूमी बाउरी भाषा का अधिकांश मुझे खटकने लगा। केवल एक बात थी, दस-पंद्रह मिनट में ही मुझे देख कर उसे संतोष हो गया। सोचा कि उसके टट्टू को देख आऊँ।

मेरी किस्मत ही ऐसी थी। नहीं तो राजलक्ष्मी क्यों आती, अभया कैसे मेरे द्वारा अपने दुख का बोझ ढो आती? और यह मेढ़क—कुलियों का झुंड, कोई दूसरा होता तो जल्दी से झाड़ कर फेंक देता। मैं क्यों ढोता फिरूँ?

रेलवे-कंपनी का तंबू था। उसकी वैयक्तिक संपत्ति की सूची मैंने तैयार कर ली। कुछ एनामेल के बरतन एक स्टोव, एक लोहे की पेटी, एक चीड़ का बक्स और एक कैनवास की खाट—सो भी बहुत दिन इस्तेमाल में आने के कारण डोंगी जैसी हो गई थी। सतीश था होशियार आदमी। ऐसी खाट पर बिस्तर की जरूरत नहीं पड़ती। मामूली बिछौना होने से काम चल जाता था। उसके पास केवल

एक रंगीन दरी थी। हैजे की भी कुछ आशंका नहीं थी। कैनवास की खाट पर सेवा करने में असुविधा जान पड़ी। केवल एक दरी थी, वह भी गंदी हो चुकी थी। उसे जमीन पर सुला देने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था।

मैं यत्परोनास्ति चिंतित हो उठा। लड़की का नाम कालीदासी था, उससे पूछा—काली, कहीं से एक-दो बिछावन ला सकती हो?

काली ने कहा—नहीं।

मैंने कहा—थोड़ा पुआल-वुआल ला सकती हो?

कालीदासी ने हँस कर जवाब दिया। उसका मतलब यह था कि यहाँ गाय-भैंस कुछ भी न थीं।

मैंने पूछा—बाबू को कहाँ सुलाऊँ?

जमीन दिखला कर वह निडरता से बोली—यहाँ। अब क्या ये बचेंगे?

मैं उसकी ओर देखने लगा। ऐसा मालूम हुआ कि इस तरह का निर्विकल्प प्रेम संसार में सुदुर्लभ है। मन-ही-मन मैंने कहा—तुम भक्ति की पात्र हो, काली। तुम्हें एक बार देख लेने पर मोह-मुग्दर पढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जायगी। पर मेरी तो वैसी विज्ञानमय अवस्था न थी। अभी तो वह जिंदा था, कुछ बिछाने के लिए अवश्य चाहिए था।

मैंने पूछा—बाबू की एकाध धोती-वोती नहीं है?

काली ने सिर हिला दिया। सिर हिलाने में जरा भी दुविधा न थी और न संकोच का भाव ही था। उसने कहा—धोती नहीं, पतलून है।

पैंट साहबी चीज है। इसे मैं मानता हूँ। मगर उससे बिस्तर का काम लिया जा सकता था कि नहीं, यह मुझे नहीं मालूम था। आते समय कहीं फटा-सा तिरपाल देखा था। मुझे अभी याद आ गया। मैंने कहा—चलो, हम लोग दोनों आदमी उसे उठा कर ले आवें। पतलून से उसका बिछावन अच्छा होगा।

काली मेरे साथ गई। वह वहीं पड़ा था। तिरपाल लाकर सतीश को उस पर सुला दिया। एक किनारे काली भी बैठ गई। देखते-देखते वह वहीं सो भी गई। मैं समझता था कि स्त्रियों के नाक की आवाज नहीं होती, पर काली ने उसे झूठ प्रमाणित कर दिया।

मैं अकेले चीड़ के बक्स पर बैठा रहा। सतीश के हाथ-पैर बराबर ऐंठ रहे थे। सेंक-माड़ की आवश्यकता थी। जोर-जोर से पुकारने पर कहीं काली की नींद टूटी। उसने कहा कि लकड़ी-वकड़ी कुछ भी नहीं है, वह कैसे आग जलावे! मैं स्वयं रसोई घर में चला गया। कालीदासी झूठ नहीं कहती थी। जलाने के लायक अब झोंपड़ी ही बच गई थी। हिम्मत न हुई। कहीं आग जलाने के पहले ही उसका अग्नि-संस्कार न हो जाय! चीड़ का बक्स तोड़ कर मैंने आग लगा दी। अपने कुरते की पोटली बना कर सेंकने का उपक्रम करने लगा। मुझे तो कुछ सांत्वना हुई पर रोगी को कोई खास लाभ नहीं हुआ।

दो-तीन बजे रात को खबर मिली कि कुलियों को कै-दस्त शुरू हुआ है। उन लोगों ने मुझे डाक्टर साहब समझ रखा था। बत्ती की सहायता से किसी तरह दवा-दारू ले कर कुली लाइन तक पहुँचा। वे लोग मालगाड़ी में रहते थे। गाड़ियों में छत नहीं और गाड़ियाँ भी लाइन पर। जहाँ मिट्टी खोदने की जरूरत होती है वहाँ इंजिन उन्हें खींच कर ले जाता है और वे काम में जुत जाते हैं।

मैं गाड़ी पर चढ़ा—बाँस की सीढ़ी से। एक बूढ़ा आदमी एक किनारे पड़ा हुआ था। बत्ती से उसका चेहरा देख कर समझ गया कि बीमारी भयंकर है। दूसरी ओर पाँच-सात आदमी थे—स्त्री-पुरुष दोनों। मैं उठा था तो कोई यों ही सो रहा था।

इसी बीच उनका जमादार आ गया। वह बंगला बोल लेता था। मैंने उससे पूछा—दूसरा रोगी कहाँ है?

अँधेरे में उसने दूसरे डब्बे की ओर संकेत किया।

सीढ़ी से फिर चढ़ना पड़ा। वह रोगी स्त्री थी। पचीस-तीस साल की उमर थी। दो बच्चे आस-पास में सो रहे थे। पति किसी आरकाटी के फेर में पड़ कर एक कम उमर की औरत के साथ आसाम में काम करने चला गया था।

इस डब्बे में और भी पाँच-छ स्त्री-पुरुष थे। सब लोग उसके निष्ठुर पति की शिकायत ही करते थे, कोई उसकी सेवा न करता था। पंजाबी डाक्टर के कहने के मुताबिक मैंने लोगों को दवा दे दी। बच्चों को वहाँ से हटा देने का प्रयत्न भी करने लगा, मगर कोई उनका भार ग्रहण करने को तैयार न हुआ।

सबेरा होते ही एक और लड़के को हैजा हो गया। सतीश भारद्वाज की हालत भी खराब थी। बहुत खुशामद करने के बाद एक आदमी को साँइथिया स्टेशन भेजा—डाक्टर को खबर देने के लिए। शाम तक वह—डाक्टर कहीं रोगी देखने गए हैं—यह खबर लेकर लौट आया।

मेरे पास रुपए न थे। यही सब से अधिक परेशानी थी। मैं स्वयं तो कल से उपवास कर ही रहा था। सोने को फ़ुरसत न थी, आराम करने का समय न था। सामने के तालाब का पानी पीने से सब को मना कर दिया पर कोई न माना। औरतें मुसकरा कर कहने लगीं कि इसके सिवा और पानी कहाँ है ! थोड़ी दूर पर एक बस्ती थी, पर वहाँ जाय कौन ! मर जाने पर भी बिना पैसे का ऐसा व्यर्थ काम ये लोग नहीं कर सकते।

दो दिन तीन रात मैं यों ही मालगाड़ी पर रह गया। कोई भी न बचा। सब के सब मर गये। ऐसी स्थिति में बचना भी मुश्किल था। जो जन्म लेता है वह मरता जरूर है, एक-दो दिन पहले या पीछे। यह मैं आसानी से समझता हूँ। बल्कि मैं यह नहीं समझता कि इतनी मोटी-सी बात समझने के लिए लोगों को वैराग्य-साधन और तत्व-विचार की क्या जरूरत पड़ती है। मनुष्य के मरने से मैं दुःखी नहीं होता; हाँ, मनुष्यत्व की मौत से जरूर चोट लगती है।

दूसरे दिन भारद्वाज मर गया। आदमी कम थे इसीलिए अग्नि-संस्कार न हो सका। पृथ्वी माता ने उसे अपनी गोद में ही स्थान दिया।

उस तरफ का काम खतम कर मैं मालगाड़ी की ओर लौट आया। नहीं आता तो अच्छा होता मगर मैं ऐसा न कर सका। रोगियों को लेकर मैं अकेला बैठा रहा। सभ्यता के फेर में पड़ कर धनी धन के लोभ में मनुष्य मनुष्य को कितना बड़ा हृदयहीन पशु बना सकता है इसका अनुभव मुझे उन्हीं दो दिन में हुआ था।

सूर्य के ताप से आग बरसने लगी। तिरपाल की छाया में मैं बीमार लड़के को ले कर बैठा था। छोटा बच्चा भयानक कष्ट से तड़पने लगा—कोई एक बूँद पानी देनेवाला भी न था। सरकारी काम था। मिट्टी खोदना नहीं बंद किया जा सकता। उन्हीं की जाति का लड़का था। गाँव में ये लोग ऐसे नहीं होते। यह मैंने देखा है। मगर यहाँ तो ये लोग केवल सूर्योदय से सूर्यास्त तक मिट्टी

खोदने के लिए ही लाये गये थे—समाज से, घर से, सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त कर के। मालगाड़ी में आश्रय पाकर मानविक-वृत्तियाँ नेस्तनाबूद हो गई थीं। उनका काम बच गया था मिट्टी खोदना, मिट्टी ढोना और मजदूरी ले लेना। सभ्यों ने शायद यह ठीक से समझ लिया है कि आदमी को जानवर बनाये बगैर उससे पशु का काम नहीं लिया जा सकता।

भारद्वाज तो चला गया पर उसकी अमिट कीर्ति ताड़ी की दूकान ज्यों-की-त्यों बनी थी। शाम को एक झुंड औरत-मर्द ताड़ी पीकर लौट आये। दोपहर का भात पानी डाल कर रखा हुआ था। औरतें रसोई बनाने से बरी हो चुकी थीं। अब कौन किसकी बात सुने? जमादार की गाड़ी से ढोल और मंजीरा ले कर वे गाने लगे। उसका खातमा कब हुआ, यह मेरी समझ में नहीं आया। उन्हें किस फिक्र से सिर-दर्द हो। मेरे पास के डब्बे में एक स्त्री को दो प्रणयी आ गये थे। रात भर अविराम गति उनकी उद्दाम प्रेम-लीला चलती रही। एक दूसरे डब्बे में एक आदमी इतना पी गया था कि जोर-जोर से वह अपनी स्त्री से प्रणय-भिक्षा माँगने लगा। मारे शरम के मैं गड़ने लगा। दूसरे डब्बे में भी एक औरत कराह-कराह कर रो रही थी। जब उसकी मा दवा लेने को आई तो मुझे मालूम हुआ कि उसे बच्चा होनेवाला है। लाज नहीं, शरम नहीं, सब खुला हुआ। जीवन-यात्रा अबाध गति से बीभत्सता की ओर चली जा रही थी। केवल मैं अलग था। मृत्युलोक की आसन्न यात्री मा और उसके बच्चे के लिए मैं बैठा हुआ था।

लड़के ने कहा—पानी।

मैं उसके मुँह पर झुक कर बोला—पानी नहीं है बेटा, सबेरा होने दे।

बच्चा गरदन हिलाता हुआ बोला—अच्छा। और आँख मटका कर चुप रहा।

पानी नहीं था, प्यास बुझाने को। मगर मेरी आँखें पानी बहाने लगीं। हाय रे, हाय! केवल मानव की सुकुमार हृदय-वृत्ति ही नहीं, अपनी दुस्सह यातना के प्रति भी कैसी अपरिसीम उदासीनता है। यह तो पशुता है। यह धैर्य-शक्ति नहीं, जड़ता है। यह सहिष्णुता मानवता से ढेर नीचे के स्तर की चीज है।

हमारे डब्बे के और लोग हाथ-मोड़ तान कर सो रहे थे। काले हरिकैन के मद्धिम रोशनी में भी मैं स्पष्ट देख रहा था—मा और बच्चे, दोनों का शरीर ऐंठा जा रहा था। लेकिन इसके सिवाय मेरे वश की बात भी क्या थी?

सामने काला आसमान सप्तर्षिमंडल के तेज से चमक रहा था। उसे देख कर, मैं वेदना, क्षोभ और निष्फल पश्चात्ताप के कारण बार-बार शापने लगा, आधुनिक सभ्यता के वाहन—तुम मर जाओ। किंतु जिस निर्मम सभ्यता ने तुम्हें ऐसा बना डाला है, उसे तुम लोग कभी मत क्षमा करना। यदि वह नहीं करना है, तो इसे तुम लोग जल्दी से रसातल पहुँचा दो।

१२

सबेरे खबर मिली कि और दो आदमी बीमार पड़े हैं। मैंने दवा दी। जमादार ने खबर भेजी साँईथिया। आशा बँधी कि इस बार अधिकारियों का आसन डोलेगा।

करीब नौ बजे लड़का मर गया। अच्छा ही हुआ। यही है इन लोगों का जीवन।

सामने मैदान की पगडंडी से दो आदमी छाता लगाये चले जा रहे थे। पास जाकर मैंने पूछा—यहाँ से गाँव कितनी दूर है?

जो बूढ़ा था, वह मुँह उठा कर बोला—वही तो।

मैंने पूछा—खाने-पीने की चीजें मिलती हैं?

दूसरा आदमी विस्मय प्रकाश करते हुए बोला—मिलती क्यों नहीं है! शरीफों की बस्ती है। चावल, दाल, घी, तेल, तर-तरकारी जो खुशी हो आप लें। आप कहाँ से आ रहे हैं? आपका निवास-स्थान? महाशय, आप—?

संक्षेप में मैं उनका कौतूहल मिटा कर, सतीश भारद्वाज का नाम लेते ही वे नाराज हो गये। वृद्ध सज्जन बोले—शराबी, बदमाश, जुआ चोर।

उनका साथी बोला—रेल के आदमी और कितने अच्छे होंगे! रुपया-पैसा काफी आता था। इसी से—

प्रत्युत्तर में सतीश का टटका कबर दिखाते हुए मैंने जनाया—अब उसकी आलोचना बेकार है। कल वह मर गया, आदमी की कमी के कारण दाह-क्रिया न हो सकी, यहीं मिट्टी में गाड़ दिया गया।

क्या कहते हैं ! ब्राह्मण के लड़के को···

मगर कौन उपाय था !

यह सुन कर दोनों आदमी स्तब्ध रह गये। एक ने कहा—अच्छे लोगों का गाँव था, खबर मिलने पर जो भी होता, कुछ इंतजाम जरूर कर दिया जाता। एक आदमी ने पूछा—आप उनके कौन हैं ?

मैं बोला—कोई नहीं। केवल मामूली परिचय था। इसके यहाँ मैं कैसे आया इसे भी मैंने संक्षेप में उन लोगों को सुना दिया। दो दिन से खाने को नहीं मिला। कुलियों को हैजा हो गया इसलिए उन्हें छोड़ कर जा भी न सका।

मैंने भोजन नहीं किया है, यह सुन कर वे लोग उद्विग्न हुए, और साथ-साथ चलने के लिए बार-बार आग्रह करने लगे। और, इस भयानक बीमारी में खाली पेट रहना बड़ा खतरनाक है, यह भी एक आदमी ने कह दिया।

बेशी कुछ न कह सका—कहने की जरूरत भी न हुई—मारे भूख-प्यास के मरा जा रहा था। इसलिये उनके साथ हो लिया। रास्ते में इसी विषय पर बातचीत होने लगी। गाँव के आदमी थे, जिसे शहराती शिक्षा कहते हैं, वह इनमें न थी; मगर मजा यह था कि अँगरेजी राज की खाँटी पॉलिटिक्स से वे अपरिचित नहीं थे। इसे तो यहाँ के लोगों ने आकाश-पाताल हवा आदि मिला कर समझ लिया है।

फिर दोनों कहने लगे—सतीश भारद्वाज का इसमें कुछ भी दोष नहीं है ; हम लोग भी वहाँ होते तो यही करते। कंपनी सरकार के संसर्ग में जो आयगा, वह बिना चोर हुए नहीं रह सकता। यह सब तो जैसे छूत हैं।

मैं भूखा था। प्यासा था। चलने की शक्ति मुझ में न थी। इसलिए मैं चुप-चाप चलता रहा। वे लोग कहने लगे—इसकी क्या जरूरत थी महाशय, कि देश की छाती पर से रेल की लाइनें निकाली जायँ ! कोई आदमी इसे चाहता है ! नहीं चाहता, मगर फिर भी तो यह सब हो रहा है। बावड़ी नहीं है। कुएँ नहीं है। कहीं से एक बूँद पानी का भी प्रबंध नहीं है। गरमी में बछड़े तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। अच्छा पानी पीने को मिलता तो सतीश बाबू क्यों मर जाते ! हरगिज नहीं मरते। हैजा, मलेरिया, आदि से लोग उजड़ गये हैं परंतु काकस्य परिवेदना ! किसी का कान भी नहीं खुज-

जाता। सरकार केवल रेलगाड़ी चला कर—सब अनाज चूस लेना चाहती है। आपकी क्या राय है? यह सब ठीक है न?

आलोचना करने के लायक मैं उस समय नहीं था। इसलिए केवल सिर हिला कर हाँ में हाँ मिला दिया। अपने मन में कहने लगा—ठीक है! ठीक है! ठीक है! केवल इसीलिए तो तैंतीस करोड़ नर-नारियों की आवाज दबा कर आज भारतवर्ष गुलामी की बेड़ी में जकड़ा हुआ है। इसी कारण भारत के कोने-कोने में रेलगाड़ी फैलाने की कोशिश हो रही है। धनियों को बड़ा से बड़ा बनाने के लिए ही तो मजदूरों का सुख गया। उनकी शांति गई, रोटी गई और धर्म गया—जीवन का मार्ग प्रति दिन संकीर्ण होता गया। यह प्रचंड सत्य किसी की दृष्टि से नहीं छिप सकता।

वृद्ध सज्जन मानों मेरी बातें ताड़ गये। उन्होंने कहा—महाशय, लड़कपन में मैं ननिहाल में रहता था। पहले इधर बीस-पचीस कोस के अंदर रेल-वेल नहीं थी। तब चीजें सस्ती थीं। पैदा होते ही सब को मिल जाती थीं। आजकल तो कोई केले का थोड़ और मोचा भी नहीं देना चाहता। देने का नाम तो अब अपव्यय हो गया है। कहाँ तक दुखड़ा सुनाया जाय, साहब! पैसा पैदा करने के फेर में स्त्री-पुरुष सब के सब नीच हो गये हैं।

स्वयं भी तो वे भोग नहीं सकते! आत्मीयों को, पड़ोसियों को भी ठग कर रुपया बनाने में अपना परमार्थ समझते हैं।

सब खुराफातों की जड़ है रेलगाड़ी। अगर देश में जगह-जगह रेल की लाइनें न होतीं, तो शायद चीजें चालान कर पैसा बनाने के फेर में पड़ कर आदमी पागल न हो जाता। देश की भी इतनी दुर्दशा न होती।

इस रेल के प्रति भी मेरी शिकायत कम नहीं है। जिस प्रबंध से देश की खाने-पीने की चीजें चली जा रही हैं, केवल फैशन और शौकीनी का कूड़ा-करकट भरा जा रहा है, उसके विरुद्ध यदि घृणा की भावना पैदा हो तो शायद बुरा नहीं है। गरीबों का दुख और उनकी हीनता जो मैं देख चुका हूँ—उसका उत्तर किसी तरह नहीं मिलता। मैंने कहा—आवश्यकता से अधिक चीजों को बेच कर अगर पैसा बना लिया जाय तो कौन-सी बुरी बात है?

वे सज्जन निस्संकोच भाव से बोले—एकदम खराब है। बिलकुल अकल्याणकारी है।

मुझ से ज्यादा उन्हें इसके प्रति घृणा थी, ज्यादा क्रोध भी था। वे बोले—आपका विचार विलायती है, इस देश की भूमि में इसका जन्म नहीं हुआ। यहाँ हो भी नहीं सकता था। अपनी ही जरूरत केवल एकमात्र सत्य नहीं है। जिसके पास नहीं है उसकी जरूरतों को मिटा देने की आवश्यकता नहीं है? अगर उन चीजों को बेच कर रुपये न बटोरे जायँ तो वह बरबाद हो जायगी, यह अपराध हुआ? हम ऐसी निर्मम और निष्ठुर बात नहीं कह सकते, यह वे लोग कहते हैं जो विलायत जा कर कमजोरों के मुँह का कौर छीनना सीखते हैं।

मैंने कहा—विदेशों में अनाज भेजने के पक्ष में मैं नहीं हूँ, लेकिन मेरे पूछने का मतलब यह है कि अगर एक के बचे हुए अन्न से यदि दूसरों का पेट भरे, तो इसे आप मंगलकारी कहेंगे? इसके अलावा विदेशी लोग तो जबरदस्ती छीन कर नहीं ले जाते? पैसे दे कर खरीदते हैं।

वह आदमी तीखे स्वर में बोला—हाँ, खरीदते ही हैं। मगर वैसे ही खरीदते है जैसे बंसी में चारा लगा कर मछलियों को बुलाया जाता है।

इस व्यंग का जवाब मैं नहीं दे सका। एक तो भूख-प्यास के मारे मैं मरा जा रहा था; दूसरे उनकी बातों से मेरा विरोध भी न था।

पर, मुझे चुपचाप देख कर वे उत्तेजित हुए और कहने लगे—महाशय जी, उस बनिये की बुद्धि को आप सच मान रहे हैं, पर इससे असत् चीज दुनिया में दूसरी नहीं है। वे तो केवल सोलह आने के बदले चौसठ आने गिनना जानते हैं। वे केवल लेन-देन जानते हैं। उनकी नजरों में मनुष्य का धर्म है भोग! आज, इसी का परिणाम है कि संसार में संचय और संग्रह का व्यसन सवार है। कल्याण तो इसी मे तोपा गया है। महाशय, रेल हुई, कल हुई, लोहे की सड़कें बन गई—यही तो पावन Vesterd inteest है—इन्हीं के भार से गरीब लोग ठीक से साँस भी नहीं ले सकते।

थोड़ी देर रुक कर वे फिर बोले—आपके कहने का मतलब था कि अगर एक के खाने से अधिक हो तो बेच दिया जाय। ऐसा नहीं करने से वह

बरबाद हो जाता है, या अभाव-ग्रस्त लोग मुफ्त में उसे खा जाते हैं। इसी को न आप बरबादी कहते थे !

मैंने कहा—वे लोग इसे बरबादी सोचेंगे ही।

मेरा उत्तर सुन कर वृद्ध महाशय और भी असहिष्णु होकर बोल उठे—यह सब विलायती बोल हैं, नई रोशनी के अधार्मिक छोकरों के तर्क हैं। जब आप और विचार करना सीखेंगे, तब आपको मालूम हो जायगा कि यह बरबादी है या अनाज बेच कर बैंकों में रुपया जमा करना बरबादी है। आप देखिये, हमेशा से ही हमारे गाँव में कुछ ऐसे लोग रहते थे जो जाँगर-चोर होते—वे मोदी या हलवाई की दूकान पर बैठ कर ताश या शतरंज खेलते, मुरदे जलाने जाते, बड़े आदमियों की बैठक में गाते-बजाते या पूजा-पाठ में चौधराई करते थे। उनका दिन यों ही बीत जाता था। उनके घर में खाने-पीने का पूरा इंतजाम भी नहीं रहता था। केवल दूसरों की बची हुई चीज में से खा लेते थे, उनका काम चल जाता था। अगरेजी पढ़े-लिखों का सारा गुस्सा तो ऐसे ही लोगों पर है न ! अब जाने दीजिये, चिंता की कोई बात न रही। वे लोग आलोपित हो गये। वे या तो अन्न की कमी के कारण मर गये हैं या कहीं जा कर छोटी-मोटी नौकरी करने लगे हैं। खूब अच्छा हुआ। मेहनत-मजदूरी का महत्त्व बढ़ा। जीवन-संग्राम में सत्यता की धाक जम गई। पर इसे आप नहीं जानते—मेरी उमर के लोग जानते हैं। इस जीवन-संग्राम से उनका सर्वस्व चला गया—उन्हीं के साथ गाँवों का आनंद भी मर गया।

अंतिम बात सुन कर मैं चकबम हो कर उन्हें देखने लगा। मैंने खूब देखा, अच्छी तरह—वे सीधे-सादे देहाती के अलावा कुछ भी न लगे; पर उनकी बातें उन्हें बहुत पीछे छोड़ कर निकल गई थीं।

उनकी बातों को मैंने अस्वीकार कर दिया, ऐसी बात नहीं है। इन बातों को कबूल करने में भी मुझे वेदना होने लगी। मालूम पड़ा कि बातें अपनी नहीं है। इसमें दूसरे की जबानबंदी मालूम हुई।

मैंने संकोच के साथ पूछा—यदि आप कुछ खयाल न करें तो......

नहीं नहीं, खयाल किस बात का ! कहिये।

मैंने पूछा—यह आपके निजी चिंतन का फल है? यह आपकी अपनी अकलमंदी है?

वे रंज हो गये। बोले—ये झूठी बातें हैं क्या? इसका एक शब्द भी झूठ नहीं है—समझ लीजिये।

नहीं, नहीं, मैं झूठी नहीं कहता, पर—

पर क्या? हम लोगों के स्वामी जी कभी झूठ नहीं बोलते। उनके जैसा ज्ञानी दूसरा कोई नहीं है।

मैंने पूछा—कौन स्वामी जी?

इसका जवाब उनके साथी ने दिया। वे बोले—स्वामी वज्रानंद। उमर तो कम है, लेकिन अगाध पंडित हैं, अगाध—

आप लोग उन्हें पहचानते हैं?

वाह! पहचानते क्यों नहीं? उन्हें तो अपना ही आदमी कहा जा सकता है। इन्हीं का घर तो उनका प्रधान अड्डा है।

वृद्ध महाशय ने तुरंत ही संशोधन किया—नरेन, अड्डा मत कहो, कहो आश्रम। मैं गरीब आदमी हूँ महाशय, फिर भी औकात भर उनकी सेवा करता रहता हूँ। मगर विदुर के यहाँ श्रीकृष्ण भगवान् की तरह हैं। आदमी के वेष में भगवान् हैं।

मैंने पूछा—वे आप लोगों के गाँव में कितने दिनों से हैं?

नरेंद्र कहने लगा—करीब दो महीने से। इस तरफ कोई डाक्टर-वैद्य नहीं है, कोई स्कूल भी नहीं है। वे इसी वास्ते इतना उद्योग कर रहे हैं। खुद तो एक बड़े भारी डाक्टर हैं ही।

बात समझ में ठीक से आ गई। ये वही आनंद हैं, जिन्हें साँइथियाँ में भोजन करा कर राजलक्ष्मी अपने साथ गंगामाटी ले आई थी। इनकी बिदाई के समय की याद आ गई। दो दिन का ही परिचय था, लेकिन राजलक्ष्मी कैसे रो रही थी? इनके वापस चले आने के लिए भी वह विनय करती थी। परंतु, आनंद था संन्यासी, मोह-ममता कुछ भी नहीं उसमें—नारी के हृदय का रहस्य उसके लिए झूठ ही के बराबर था। इसी से इतने दिन साथ रहने पर भी

उसे इसकी आवश्यकता न मालूम हुई। यदि राजलक्ष्मी यह जान जाय, तो उसे कितनी भारी चोट लगेगी यह मैं ही जानता हूँ।

अपनी बात भी याद पड़ गई। मैं जल्दी ही विदा होने को हूँ। क्षण-क्षण मुझे इस बात का अनुभव हो रहा है कि राजलक्ष्मी को अब मेरी आवश्यकता न रही। मैं केवल इतना ही नहीं समझ सकता कि उस दिन का अंत राजलक्ष्मी के लिए कैसे होगा!

गाँव में पहुँच गया। उसका नाम था महमूदपुर। वृद्ध यादव चक्रवर्ती उसी का उल्लेख करते हुए बोले—नाम ही सुन कर मत चौंक जाइएगा साहब, आपको गाँव के चारों ओर मुसलमानों की छाया तक न मिलेगी। जिधर देखिएगा, उधर मिलेंगे ब्राह्मण, कायस्थ और अच्छी जाति के लोग। ऐसा यहाँ कोई भी नहीं मिलेगा जिसका पानी नहीं चलता है। है न यही बात, नरेन?

नरेंद्र हाँ में हाँ मिलाता हुआ बोला—एक भी नहीं—एक भी नहीं, हम लोग ऐसे गाँव में नहीं रहते।

यह सच भी हो सकता है, पर इसमें प्रसन्न होने की कौन-सी बात थी; यह मैं नहीं समझ सका।

वज्रानंद से भेंट हुई चक्रवर्ती के घर पर। वे ही थे। मुझे देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ और आनंद भी।

अहा! भाई साहब! आप इधर कैसे? आनंद ने उठ कर मुझे नमस्कार किया। इस नर-तनधारी देवता को मुझे प्रणाम करते देख कर महाशय चक्रवर्ती विगलित हो गये। अगल-बगल के और भक्त भी उठ खड़े हुए। मैं चाहे जो होऊँ, पर इस में किसी को जरा भी संदेह न रहा कि मैं मामूली आदमी नहीं हूँ।

आनंद बोला—आप लटक क्यों गये हैं, भाई साहब?

चक्रवर्ती ने इसका उत्तर दिया—दो दिन से खाने को नहीं मिला है। मैं बड़े पुण्य से जिंदा बच गया हूँ। कुलियों की महामारी का ऐसा सुंदर और सविस्तार वर्णन उन्होंने सुनाया कि मुझे दंग रह जाना पड़ा।

आनंद को विशेष व्याकुलता नहीं हुई। वह मुसकरा कर बोला और इस तरह कि दूसरे न सुन लें—दो दिन में इतना नहीं हो जाता भाई साहब, इसके लिये और वक्त चाहिए। क्या हो गया था—बुखार?

मैंने कहा—आश्चर्य की बात नहीं, मलेरिया तो है ही।

आतिथ्य में जरा भी कमी नहीं हुई। भोजन-छाजन खूब अच्छी तरह हुआ।

भोजन कर लेने के बाद मैं चलने की तैयारी करने लगा। इतने में आनंद ने पूछा—आप कुलियों में कैसे पहुँच गये?

मैंने कहा—विधाता के चक्र से।

आनंद हँसते हुए बोला—खीस में आकर घर पर खबर भी न गई होगी?

मैंने कहा—नहीं, सो भी खीस में पड़ कर नहीं। इसकी जरूरत भी नहीं थी। आदमी भी तो नहीं थे, जिन्हें भेजता।

आनंद ने कहा—यह बात तो अवश्य है। पर दीदी के लिये आपकी भलाई-बुराई फजूल कब से हो गई? वे डर और फिक्र से अधमरी हो गई होंगी?

बात ओवारने से कोई फायदा न था। मैं चुप रहा। कुछ जवाब न दे सका। आनंद समझ गया कि इससे मेरा मुँह बंद हो गया है। इसके अनंतर तनिक हँस कर आत्मगौरव का अनुभव करते हुए वह बोला—रथ आपके वास्ते तैयार है। आज शाम के पहले ही घर पहुँच जाइएगा। चलिये, मैं आपको पहुँचा आऊँ।

मैंने कहा—मुझे अभी तो घर नहीं जाना है। मैं जरा कुलियों को देख आऊँगा।

आनंद आश्चर्य करता हुआ बोला—इसका मतलब—अभी खीस नहीं उतरा है। दैव के दुर्योग से जो चक्र था वह बीत चुका। आप न तो साधु हैं, न डाक्टर हैं। आप हैं गृहस्थ आदमी। अगर किसी की खबर की जरूरत हो तो मुझे कह दीजिये। आप घर चले जाइये। पहुँचते ही प्रणाम करके कह दीजिएगा कि आनंद बहुत मजे में है।

दरवाजे पर बैलगाड़ी खड़ी थी। जाते समय गृहस्वामी चक्रवर्ती महाशय ने हाथ जोड़ कर कहा कि कभी इधर आना हो तो चरणरज यहाँ जरूर दे जाइएगा। आतिथ्य के लिये मैंने धन्यवाद दिया। चरण-रज गिराने का वादा मैं न कर

सका। मैं जानता था कि बंगाल मुझे जल्दी ही छोड़ देना है। फिर कभी आने की उमीद भी न थी।

मैं गाड़ी में बैठ गया। आनंद भीतर मुँह बढ़ा कर बोला—भाई साहब, इधर की जलवायु आपके अनुकूल नहीं है, आप ठहरे पच्छिम के आदमी। दीदी को मेरी ओर से कह दीजिएगा कि वह आपको उधर ही ले जायँ।

मैंने कहा—क्यों आनंद, इस ओर आदमी जिंदा नहीं रहते!

जवाब में आनंद ने जरा भी इधर-उधर न किया। वह फौरन बोल उठा—नहीं। बहस करने से क्या फायदा, भाई साहब! आप सिर्फ मेरी बात उनसे कह दीजिएगा। और यह भी कह दीजिएगा कि बगैर आनंद संन्यासी को देखे यह बात समझ में नहीं आयेगी।

मैं चुप रहा। उसका यह अनुरोध राजलक्ष्मी से कहना कितना कठिन है, यह आनंद को क्या मालूम!

गाड़ी चली। आनंद ने फिर कहा—काहे भाई साहब, आपने मुझे तो एक बार भी आने को न कहा!

मैंने कहा—तुम्हारा और तुम्हारे कामों का क्या ठीक है भाई और फिर, तुम्हें निमंत्रित करना भी तो आसान काम नहीं है!

मुझे शक होता था कि कहीं इसी बीच वह खुद न पहुँच जाय। इसके बाद इस प्राज्ञ सन्यासी से कुछ भी न छिपेगा। एक दिन ऐसी हालत थी कि इससे कुछ बनने-बिगड़ने को न था और तब मैं हँस-हँस कर कहता था—इस जीवन को विसर्जित कर चुका हूँ आनंद, इसे अस्वीकार न करूँगा; लेकिन तुम मेरे नुकसान के हिसाब को ही जाँच सके। तुम्हारे देखने से बाहर जो मेरे संचय की संख्या थी, वह बिलकुल संख्यातीत हो गई! अगर मेरा मृत्यु-पथ का पाथेय जमा रहे तो मैं इस हानि की परवाह न करूँगा। लेकिन आज क्या! कहता क्या मैं! मैं चुपचाप सिर झुकाये बैठा हुआ था। थोड़ी ही देर में मालूम हो गया कि अगर सच में ऐश्वर्य का गौरव मिथ्या-मरीचिका में खप गया हो, तो इस गल-ग्रह, भग्नस्वास्थ्य, अवांछित गृहस्वामी के भाग्य में अतिथि-सत्कार करने की विडंबना अब न आवे।

मुझे चुपचाप देख कर आनंद हँसता हुआ बोला—अच्छा, नये सिलसिले

से आप मत निमंत्रण दीजिये, मगर मेरे पास पुराने निमंत्रण की पूँजी है। उसी के बूते पर मैं आ जाऊँगा।

मैंने पूछा—कब तक होगा यह काम?

आनंद हँसते हुए बोला—मत डरो भाई साहब, आप लोगों के गुस्सा उतरने के पहले आकर तंग न करूँगा। मैं पहुँचूँगा उसके बाद ही।

मैं चुप रहा। यह कहने कि इच्छा नहीं हुई कि मैं रंज होकर आया था।

रास्ता दूर का था। गाड़ीवान था जल्दी में। गाड़ी के चलने के पहले ही उन्होंने प्रणाम किया और चले गये।

इस ओर गाड़ी की चाल न थी। इसीलिये लीख नहीं बना था। मैदानों और खेतों के पार से गाड़ी गुजर रही थी। पड़े-पड़े आनंद की बातें कानों में गूँजने लगीं। मैं रंज होकर नहीं आया था—इससे न तो कोई लाभ होता है और न यह कोई लोभ की ही चीज है। बार बार सोचने लगा कि यह सच नहीं है और इसके सच होने का कोई रास्ता भी नहीं है। मैं मन-ही-मन कहने लगा—मैं किस पर रंज होऊँगा और किसलिये? उसका क्या कुसूर है? झरने के जल के अधिकार के संबंध में झगड़ा हो सकता है, मगर पानी सूख जाने पर जल-मार्ग के विरुद्ध किस बहाने जान दे दूँ?

मुझे होश नहीं कि इसी तरह कितना समय कट गया। सहसा गाड़ी नाले में लरक गई। मैं उठ कर बैठ गया। टाट का परदा उठा कर देखा तो संध्या हो गई थी। गाड़ीवान छोकड़ा-सा था। उमर ज्यादा से ज्यादा सोलह की रही होगी। मैंने पूछा—और जगह रहने पर भी तू नाले में कैसे आ गया?

लड़के ने गाँव-गँवई की बोली में जवाब दिया—मैं क्यों उतारता, बैल अपने ही तो उतर पड़े हैं?

ऐसे ही कैसे उतर पड़े रे? तू बैल हाँकना भी नहीं जानता?

बैल नये हैं।

बहुत अच्छा! अँधेरा हो रहा है, गंगामाटी यहाँ से कितनी दूर है?

मुझे नहीं मालूम। मैं वहाँ कभी नहीं गया।

मैंने कहा—अगर कभी नहीं गया था तो मेरे ही ऊपर इतना खुश क्यों हुआ भाई? किसी से पूछ न ले रे—मालूम हो जायगा कि कितनी दूर है?

वह बोला—इधर कहाँ कोई आदमी है ? कोई तो नहीं है ।

और चाहे लड़के में जो दोष हो, पर उसका जवाब साफ और प्रांजल था ।

मैंने पूछा—गंगामाटी का रास्ता जानता है ?

वह उसी तरह स्पष्ट रूप से बोला—नहीं ।

तो तू आया था क्यों रे ?

मामा ने कहा कि बाबू को पहुँचा दो । ऐसे सीधे जाकर पूरब तरफ घूम जाने से गंगामाटी पड़ेगा । जायगा और चला आयगा ।

सामने अंधेरी रात—ज्यादा देर भी नहीं । अब तक अपनी चिंता में मगन था । लड़के की बात सुन कर डर लगने लगा । मैंने कहा—सीधे दक्षिण न जाकर कहीं उत्तर जाकर पश्चिम की ओर तो नहीं घूम गया रे ?

लड़का बोला—मैं क्या जानूँ ?

मैंने कहा—नहीं मालूम है तो चल, तो दोनों आदमी मौत के घर चलें—अँधेरे में । अभागा कहीं का—रास्ता नहीं जानता था तो क्यों आया था ? तेरा बाप है ?

नहीं ।

मा है ?

नहीं, मर गई ।

तो फिर आफत है । तो चलो, आज उन्हीं के पास चलें । तेरे मामा को अकल ही अधिक नहीं, दया-माया भी खूब है ।

कुछ दूर आगे बढ़ा तो लड़का रोने लगा । उसने बतला दिया कि वह अब और आगे नहीं जा सकता ।

मैंने पूछा—तो कहाँ रहेगा ?

वह बोला—घर लौट जाऊँगा ।

शाम को मेरे लिए क्या उपाय है ?

पहले ही कह चुका हूँ कि लड़का स्पष्टवादी था । उसने कहा—तुम बाबू, उतर जाओ । मामा कह चुके हैं, सवा रुपया भाड़ा ले लेना । कमती देने से वह मुझे मारेंगे ।

मैंने कहा—तुम मेरे लिए मार खाओगे, यह कैसी बात है ! एक बार

सोचा कि इसी गाड़ी पर यथास्थान लौट जाऊँ। किंतु ऐसी प्रवृत्ति न हुई। रात हो रही थी। स्थान अपरिचित था। गाँव कितनी दूर था यह अनुमान न लगा। सामने ही एक आम और कटहल का बाग देख कर सोचा कि गाँव ज्यादा दूर नहीं है। आश्रय तो मिल ही जायगा। और अगर नहीं मिला तो क्या होगा? नहीं होगा तो, इसी तरह इस बार यात्रा शुरू होगी।

उतर कर मैंने भाड़ा चुका दिया। देखा कि लड़का बातचीत में ही नहीं, काम में भी साफ था। क्षण भर में गाड़ी का मुँह उसने फेर लिया, दोनों बैल घर की ओर चलने का इशारा पा कर आँखों से ओझल हो गये।

१३

संध्या तो हो ही चुकी थी। मगर अभी खूब अँधियाला नहीं हुआ था। इतनी ही देर में मुझे कोई इंतजाम कर ही लेना था। मेरे लिए यह काम नया न था। मैं इससे डरा भी नहीं। आम-बाग के बगल की पगडंडी से धीरे-धीरे बढ़ा। मेरा मन भीतर-ही-भीतर लजा गया। भारतवर्ष के अन्य प्रांतों से मेरा परिचय था। पर यह तो बंगाल प्रदेश का राढ़-मार्ग था। मैं इन राहों को तनिक भी न जानता था। यह सोच लिया कि सभी प्रांतों के बारे में तो पहले-पहल इतना ही अनभिज्ञ था। ज्ञान इसी तरह प्राप्त होता है, कोई दूसरा नहीं करा देता है।

मैंने इस बात पर जरा भी विचार न किया कि उन दिनों मेरे लिए सभी द्वार खुले थे। पर, आज संकोच और द्विधा के कारण सब बंद हो गये हैं। उन दिनों की यात्रा में कृत्रिमता नहीं थी, पर आज का चलना तो एकदम नकल जैसा मालूम होता था। उन दिनों अनजान, अपरिचित ही मेरे लिए आत्मीय बन जाते थे—उन पर सारा बोझ डाल देने में भी संकोच नहीं होता था। पर आज वह भार एक खास आदमी पर पड़ जाने के कारण भार-बिंदु दूसरी ही जगह हट गया था। इसीलिए अपरिचित स्थान में चलने से मेरे पैर भारी होते जा रहे थे। सुख-दुख की उन दिनों की धारणाओं से आज की धारणा में कितना अंतर था—इसका कुछ ठीक नहीं। फिर भी चलने लगा। अब जंगल में रात बिताने का न तो साहस ही रहा और न शक्ति ही रही। आज के लिये कोई आश्रय ढूँढ़ कर निकालना ही था।

भाग्य अच्छा था। अधिक दूर नहीं चलना पड़ा। बगीचे में एक मकान दिखलायी पड़ा। लोहे का गेट सामने में ही था—सो भी टूटा हुआ। बहुत से छड़ तो निकल गये थे। मैं भीतर चला। बरामदा खुला हुआ था। भीतर दो बड़े-बड़े कमरे थे। एक बंद था, दूसरा खुला हुआ। मैं दरवाजे पर पहुँचा। भीतर से एक कंकाल-सा आदमी निकल कर सामने आया। कमरे के चारों ओर लोहे के चार दरवाजे थे। कभी उन पर गद्दा भी बिछा रहता था, मगर आजकल एकदम खाली था। ऊपर का टाट भी गायब हो गया था। थोड़ी-सी नारियल की जटायें भी थीं। एक तिपाई थी। कुछ टीन और कलई के बरतन भी थे। इन सब का वर्णन मेरी स्थिति के बाहर की बात है। मेरा अनुमान सच निकला। मकान जरूर अस्पताल था। आदमी भी परदेशी था। नौकरी करने को आ कर यहाँ बीमार पड़ गया। पंद्रह दिन से अस्पताल का इनडोर पेशेंट था। उस भलेमानुस से बातचीत हुई—

चार पैसे देंगे, बाबू जी?

किसलिए?

मारे भूख के मर रहा हूँ बाबू जी, कुछ चर-चबेनी खरीद कर खाना चाहता हूँ।

मैंने पूछा—तुम तो बीमारिया आदमी हो, अंट-संट खाने की मनाही नहीं है?

जी नहीं।

तुम्हें यहाँ से खाने को नहीं मिलता?

जवाब में वह जो कुछ बोला, उसका मतलब यह था कि उसे सबेरे एक कटोरा साबू दिया गया था। इसे वह बहुत पहले खा चुका था। वह गेट के बाहर रोज बैठ कर भीख माँगता। अगर कुछ मिलता तो शाम को खा लेता नहीं तो चुपचाप भूखा सो रहता। शायद वहाँ एक डाक्टर भी थे जिन्हें जेब-खर्च के लिए कुछ मिल जाता था। वे सबेरे आ कर दर्शन दे जाया करते थे। एक आदमी और था जो लालटेन में तेल देने से ले कर कंपाउंडरी तक कर लेता था। पहले एक नौकर था। उसे छ-सात महीने तक वेतन न मिला, इसी से वह भी चला गया। उसके बाद कोई दूसरा नया आदमी नहीं बहाल किया गया था।

मैंने पूछा—झाड़ू कौन लगाता है ?

वह बोला—इन दिनों तो मैं ही लगा देता हूँ। जब मैं चला जाऊँगा और कोई नया रोगी आवेगा तो वह लगावेगा—दूसरा कौन लगाता है ?

मैंने कहा—प्रबंध तो अच्छा है। अस्पताल किसका है ? तुम्हें मालूम है ?

वह भलामानुस मुझे दूसरी ओर के बरामदे में ले गया। वहाँ लालटेन लटक रही थी। कंपाउंडर साहब उसे सबेरे ही जला कर घर चले गये थे। दीवार में गड़े, एक पत्थर के ऊपर सन्, तारीख आदि पूरा विवरण लिखा हुआ था। सुनहले अँगरेजी अक्षरों में—पूरा शिलालेख था। सब से पहले जिस जिला मजिस्ट्रेट ने इसका उद्‌घाटन किया था उनका पूरा नाम व पता लिखा हुआ था। उसके नीचे था प्रशस्ति पाठ। किसी राय बहादुर ने अपनी माता की स्मृति में यह अस्पताल बनवाया था। इस शिलालेख में सिर्फ माता-पुत्र का ही जिक्र नहीं था—दो-चार पुश्तों का सविस्तर वर्णन था। यदि कोई उसे कुल-तालिका कहे तो इसमें जरा भी अत्युक्ति नहीं होगी। इसके बनाने वाले राय बहादुरी के लायक थे। इसमें जरा भी शक-शुबहा नहीं। रुपया बरबाद करने में उन्होंने कोई कमी न की थी। ईंट, काठ और लोहे का दाम चुका देने के बाद जो कुछ बचा होगा, शायद वह अँगरेज शिल्पकारों से वंश-वर्णन लिखवाने में खतम हो गया होगा। डाक्टर के वेतन की व्यवस्था करने के लिये या रोगियों के आहारादि का इंतजाम करने के लिये या तो रुपये ही नहीं बचे होंगे या समय ही न मिला होगा।

मैंने पूछा—राय बहादुर कहाँ रहते हैं ?

उसने कहा—बहुत दूर नहीं, करीब ही रहते हैं।

अभी उनसे भेंट हो सकती है ?

जी नहीं, घर में ताला बंद है। सब लोग कलकत्ता रहते हैं।

मैंने पूछा—आते कब हैं, तुम्हें मालूम है ?

वह परदेशी आदमी था, इसलिये ठीक-ठीक हाल नहीं बता सका। उसने कहा कि तीन बरस पहले आये थे। उससे भी डाक्टर साहब ने कहा था। सब जगह एक ही बात, दुखी होने का कोई कारण नहीं था।

संध्या एक अपरिचित स्थान में बीती जा रही थी। अँधेरा बढ़ता जा रहा

था, अतः राय बहादुर के कार्यों की आलोचना का समय नहीं था। मुझे और भी आवश्यक काम बाकी था। उसे कुछ पैसे देने पर मालूम हुआ कि नजदीक में ही चक्रवर्तियों का घर था। वे दयालु आदमी थे इसलिये उनके यहाँ आश्रय मिल जाने की संभावना थी। वह स्वयं मुझे अपने साथ ले चला—मुझे भी तो बनिये की दूकान तक चलना ही है। आपको उनके यहाँ पहुँचा दूगा।

बातचीत के सिलसिले में मुझे मालूम हुआ कि उसने भी कई बार इन लोगों से खाया-पिया है।

करीब दस मिनट में चक्रवर्त्ती महाशय के दालान में पहुँचा। उसने पुकारा—पंडित जी हैं घर पर !

कोई न बोला। मन में सोच रहा था कि एक संपन्न ब्राह्मण के यहाँ आज आतिथ्य ग्रहण करूँगा, पर दालान की हालत देख कर मेरा दिल बैठ गया। उधर से कोई उत्तर नहीं आता था और इधर से मेरे साथी का अपराजित अध्यवसाय भी जारी रहा। नहीं तो शायद इस अस्पताल में वह न जाने कब मर गया होता। वह बराबर पुकारता ही रहा।

एकाएक उत्तर आया—चला जा आज। कह देता हूँ, चला जा।

मगर वह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। फिर बोला—देखिये, जरा निकल कर—कौन आये हैं ?

पर मैं तो विचलित हो गया। मैं मानों चक्रवर्ती का गुरू था—उनका घर पवित्र करने आया था।

भीतर की आवाज मुलायम पड़ गई—कौन है रे भीमा ?

इतने में मकान-मालिक आ गये। उनकी धोती मैली थी और शायद छोटी भी थी। अँधेरे के कारण उनकी उमर का अंदाज मैं नहीं लगा सका। उन्होंने फिर प्रश्न किया—कौन है रे भीमा !

मुझे मालूम हो गया कि मेरे साथी का नाम भीम था। भीम ने कहना शुरू किया—भलेमानुस हैं। ब्राह्मण हैं। राह भूल कर ये अस्पताल में पहुँच गये थे। मैंने इनसे कहा—डरने की कोई बात नहीं, मैं आपको पंडितजी के घर पहुँचा देता हूँ। गुरू जैसी खातिरदारी आपकी होगी।

भीम जरा भी बढ़ा-चढ़ा कर न बोला था। चक्रवर्ती महाशय ने मुझे आदर के साथ ग्रहण किया। अपने ही हाथों एक चटाई बिछा कर—तमाखू पीने की बात पूछ कर—भीतर हुक्का लाने चले गये। उन्होंने कहा—नौकर-चाकरों को बुखार आ गया है—क्या किया जाय ?

यह सुन कर मैं तनिक कुंठित हो गया। मन में आया कि एक चक्रवर्ती के घर से दूसरे चक्रवर्ती के यहाँ पहुँच गया हूँ। न जाने यहाँ का आतिथ्य कैसा होगा! मैं हुक्का पीने की तैयारी ही कर रहा था कि सुना—कौन आदमी आया है जी!

समझ लिया कि यही घर की घरनी हैं। जवाब देते समय चक्रवर्ती का कंठस्वर ही नहीं प्रकंपित हुआ बल्कि मेरा हृदय भी काँप गया।

वे चट से बोले—भारी आदमी हैं—बहुत बड़े। ब्राह्मण हैं—नारायण। राह भूल कर आ गये हैं—केवल रात भर यहाँ रहेंगे और तड़के ही चले जायँगे।

भीतर से फिर आवाज़ आई। हाँ, हाँ! सब तो यहाँ राह भूल कर ही आते हैं। मुँहझौंसे पाहुनों से एक दिन भी नागा नहीं होता। घर में न एक दाना चावल है न दाल—खिलाओगे क्या चूल्ही की राख ?

मेरे हाथ का हुक्का यों ही रह गया। चक्रवर्ती बोले—अरे तुम क्या बकने लगी! मैं सब इंतजाम कर देता हूँ—घर में चावल-दाल की कमी है, तुम भीतर चलो, मैं सब ठीक कर देता हूँ।

चक्रवर्ती की घरनी भीतर जाने के लिये बाहर नहीं आई थी। वह बोली—क्या ठीक करोगे, कहो तो? थोड़ा चावल है तो, मगर लड़कों को तो राँध कर देना पड़ेगा। उन्हें भूखे सुला कर मैं उसे चाँड़ने को दूँगी? यह कभी मत सोचना।

हे धरती माता, फट जा, फट जा। 'नहीं, नहीं' मैं न जाने क्या कहना चाहता था पर वह चक्रवर्ती के गुस्से में बह चला। वे तुम छोड़ कर तू कहने लगे। अतिथि-सत्कार का प्रश्न लेकर पति-पत्नी में जो वाद-विवाद हुआ, उसकी भाषा और गंभीरता भी वैसी ही थी। इसकी उपमा मिलना मुश्किल है। मेरे पास रुपये नहीं थे। थोड़ा-सा पैसा था। वह भी खर्च हो गया था।

कुरते में सोने का बटन अवश्य था। पर वहाँ कौन किसका सुनता था! मैं व्याकुल होकर उठना ही चाह रहा था कि चक्रवर्ती महाशय मेरा हाथ थाम कर बोले—आप हैं अतिथि नारायण। आप चले जायँगे तो मैं फाँसी लगा कर मर जाऊँगा।

घरनी इससे जरा भी न डरी। वे चैलेंज एँक्सेप्ट कर के बोलीं—तब तो मेरी जान बचे। भीख माँग कर बच्चों को पाल तो सकूँगी।

मेरी हालत ज्ञान-शून्य सी हो रही थी। मैं बोला—चक्रवर्ती जी, फाँसी तो आप किसी दिन सोच-विचार कर सुस्ते लगाइयेगा—शायद अच्छा भी यही होगा—मगर, बहरहाल या तो मुझे छोड़ दीजिये या एक रस्सी दे दीजिये; मैं फाँसी लगा कर आतिथ्य से आपको मुक्त कर दूँ।

चक्रवर्ती जी जोर से बोले—अब कुछ सीख मिली! मैं पूछता हूँ—कुछ सीखा?

भीतर से आवाज आई—हाँ।

थोड़ी देर बाद एक हाथ भीतर से निकला। एक पीतल का गगरा जमीन पर रख कर वे बोलीं—श्रीमंत की दूकान से जाकर दाल-चावल-घी-नमक आदि ले आओ। देखना कहीं पैसा काट न ले।

चक्रवर्ती खुश होकर बोले—अरे, नहीं! बच्चों के हाथ का लड्डुआ है क्या?

उन्होंने हुक्का उठा कर दो तीन फूँक खींचा, इसके बाद बोले—सुन रही हो, जरा चिलम तो बदल दो, एक बार और पीलूँ, तब जाऊँ। जाऊँगा और आऊँगा, तनिक भी देर न लगेगी।

उन्होंने चिलम भीतर की ओर बढ़ा दी।

सुलह हो गया, पति-पत्नी में। घरनी चिलम भर कर ले आई और पतिदेव ने जी भर कर हुक्का पिया। खुश होकर उन्होंने हुक्का मेरी ओर बढ़ा दिया और गगरा लेकर बाहर चले गये।

चावल-दाल-घी-नमक सब कुछ आ गया और रसोई-घर में मेरी बुलाहट हुई। भोजन में जरा भी रुचि न थी फिर भी गया! आपत्ति करना बिलकुल ठीक नहीं था बल्कि खतरे का द्योतक था। बहुत जगह बिना इच्छा के आतिथ्य मिला है। सब जगह आदर ही हुआ, पर कहना ठीक नहीं होगा।

मगर ऐसा स्वागत भी मेरे भाग्य में बदा था। चूल्हा जल रहा था। सब सामान रखा था। एक पीतल का तसला भी मौजूद था।

चक्रवर्ती जी उत्साहित होकर बोले—हाँड़ी चढ़ा दीजिए, चटपट सब हो जायगा। मसूर की खिचड़ी, आलू भात है ही, खाने में खूब स्वादिष्ट होगा और ऊपर से गरम-गरम घी।

चक्रवर्ती जी की जीभ लपलपा उठी। यह समस्या तो मेरे लिये और कठिन हो गई। इस डर से कि किसी तरह का प्रलय कांड न खड़ा हो जाय मैंने हाँड़ी चढ़ा दी। घरनी परदे में लुका गई थी। अब वे मुझे लक्ष्य करके कहने लगीं। उस स्त्री में चाहे और जो दोष हो पर संकोच या लिहाज अधिक नहीं था। इस बात को तो शायद बड़े-से-बड़ा निंदक भी कबूल करेगा। उन्होंने कहा—बेटा तुम्हें तो रींधना एक दम नहीं आता।

मैंने स्वीकार करते हुए कहा—जी नहीं।

वे कहते थे कि परदेशी आदमी हैं। किसे मालूम होगा कि किसने राँधा और किसने खाया। पर मैंने ही कहा—सो नहीं हो सकता। एक रात के लिये मुट्ठी भर भात खिला कर किसी की जात नहीं खराब की जा सकती। मेरे बाप अग्रदानी ब्राह्मण हैं।

मुझे यह कहने का साहस न हुआ कि जीवन में इससे भी बड़ा-बड़ा पाप कर चुका हूँ। शायद कोई उपद्रव खड़ा हो जाता। केवल यही सोच रहा था कि रात बीते और इस घर से छुटकारा मिले। उनके कहने के मुताबिक खिचड़ी बनाई। उसका पिंड बनाकर, उसमें घी डाल कर—उसे लील जाने की कोशिश भी की। इस असंभव कार्य को किस तरह मैंने संभव किया यह मुझ से छिपा हुआ नहीं है। यही प्रतीत होने लगा कि चावल-दाल का पिंड पेट में पत्थर जैसा पड़ा हुआ था।

अध्यवसाय से आदमी बहुत कुछ कर सकता है। इसकी भी एक हद होती है। हाथ-मुँह धोने का मौका न मिला। सब बाहर निकल आया। मैं सिटपिटा गया क्योंकि शायद मुझे ही साफ करना पड़ता। उतनी ताकत भी नहीं थी। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। किसी तरह इतना कह सका—कुछ देर में अपने को सम्हाल कर यह सब साफ कर दूँगा।

मैं सोच रहा था कि जवाब में न जाने क्या-क्या सुनना पड़ेगा। पर आश्चर्य है कि महिला का कंठस्वर मुलायम हो गया। बोलीं—क्यों तुम साफ करोगे बेटा? मैं साफ कर देती हूँ। बाहर अभी तक बिछौना नहीं बिछा सकी हूँ, तब तक मेरे कमरे में जाकर पड़ रहो।

ना कहने की हिम्मत न थी। चुपचाप उनके पीछे-पीछे जाकर, उन्हीं के फटे-चिटे बिछौने पर सो गया।

मैं बहुत देर में उठा। उस समय मुझ में सिर उठाने की भी शक्ति नहीं थी। बहुत जोर का बुखार चढ़ आया था। मेरी आँखों से आँसू आसानी से नहीं गिरते। मगर आज न जाने क्यों जवाबदेही के डर से और आतंक से मेरी आँखें भर गईं। निरुद्देश्य तो मैं बहुत बार निकला था लेकिन ऐसी विडंबना शायद कभी नहीं हुई थी। मैं जी भर उठने का प्रयास करता रहा और आखिर में वहीं आँखें मूँद कर पड़ रहा।

आज चक्रवर्ती की पत्नी से आमने-सामने बातचीत हुई। दुख के समय में ही शायद स्त्रियों का सच्चा परिचय मिलता है। उन्हें पहचानने की इससे बड़ी और कोई कसौटी नहीं हो सकती। मनुष्य के पास उन्हें जीतने के लिये इससे बड़ा अस्त्र भी और दूसरा नहीं है।

मेरे बिछावन के पास आ कर वे पूछने लगीं—नींद नहीं टूटी बेटा?

मेरी आँखें खुलीं। उन्हें अच्छी तरह देखा। उमर करीब-करीब चालीस वर्ष की थी। रंग काला। आँख-नाक-मुँह-कान भद्र घराने की स्त्रियों की तरह। कहीं भी रूखापन नहीं—केवल दारिद्रय और अनशन के चिह्न बाकी थे।

वे बोलीं—अँधेरे में नहीं सूझता बेटा। यदि मेरा बड़ा लड़का जिंदा रहता तो तुम्हारे इतना बड़ा होता।

मैं इसका उत्तर सोचने लगा। उन्होंने चट से मेरे माथे पर अपना हाथ रख कर कहा—बुखार तो खूब तलफलाया है।

मेरी आँखें बंद थीं। वैसे ही मैं बोला—कोई जरा सहारा दे दे तो शायद अस्पताल तक पहुँच जाऊँ, नजदीक ही तो है।

मैं उनका चेहरा नहीं देख सका, पर इतना जरूर समझ गया कि वे वेदना से भर गई हैं। वे बोलीं—दुख की जलन के कारण मैं कुछ कह चुकी

हूँ बेटा तो इसी से तुम उस यमपुरी में चले जाओगे ! जो अस्पताल में रहते हैं, उन्हें किन-किन जात का छुआ खाने को मिलता है ! मैं कैसे जाने दूँगी ! मैं साबू-बार्ली बना कर दूँगी तो तुम नहीं खाओगे ?

मैंने गर्दन हिला कर बतलाया कि इसमें मुझे जरा भी आपत्ति नहीं। केवल बीमारी की हालत में ही नहीं बल्कि अच्छा रहने पर भी मुझे कोई आपत्ति नहीं रहती।

इसलिए मैं वहीं रह गया। शायद चार दिन तक वहीं रहा। चार दिनों की बातें भूलने की नहीं है। बुखार तो एक ही दिन में उतर गया। बाकी तीन दिन कमजोर होने के कारण उन्होंने मुझे वहीं रोक लिया। इस ब्राह्मण परिवार के दिन किस भयंकरता से कट रहे थे—समाज के अर्थहीन पीड़न ने उन लोगों को कितना पीड़ित कर रखा है ! काम से फुरसत पाने पर चक्रवर्ती महाशय की स्त्री मेरे पास आ कर बैठ जातीं, मेरे सिर पर हाथ फेरतीं। रोग का पथ्य तो न जुटा सकतीं पर वे उसे व्यवहार और यत्न से पूरा कर देने की कोशिश में बराबर रहतीं।

इनकी अवस्था पहले कुछ अच्छी थी। जमीन-जायदाद भी थी। पर, उनके बेवकूफ पति ने लोगों को धोखा दे-दे कर उन्हें विपत्ति में डाल दिया था। वे रुपये उधार माँगते और फिर भी कहते—यहाँ पर बड़े-बड़े आदमी तो हैं पर किसकी छाती में कितने बाल हैं ! छाती में बाल दिखलाने के लिये कर्ज ले कर कर्ज देते रहते थे। पहले हाथ-चिट्ठा लिख कर रुपये लेते, पर बाद में गहने और रुपये बेंच कर। नतीजा जो होना चाहिये था वही हुआ।

ऐसा कुकर्म करना चक्रवर्ती के लिए मुश्किल न था। इसका पता तो मुझे एक ही रात में मिल गया। बहुतों की धन-संपत्ति बुद्धि के दोष से नष्ट हो जाती है। इसका फल भी दुखद होता है, परंतु यह दुख समाज की निष्ठुरता से और भी अधिक बढ़ जाता है। चक्रवर्ती-गृहिणी की बात से इसका पता मुझे लग गया। उस घर में केवल दो कमरे थे। एक में लड़के-बच्चे रहते थे। दूसरे में बाहर का आदमी होते हुए भी मैंने दखल जमा लिया। मुझे तो इससे बड़ा संकोच हो रहा था। मैंने कहा—आप लोगों को तकलीफ हो रही है। बाहर के कमरे में मेरे लिए बिछावन लगा दें तो कोई हर्ज नहीं होगा।

घरनी ने सिर हिला कर कहा—यह कैसे होगा बेटा ! बादल घिर रहा है। अगर पानी बरसने लगा तो पैर धरने की जगह भी न मिलेगी उस कमरे में। तुम अभी कमजोर हो, इतनी हिम्मत मुझ में नहीं है।

आँगन में कुछ पेटारी पड़ी हुई थी। मैंने उसे ध्यान से देखा था। उसकी ओर देख कर मैंने पूछा—आँधी पानी के दिन तो आ ही गये, पहले से क्यों नहीं मरम्मत करा लिया था।

जो जवाब मिला उससे जान पड़ा कि मरम्मत कराना कोई मामूली काम न था। सब ब्राह्मण होने के कारण कोई उनका काम नहीं करता था। आन-गाँव के मुसलमान घर छाते थे। वे किसी वजह से इस साल नहीं आये। इसी सिलसिले में वे रोकर बोलीं—बेटा हम लोगों के दुःखों का कोई वारापार नहीं है। उस साल एक सात-आठ बरस की लड़की हैजे में मर गई। मेरे भाई काशी जी घूमने गये थे। उन्हें भी एक छोटे लड़के के साथ मसानघाट जाना पड़ा। उनका किरिया-करम भी ठीक से नहीं हो सका। उन्हें कोई लकड़ी भी न दे सका। गढ़ा खोद कर, किसी तरह गाड़-गूड़ ये लौट आए। उनका पुराना शोक नया दिखलायी पड़ने लगा। आँखें पोंछ कर वे जो भी बोलीं उसका मतलब यह था कि उनके पुरखों ने केवल श्राद्ध का दान ग्रहण किया था। यही उन लोगों का कुसूर था। यदि कोई श्राद्ध का दान न लेगा तो श्राद्ध असिद्ध और असफल रह जायगा। श्राद्ध तो हिंदू का अवश्य-कर्त्तव्य है। एक तो इसमें दोष ही नहीं है, अगर है भी तो क्यों लोभ में फँसा कर आदमी को उस ओर प्रवृत्त किया जाता है ?

इन सवालों का जवाब देना जितना मुश्किल है उतना इस बात का पता लगाना कि—उन पुरखों की किस दुष्कृति के कारण इन्हें इतनी विडंबना भोगनी पड़ रही है। व्यक्ति तरीके वे इस काम को नहीं करते। यह काम बुरा है, फिर भी है सच। उनका कोई अपराध नहीं। सोच केवल इसी का बना रहता है कि एक मनुष्य अपने पड़ोसी को ही, बिना किसी दोष के दुर्गम और दुखमय बना देता है। ऐसा उदाहरण शायद हिन्दू समाज के अतिरिक्त और कहीं न मिलेगा।

वे फिर कहने लगीं—इस गाँव में ज्यादा आदमी भी नहीं हैं। आधे लोग

मलेरिया और हैजा से मर गये हैं। थोड़े से ब्राह्मण, कायस्थ और राजपूत बच रहे हैं। हम लोग सब तरह से लाचार हैं बेटा, नहीं तो जी में आता है कि किसी मुसलमान के गाँव में जाकर बस जायँ।

मैंने पूछा—मगर वहाँ तो जात चली जायगी न?

इस प्रश्न का उत्तर वे न दे सकीं। वे बोलीं—मेरे एक चचिया ससुर थे। वे दुमका नौकरी करने गये और वहीं ईसाई हो गये। अब तो उन्हें कोई तकलीफ नहीं है।

मैं चुप रहा। हिंदू धर्म छोड़ कर यदि कोई दूसरा धर्म ग्रहण करना चाहता है तो मुझे बड़ा दुःख होता है। मैं सान्त्वना भी देना चाहता हूँ मगर क्या दूँ? मैं समझता था कि अब तक नीच जातियाँ ही अत्याचार बरदाश्त करती हैं मगर अब जान गया कि कोई इससे बाकी नहीं है। एक दूसरे के जीवन बे-मानी-मतलब के दूभर कर डालना ही इस समाज का आत्मगत संस्कार है। बहुतों ने कहा कि यह अन्याय है, गर्हित है, बुरा है, फिर भी, किसी के पास इसके लिए कोई उपाय नहीं। इसी अन्याय के बीच वे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत चलने को तैयार हैं, पर प्रतिकार की प्रवृति या साहस कुछ भी नहीं होता। जान-सुन कर भी प्रतिकार करने की प्रवृति इनमें से इस प्रकार विल-बिला गई है। यह समझना कठिन हो जाता है कि ऐसी जाति कितने दिन तक जीवित रह सकेगी।

तीसरे दिन मैं स्वस्थ्य हो गया। जाने की तैयारी करके बोला—माँ, अब मुझे बिदा दीजिये।

घरनी की आँखें छलछला आईं। उन्होंने कहा—गरीबों के घर में खूब तकलीफ हुई, बेटा। कड़ी बातें कम न सुननी पड़ीं।

इसका उत्तर मैं न ढूँढ सका—नहीं नहीं, कोई बात नहीं, मैं बहुत आराम से रहा—आदि मामूली शराफत की बातें कहने में मुझे शरम आने लगी। वज्रानंद की बातें याद पड़ गईं। एक दिन उसने कहा था—घर छोड़ देने से क्या होता है, घर-घर मा-बहनें मिलती हैं, उनके आकर्षण से हम बच जायँ तब न? एक दम सच बात थी।

गरीबी और कम-अक्ल पति के उटपटांग कामों से गृहिणी पागल-सी हो

गई थी। पर जब उन्हें यह पता चला कि मैं बीमार हूँ, लाचार हूँ, तब सोचने की कुछ बात ही न रह गई। मातृत्व के असीम स्नेह से मेरे रोग और पराये घर में ठहरने के समूचे दुःख को उन्होंने एकबारगी अलग कर दिया।

चक्रवर्ती महाशय किसी तरह एक गाड़ी ले आये। घरनी की इच्छा थी कि मैं नहा-खा-पीकर जाऊँ, मगर गरमी और धूप ज्यादा बढ़ जाने के कारण वे अधिक आग्रह न कर सकीं। मैं चलने को तैयार हुआ तो केवल अनेकों देवी-देवताओं को स्मरण करके बोलीं—अगर कभी इधर आने का मौका मिले तो एक बार यहाँ जरूर आना बेटा।

मैं उधर कभी गया भी नहीं। जरूर आना तो मुझ से नहीं बन सका। बहुत दिनों बाद सुना कि कुशारी महाशय के द्वारा राजलक्ष्मी ने इनका बहुत-सा कर्जा ले लिया है—अपने ऊपर।

१४

मैं तीसरे पहर घर पर यानी गंगामाटी पहुँचा। दरवाजे के दोनों तरफ केले के पेड़ बँधे थे। कलसा रखा हुआ था। आम के पत्तों की बंदनी लटक रही थी। बहुत से लोग बाहर बैठ कर तमाखू पी रहे थे। बैलगाड़ी के घर-घर से लोग देखने लगे। शायद गाड़ी के मधुर रव से आकर्षित होकर एक भले-मानुस सामने खड़े हो गये। ये वज्रानंद थे। उनके आनंद का पारावार न रहा। एक आदमी भीतर चला गया खबर देने। स्वामी जी बोले—सब हाल मैंने यहाँ पहले ही पहुँचा दिया। आपको खोजने के लिये चारो ओर आदमी भेजा गया है। एक ओर तो खोजने के लिये आदमी भेज दिया गया और साथ ही साथ चिंता भी कम न रही। क्या बात थी? एक-ब-एक आप कहाँ डुब्बी मार गये थे? गाड़ीवान ने वहाँ जाकर कह दिया कि वह आपको गंगा-माटी की राह पर उतार कर चला गया।

राजलक्ष्मी काम में बझी हुई थी। वह आई। जमीन पर माथा टेक कर प्रणाम किया और बोली—घर भर को तुमने पेर दिया। कुछ कहा नहीं जा सकता था। फिर वह वज्रानंद की ओर देख कर बोली—मैं जान गई थी कि आज ये जरूर आवेंगे।

मैं हँस कर बोला—कलश स्थापन और केले का खंभा देख कर ही मैं समझ गया कि तुम जान गई हो।

रतन दरवाजे की आड़ में खड़ा था। वह कहने लगा—जी नहीं, इस-लिए नहीं—आज ब्राह्मण-जेवनार है, इसीलिये। जब से मा वज्रनाथ के दर्शन करके आई हैं तब से—

राजलक्ष्मी ने उसे डाँट कर कहा—माने-मतलब समझाने की जरूरत नहीं है। तू जाकर अपना काम देख।

उसके लाल चेहरे को देख कर वज्रानंद हँसने लगा—समझ गये कि नहीं भाई साहब, जब तक आदमी किसी एक काम में नहीं लगा रहता तब तक मन की उत्कंठा ज्यादा बढ़ जाती है। उसे लोग सह नहीं सकते। जेवनार का इंतजाम केवल इसीलिये है। यही बात है न दीदी?

राजलक्ष्मी बिगड़ कर वहाँ से चली गई। वज्रानंद ने मुझ से पूछा—आप दुबले जान पड़ते हैं भाई साहब, कुछ और हो गया था क्या? एक-ब-एक आप घर से क्यों चले गये थे?

चले जाने का कारण मैंने उसे ठीक से समझा दिया। सुन कर आनंद बोला—अब इस तरह कभी न भागियेगा। इनके दिन कैसे कटे हैं बिना देखे उस पर विश्वास भी नहीं किया जा सकता।

यह मुझे मालूम था। बिना देखे भी मैंने विश्वास कर लिया। रतन चाय और हुक्का दे गया। आनंद ने कहा—मैं भी बाहर जाता हूँ भाई साहब। अगर मैं यहाँ बैठा तो शायद कोई मुझे फिर देख न सका। इतना कह कर वह चला गया।

कुछ देर बाद राजलक्ष्मी आई। उसने अपने स्वाभाविक स्वर में कहा—कमरे में गरम पानी-धोती-गमछा रख आई हूँ। केवल सिर और देह पोंछ लो। खबरदार, बुखार में सिर पर पानी न डाल लेना।

मैंने कहा—स्वामी जी ने तुम्हें यों ही कह दिया है। मुझे बुखार आदि कुछ भी नहीं है।

राजलक्ष्मी ने कहा—बला से नहीं है, पर लग जाने में कितनी देर लगेगी।

मैंने कहा—मैं तो तुम्हें यह नहीं बता सकता, पर मेरा सिर मारे गरमी के जल रहा है। नहाना बहुत आवश्यक है।

राजलक्ष्मी ने कहा—जरूर है! तो तुम से अकेले नहीं होगा, मैं भी साथ चलती हूँ। इसके बाद वह हँस कर बोली—क्यों बेकार लड़ाई कर के मुझे दुःख देना चाह रहे हो। अबेर को मत जाया करो। तुम्हें मेरे सिर की कसम है, मान जाओ।

इस तरह की बातचीत में राजलक्ष्मी लासानी है। अपनी इच्छा को स्नेह के मधुर रस से भर कर इस तरह दूसरे के कंधे पर लाद देती है कि उसके विरुद्ध किसी का संकल्प काम नहीं करता। नहीं नहाने से भी मेरा काम चल जायगा—परंतु जिन कामों को करना जरूरी है, उन में भी मैंने देखा है कि उसकी इच्छा-शक्ति के विरुद्ध काम करने की शक्ति मुझमें नहीं रही है। मेरी बात नहीं, किसी में भी ऐसी शक्ति नहीं है। वह मुझे उठा कर भोजन लाने चली गई। मैं बोला—पहले ब्राह्मण-भोजन तो हो।

राजलक्ष्मी अचरज के साथ बोली—क्षमा करो, वह काम खतम होते-होते संध्या हो जायगी।

होने दो।

राजलक्ष्मी हँसती हुई बोली—ब्राह्मण-भोजन को मेरे ही कपारे रहने दो। अगर तुम भूखे रहोगे तो स्वर्ग की विसेनी ऊपर न जाकर एकदम पाताल में चली जायगी। इतना कह कर वह भोजन ले आने को चली गई।

थोड़ी देर बाद वह मुझे खिलाने बैठी। भोजन एकदम रोगी का पथ्य था। ब्राह्मण-भोजन के सामान से वह बिलकुल परे था। बाद में मालूम हुआ कि मेरे आ जाने के बाद उसने अपने हाथ से इसे तैयार किया था। जब से मैं आया तब से उसके आचरण में, उसकी बातचीत में एक नयापन मालूम हो रहा था। जब वह खिलाने बैठी तब वह एकदम स्पष्ट हो गया। कैसे स्पष्ट हो गया यह यदि कोई मुझ से पूछे तो शायद मैं अस्पष्टता से भी उसे न बता सकूँगा। जवाब में मैं केवल इतना ही कहता कि मनुष्य के अंदर जो व्यथा की अनुभूति होती है उसे व्यक्त करने की भाषा नहीं बनाई गई है। राजलक्ष्मी खिला रही थी। पहले की तरह जबरदस्ती अब न थी। अब केवल

व्याकुल अनुनय रह गया था। अब जोर नहीं करती थी, भिक्षा माँगती थी। कड़री दृष्टि से आदमी उस चीज को नहीं देख सकता। हृदय की आँखों से वह देखा जाता है।

मेरा खाना खतम हो गया। राजलक्ष्मी ने पूछा—मैं अब जाऊँ ?

आमंत्रित सज्जन बाहर जुट रहे थे। मैंने कहा—जाओ।

जूठे बरतन उठा कर वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गई। मैं बहुत देर तक बाहर की ओर देखता रहा। मैं सोचता रहा कि राजलक्ष्मी को जैसा छोड़ कर गया वैसी तो अब वह नहीं रही। आनंद ने कहा था कि कल से दीदी उपवास कर रही है, आज तो वह पानी भी नहीं पी सकी और शायद कल भी न जाने कब खायगी। पर असंभव नहीं था। मैं बहुत दिनों से देखता आ रहा हूँ कि उसका धर्म-पिपासु-चित्त कभी किसी कठिन साधना से अलग नहीं रहा। यहाँ वह जब से आई और सुनंदा मिली, तभी से उसकी निष्ठा और भी बढ़ती जा रही है। मैंने उसे थोड़ी देर तक देखा, इतनी ही देर में यह अदाज लगा लिया कि वह जैसे मार्ग पर अग्रसर हो रही है, उस पर उसके निन्दित जीवन की कालिमा का जरा भी असर नहीं पड़ सकता। पर मैं ? मैं तो उसके रास्ते में पहाड़ की तरह बेकार अड़ा हूँ।

लगभग दस बजे, काम-काज खतम करके राजलक्ष्मी मेरे कमरे में चुपचाप आई। आस्ते से उसने रोशनी कम कर दिया। मेरी मशहरी खींच कर वह सोने ही जा रही थी कि मैंने कहा—ब्राह्मण-भोजन तो शायद शाम होने के पहले ही खतम हो गया था। इतनी देर कहाँ हुई ?

पहले वह चौंकी, फिर बोली—मेरा भाग्य ! मैं तो डरती-डरती आ रही हूँ कि कहीं तुम्हारी नींद न टूट जाय पर तुम अभी जाग ही रहे हो, नींद नहीं आ रही है ?

तुम्हारे आसरे जाग रहा था।

मेरे आसरे ! बुलवा क्यों नहीं लिया ? यह कह कर वह मेरे सिरहाने बैठ गई। अपनी आदत के अनुकूल सिर के बालों में उँगली डाल कर फेरने लगी। उसने फिर पूछा—मुझे क्यों नहीं बुलवाया ?

तुम आती ? तुम्हें कितना काम रहता है !

काम रहता है ? पर तुम्हारे बुलाने पर इनकार करना मेरे वश की बात नहीं है।

इसका कोई जवाब नहीं था। मैं जानता था कि मेरे पुकरवा लेने पर न करने की ताकत उसमें नहीं है। लेकिन इस सत्य को सत्य समझने की शक्ति मुझ में कहाँ है ?

राजलक्ष्मी बोली—चुप काहे हो गये ?

सोचता हूँ।

सोचते हो ? क्या सोचते हो ? वह धीरे से मेरे ऊपर झुक कर बोली—मुझ से रंज हो कर घर से चले गये थे ?

तुम्हें कैसे पता कि मैं गुस्सा कर चला गया था ?

राजलक्ष्मी फिर आहिस्ते से बोली—अगर मैं खिसिया कर चली जाऊँ तो तुम नहीं जानोगे ?

मैंने कहा—मैं शायद जान लूँगा।

राजलक्ष्मी ने कहा— तुम तो शायद जानोगे पर मैं निश्चय-पूर्वक जान जाऊँगी।

मैं हँस कर बोला—यही होगा। इस वहम में तुम्हें हरा कर मैं जीतना नहीं चाहता। लक्ष्मी खुद हार जाने से तुम्हारे हारने में मेरी ज्यादा घटी है।

राजलक्ष्मी बोली—मालूम ही है तो कह क्यों रहे हो ?

मैंने कहा—कहाँ कहता हूँ ? बहुत दिनों से मैंने कहना बंद कर दिया है, तुम नहीं जानती ?

राजलक्ष्मी चुप रही। पहले शायद वह सैकड़ों प्रश्न पूछ कर चुप होती, पर इस बार तो वह एकदम चुप रही। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—इस बीच तुम्हें बुखार आ गया था ? तुमने खबर क्यों नहीं दी ?

खबर न देने के कारण बतलाये। पहले तो खबर ले आनेवाला आदमी न था, दूसरे खबर पानेवाले का भी पता न था। मैंने अपनी हालत का ज्ञान उसे कराया। चक्रवर्ती के घर से आज बिदा ले कर आया था। उनकी हालत और सेवा-शुश्रूषा का जिक्र करते हुए मेरी आँखें भर आईं।

राजलक्ष्मी मेरे आँसू पोंछ कर बोली—तो उन्हें कर्ज से छुड़ाने के लिए कुछ रुपए क्यों नहीं भेज देते ?

मैंने कहा— मेरे पास रुपया होता तो जरूर भेज देता पर मेरे पास कहाँ है?

मेरी इस बात से राजलक्ष्मी को मर्मांतक पीड़ा होती थी। आज भी वह दुखी हुई, पर उसका रुपया-पैसा भी मेरा ही है, इसे जोर से प्रकट न कर सकी। पहले वह इस बात पर लड़ जाती थी। वह चुप रही।

आज एक नई बात हुई। उसका शांत और चुप रह जाना मुझे अखरा। थोड़ी देर बाद एक लंबी साँस ले कर वह बैठ गई। रोशनी धीमी थी। इसलिये उसका मुँह तो नहीं देख सका, पर उसके कंठस्वर में काफी परिवर्तन था। राजलक्ष्मी ने कहा—बरमा से तुम्हारी चिट्ठी का जवाब आया है। दफ़्तर का बड़ा लिफाफा है इसलिए आनंद से पढ़वा लिया।

उसमें क्या है?

तुम्हारी अर्जी मंजूर कर ली गई है। बड़े साहब ने लिखा है कि वापस आने पर नौकरी मिल जायगी।

अच्छा?

ले आऊँ चिट्ठी?

रहने दो। कल पढ़ लूँगा।

फिर दोनों ही चुप रहे। मैं चुप्पी भंग करने की बात सोच रहा था, इतने ही में मेरे सिर पर आँसू टपकने लगे। मैंने धीरे से पूछा—दरखास्त का मंजूर हो जाना तो कोई बुरी खबर नहीं है, तुम रोती क्यों हो?

आँचल से आँसू पोंछ कर राजलक्ष्मी बोली—तुम फिर नौकरी करने के लिये परदेश जाने की कोशिश कर रहे हो, पर तुमने मुझे नहीं बताया। मैं तुम्हें रोक लेती?

मैंने कहा—बतला देने पर शायद तुम और उत्साहित करती। मैंने सोचा कि इतनी छोटी बातों के लिये तुम्हारे पास समय कहाँ है?

राजलक्ष्मी चुप हो गई। उच्छ्वास रोकने की लाख कोशिश करने पर भी वह न रोक सकी। कुछ देर तक यही हालत रही। फिर मीठी आवाज से बोली—इसका जवाब दे कर मैं अपने बोझ को और न बढ़ाऊँगी। तुम जाओ, मैं तुम्हें जरा भी न रोकूँगी।

थोड़ी देर बाद वह फिर बोली—अगर मैं तुम्हें यहाँ न ले आती तो शायद

यह मालूम भी न होता कि तुम इतनी दुर्गति में आ गये हो। गंगामाटी का अंधकूप स्त्रियों के लायक हो सकता है, पुरुषों के लायक कभी नहीं। यहाँ का जीवन एकदम बेकार है। तुम्हारी आँखों में मैंने स्पष्टरूप से इसे देख लिया है।

मैंने पूछा—किसी ने दिखला दिया है क्या?

राजलक्ष्मी ने कहा—नहीं। मैंने स्वयं देखा है। तीर्थ-यात्रा करने गई पर देवता के दर्शन नहीं हुए। मुझे तो तुम्हारा लक्ष्य-भ्रष्ट चेहरा ही बराबर दिखलाई पड़ता रहा। मेरे लिये तुमने बहुत बड़ा त्याग किया है, मगर अब नहीं।

अब तक मैं जल रहा था। उसके कंठस्वर से मैं एकदम विह्वल हो गया। मैं बोला—तुम्हें कम त्याग करना पड़ा है राजलक्ष्मी? गंगामाटी तुम्हारे रहने लायक है?

इतना कह कर मैं संकोच से दब गया। लापरवाही से मैंने कह तो दिया पर बुद्धिमती स्त्री से वह बात छिपी न रही। आज मानो उसने मुझे क्षमा कर दिया। जान पड़ता था कि अच्छाई-बुराई पर मानापमान का जाल बुन कर बरबाद करने को समय उसके पास न था। वह बोली—बल्कि मैं ही गंगामाटी के लायक नहीं हूँ—सब लोग यह न समझेंगे। तुम्हें तो यह समझना चाहिये कि मुझे तनिक भी त्याग नहीं करना पड़ा है। लोगों ने जो मेरी छाती पर भारी पत्थर रख दिया था वह आज दूर हो गया। उसके अलावा जन्म भर से तुम्हें चाहती रही हूँ और तुम्हें पा कर त्याग का बदला सौ गुना ज्यादा मिल गया। तुम्हें यह नहीं मालूम?

मैं उत्तर न दे सका। मेरे अंतरतम का कोई जीव जैसे कहने लगा—तुम से भारी भूल हो गई। न समझ कर तुमने बड़ा अविचार किया।

राजलक्ष्मी ने ठीक इसी पर वार किया। उसने कहा—पहले सोचती थी कि तुम्हें यह सब न बतलाऊँगी। तुम्हारे ही हित के लिए, पर आज तो मैं अपने को रोक न सकी। सब से दुःख मुझे इस बात का है कि तुमने यह कैसे सोच लिया कि पुण्य का नशा मुझ पर ऐसा सवार है कि मैं तुम्हारी अवहेलना कर रही हूँ। रंज हो कर चले जाने के पहले तुमने एक बार भी यह नहीं सोचा कि राजलक्ष्मी को तुम से बढ़ कर लाभ की चीज और क्या है?

उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

सांत्वना देने की भाषा समझ में न आई। उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। बाएँ हाथ से राजलक्ष्मी ने आँसू पोंछ लिया और चुपचाप बैठी रही।

बाद में वह बोली—जरा देख आऊँ कि लोगों का भोजन समाप्त हुआ कि नहीं। तुम अब सो रहो।

और वह चुपके से बाहर चली गई। पकड़ कर उसे रख लेता मगर ऐसा नहीं कर सका। फिर वह लौट कर नहीं आई। जब तक मैं सो न सका तब तक यही सोचता रहा कि रोक कर रखने से क्या फायदा होता ? मैंने तो कभी जोर किया नहीं, जोर तो उसी का था। आज यदि वही बंधन खोल कर मुझे मुक्त करके स्वयं मुक्त हो जाना चाहती है तो मैं कैसे रोकूँ ?

सुबह उठा तो राजलक्ष्मी चारपाई पर न थी। रात में वह न आई होगी या बहुत सबेरे उठ कर चली गई होगी। बाहर के कमरे में जरा कोलाहल-सा हो रहा था। रतन गरम चाय केटली से ढाल रहा था। स्टोव पर राजलक्ष्मी सिंघाड़े और कचौरियाँ छान रही थी। वज्रानंद निरीह एवं निरासक्त दृष्टि से उन्हें देख रहे थे। मुझे आते देख कर राजलक्ष्मी ने आँचल खींच लिया। वज्रानंद कहने लगे—आ गये भैया, मैं समझ रहा था कि शायद ये चीजें ठंढी न हो जायँ।

राजलक्ष्मी हँसती हुई बोली—तुम्हारे पेट में जाकर ठंढी हो जाती।

आनंद बोला—साधु-सन्यासियों की कद्र करना सीखिये, बहन। ऐसी बात मत कहिये ?

वज्रानंद फिर मुझ से बोला—तबीयत ठीक नहीं है क्या ? जरा हाथ तो देखूँ।

राजलक्ष्मी घबरा कर बोली—उनकी तबीयत ठीक है। तुम्हारी डाक्टरी की जरूरत नहीं है।

यही जानने वाले तो एक दफे हाथ—

राजलक्ष्मी ने बतलाया—नहीं, हाथ देखने की आवश्यकता नहीं। कहीं तुम साबूदाना खाने को कह दोगे।

मैं बोला—साबूदाना मैं बहुत खा चुका हूँ। मैं इनकी बात कभी न मानूँगा !

तुम्हें भी सुनने का काम नहीं है। इसके बाद सिंघाड़ों और कचौरियों के प्लेट मेरी ओर बढ़ आये। उसने फिर रतन से कहा—अपने बाबू को चाय दो।

वज्रानंद सन्यासी होने के पहले डाक्टरी पास कर चुके थे। वे जल्दी हार मानने वाले न थे। गरदन हिला कर बोले—पर दीदी, आप पर एक उत्तरदायित्व—

राजलक्ष्मी बीच ही में बोल उठी—इनका दायित्व मुझ पर नहीं तो तुम पर है? आज तक इतनी जिम्मेदारी लेकर इन्हें खड़ा किया गया है, उसे सुनते तो शायद दादा के पास डाक्टरी करने नहीं आते।

इसके बाद सब भोज्य पदार्थ एक थाल में रख कर राजलक्ष्मी ने उनकी ओर सरका दिया—लो खाओ, बात रहने दो।

आनंद हैं-हैं करने लगा—इतना भी कोई खाता है!

राजलक्ष्मी बोली—इतना नहीं खाया जायगा तो सन्यासी काहे को बने थे! अन्य भलेमानसों की तरह गृहस्थ बन कर रहते।

आनंद की आँखें छलछला आईं। वह कहने लगा—मैं सन्यासी इसलिए बना हूँ कि आप जैसी बहनें बंगाल में हैं, नहीं तो कसम खाकर कहता हूँ कि गेरुआ वस्त्र बहा कर घर चला जाता। पर, मेरी भी एक प्रार्थना है बहन। परसों ही से तुमने कुछ नहीं खाया है। आज शीघ्र पूजा-पाठ खतम कर देना, इन चीजों को अभी मैंने स्पर्श तक नहीं किया है, अगर आप कहें तो—कह कर वह खाने की चीजें देखने लगा।

राजलक्ष्मी डर-सी गई। वह आँखें फाड़ कर बोली—क्या कहते हो आनंद, कल तो सब ब्राह्मण आये नहीं।

मैंने कहा—तो उनके भोजन कर लेने के बाद ही सही।

आनंद बोला—तो मुझे ही उठना पड़ा। उनका नाम और पता बतलाओ, मैं उन्हें खींच कर ले आऊँगा।

इसके बाद वह उठ जाने के बजाय भोजन करने लगा।

राजलक्ष्मी हँसती हुई बोली—सन्यासी हैं, इसी से देव-ब्राह्मणों में ज्यादा भक्ति है।

इस तरह हम लोग के समाप्त होने में आठ बज गया। मैं बाहर आकर बैठा। शरीर में जरा भी ग्लानि न थी, और दूसरे हँसते-हँसते मन प्रसन्न हो गया। राजलक्ष्मी की कल रात की बातों में और आज की बातों में कोई एकता

नहीं थी। वेदना और अभिमान के वश में ही उसने ऐसा कह दिया था। कल रात के अंधकार में जिस साधारण घटना को इतना बड़ा समझ बैठा था उसी को दिन के प्रकाश में याद कर मैं बहुत शरमाया और कौतुक अनुभव भी हुआ।

आजकल की तरह भीड़-भाड़ न थी। फिर भी खिलाने-पिलाने का क्रम चल रहा था। एक बार फिर चाय का सरंजाम लेकर हम फर्श पर बैठ गये। काम-धाम खतम करके शाम को राजलक्ष्मी भी आ गई।

वज्रानंद बोले—स्वागत है बहन।

राजलक्ष्मी हँसती हुई बोली—जान पड़ता है कि सन्यासी की देव-सेवा आरंभ हो गई है। इसी से तो इतना आनंद है।

आनंद बोला—सच कहती हो बहन, संसार के सभी आनंदों से भजनानंद और भोजनानंद श्रेष्ठ है। शास्त्र कहता है कि सन्यासी के लिये दूसरा ही सर्वश्रेष्ठ है।

राजलक्ष्मी बोली—हाँ, तुम्हारे जैसे सन्यासियों के लिये।

आनंद ने उत्तर दिया—यह झूठ नहीं है बहन। आप गृहस्थिन हैं इसी से इसका मतलब नहीं समझ सकीं। इसी से तो मेरे जैसे त्यागियों का दल मौज कर रहा है और आप तीन दिन से भूखों मर रही हैं।

राजलक्ष्मी ने कहा—मर कैसे रही हूँ भाई? दिन-ब-दिन तो शरीर की श्री-वृद्धि ही हो रही है।

आनंद ने कहा—इसकी वजह है कि उसे होना पड़ता है। उस बार भी आप को देखा था और आज भी देख रहा हूँ, पर मालूम पड़ता है कि यह जैसे दुनिया से अलग चीज है।

राजलक्ष्मी लजा गई।

मैं हँस कर बोला—देखो आनंद की युक्ति-प्रणाली।

आनंद भी हँस कर कहने लगा—युक्ति नहीं, स्तुति है। यही दृष्टि होती तो बरमा में नौकरी की दरख्वास्त देने जाते? अच्छा बहिन, किस दुष्टबुद्धि देवता ने ऐसे अंधे आदमी को तुम्हारे गले मढ़ दिया था? उसे और कुछ दूसरा काम न था?

राजलक्ष्मी हँसने लगी। फिर सिर ठोक कर बोली—देवता का कसूर नहीं भाई, मेरे कपाल का है। वह मुझे दिखला कर बोली—पाठशाला में सब के सरदार थे। सब को पढ़ाने से अधिक मारते ही थे। मैं उस वक्त बोधोदय पढ़ती थी। पुस्तक के बोध की क्या कहूँ, किसी और चीज का बोध हुआ। बच्ची थी, फूल कहाँ मिलता करौंदों का गुच्छा गूँथ कर एक दिन इन्हें वरमाला पहना दी। अब सोचती हूँ कि उसके साथ अगर काँटा भी गूँथ देती!

ईषत् हास्य से उसका मुख चमक उठा।

आनंद ने कहा—कैसा विकट क्रोध है!

राजलक्ष्मी बोली—क्रोध नहीं तो और क्या है! काँटा लाकर कोई और देता तो जरूर गूँथ कर पहना देती। अभी भी मिले तो गूँथ दूँ।

इतना कह कर वह तेजी से बाहर जा रही थी। इतने में आनंद ने पुकार कर कहा—भागती हो!

और कोई काम नहीं है क्या! हाथ में प्याली ले कर उन्हें कलह करने का वक्त है पर मुझे तो नहीं है!

आनंद बोला—मैं भी तुम्हारा ही अनुगत हूँ बहन! परंतु इस अभियोग में शह देने में मुझे लज्जा का अनुभव हो रहा है। अगर ये कुछ कहते तो इन्हें घसीटा भी जाता। मगर एकदम गूँगे आदमी को कैसे फँसाया जाय! यदि फँसा भी दिया जाय तो धर्म इसे कैसे सहेगा!

राजलक्ष्मी ने कहा—इसी से तो मैं जलती रहती हूँ। अच्छा, तो जो धर्म सह सके वही करो। चाय एकदम ठंढी हो गई। मैं एक दफे रसोई घर का चक्कर काटे आती हूँ।

राजलक्ष्मी चली गई।

वज्रानंद ने पूछा—अभी भी बरमा जाने का विचार है भाई! लेकिन बहन तो हरगिज नहीं जायँगी, वह मुझसे कहती थीं।

मुझे मालूम है।

तब फिर!

अकेले ही जाऊँगा।

वज्रानंद बोले—यह आपका अन्याय है। आपको पैसा कमाने के लिये दूसरों की गुलामी करने की क्या आवश्यकता है ?

उनका अभ्यास बनाये रखने के लिये।

यह तो खीस की बात हुई, भाई !

खीस के अलावा क्या और कोई नहीं होता भाई ?

आनंद कहने लगा—अगर हो भी तो दूसरा उसे नहीं समझ सकता।

मेरी राय हुई कि कह दूँ—यह कठिन काम दूसरे क्यों करें, पर वाद-विवाद में पीछे कड़वापन आ जाता है, इसी कारण मैं चुप रहा।

काम खतम करके राजलक्ष्मी कमरे में आई। इस मरतबे वह भलेमानस की तरह स्थिर हो कर बैठ गई। आनंद मुझे लक्ष्य कर कहने लगा—बहन, ये कहते हैं कि कम-से-कम गुलामी का अभ्यास कायम रखने के लिये तो इन्हें विदेश जाना ही चाहिए। मैंने कहा कि यही राय है तो मेरे काम में मदद दीजिये, विदेश जाने के बदले देश की सेवा में ही दोनों भाइयों का जीवन बीत जाय।

राजलक्ष्मी ने कहा—पर ये तो डाक्टरी नहीं जानते आनंद ?

आनंद बोला—मैं क्या सिर्फ डाक्टरी ही करता हूँ। मैं स्कूल और पाठशालाएँ चलाता हूँ। देश में क्या दुर्दशाएँ हो रही हैं उन्हें समझाने की कोशिश करता हूँ।

वे समझ जाते हैं ?

आनंद बोला—आसानी से नहीं समझते। पर, अगर मनुष्य के दिल से कोई बात निकलती है तो चेष्टा बेकार नहीं जाती बहन।

मेरी तरफ तिरछी नजर से देख कर राजलक्ष्मी ने सिर हिला दिया। जान पड़ता है कि उसे विश्वास नहीं हुआ और मेरे बारे में भी उसे संदेह ही हुआ। पीछे कहीं मैं भी न कुछ कह दूँ।

आनंद पूछ बैठा—सिर क्यों हिलाया ?

राजलक्ष्मी पहले तो हँसने की चेष्टा करने लगी, पर, फिर मधुर स्वर में बोली—देश की दुर्दशा मैं भी जानती हूँ आनंद। पर अकेले तुम्हारे प्रयत्न से क्या होगा भाई ? फिर मेरी ओर दिखा कर बोली—और ये मदद देने जायँगे ?

तब हो चुका। मेरी ही तरह तुम्हारे दिन भी इन्हीं की सेवा में कटने लगेंगे। और वह हँस पड़ी।

आनंद भी हँस कर बोला—इन्हें ले जाने की आवश्यकता नहीं है बहन। ये तुम्हारे ही आँखों की मणि बने रहें। एक मनुष्य की इच्छा शक्ति इतनी बड़ी होती है कि वामनावतार की तरह—बाहर से देखने में छोटा, पर यदि पैर फैला दे तो सारे संसार को ढँक ले।

वामनावतार की उपमा से राजलक्ष्मी का चित्त कोमल हो गया। वह चुप रही।

आनंद बोला—शायद आप ही की बात ठीक हो, मैं कुछ नहीं कर सकता। पर, एक काम तो जरूर कर सकता हूँ, दुःखियों का दुःख तो कम कर सकता हूँ।

राजलक्ष्मी आर्द्र होकर बोली—यह तो मैं तुम्हें पहले-पहल देख कर जान गई थी, आनंद।

इस बात पर आनंद ने ध्यान नहीं दिया। वह फिर कहने लगा—मुझे भी आप ही लोगों की तरह किसी चीज की कमी न थी। पिता की संपत्ति जरूरत से ज्यादा है। मुझे उससे कोई मतलब नहीं। दुखी देश में अगर सुख-भोग की लालसा भी न रोक सकूँ—तो बहुत है।

रतन आ कर रसोई तैयार होने की खबर दे गया।

राजलक्ष्मी उसे आसन लगाने का आदेश दे कर बोली—आज जल्दी खा लो आनंद, मैं बहुत थक गई हूँ।

वह थक जरूर गई थी, पर थकने की दुहाई कभी न देती थी। हम लोग चुपचाप उठ कर बैठ गये। आज सबेरे हम लोगों का दिन हँसी-दिल्लगी से शुरू हुआ था। शाम की मजलिस भी इसी तरह शुरू हुई, मगर उसका अंत मलिनता में हुआ। जब हम लोग भोजन करने चले तो कोई कुछ न बोला।

दूसरे दिन सबेरे वज्रानंद जाने की तैयारी करने लगा। और कभी अगर इस बात की चर्चा होती तो राजलक्ष्मी आपत्ति करती थी। दिन अच्छा नहीं है, सायत नहीं है, आदि कह कर कल-परसों अवश्य कर देती। पर आज वह

कुछ न बोली। जब आनंद जाने लगा तब उसने मीठे स्वर में पूछा—अब न आओगे, भाई ?

मैं नजदीक ही में था। देखा कि सन्यासी की आँखों की दीप्ति अस्पष्ट हो गई, वह हँसने की चेष्टा करता हुआ बोला—आऊँगा क्यों नहीं बहन ! अगर जिंदा रहा तो बीच-बीच में आकर उत्पात अवश्य खड़ा करता रहूँगा।

सच ?

अवश्य।

लेकिन हम लोग जल्दी ही चले जायँगे। जहाँ हम लोग रहेंगे वहाँ भी आओगे ?

हुक्म मिलने पर क्यों नहीं आऊँगा ?

राजलक्ष्मी बोली—आना। तुम अपना पता मुझे लिख दो। तुम्हें अवश्य पत्र लिखूँगी।

कागज-पेंसिल ले कर आनंद ने पता लिख दिया। सन्यासी हो कर उसने हाथ जोड़ कर हम लोगों को प्रणाम किया। रतन ने आ कर पद-धूलि ली। उसको आशीर्वाद दे कर वह धीरे-धीरे मकान के बाहर हो गया।

१५

जिस दिन सन्यासी वज्रानंद अपना ओषधियों का बक्स और केनविस का बेग ले कर चला गया उस दिन घर का सारा आनंद ही खतम हो गया। मुझे तो ऐसा लगा कि उसके चले जाने से वह जगह निरानंद से भर गई। उसके अंतर्धान होते ही जलाशय का चंचल जल एकदम शांत हो गया। इसी तरह छः-सात दिन बीत गये। राजलक्ष्मी घर से बाहर ही रहती थी। कहाँ जाती थी, क्या करने जाती थी यह मैं न जानता था और पूछने की कोशिश भी नहीं करता था। शाम को एक बार मुलाकात होती तो वह या तो व्यस्त रहती या गुमाश्ता जी से बातचीत करती रहती थी। अकेले रहते-रहते आनंद की याद आती थी। खयाल आता कि वह अकस्मात् आ जाय। मैं ही खुश होता, ऐसी बात तो नहीं है। शायद राजलक्ष्मी भी खुश होती। मुझे ऐसा ही लगने लगा। एक दिन जिन्हें मिल जाने की आकांक्षा से बेचैन रहते थे, आज उन्हें ही टूट

जाने की बड़ी श्रावश्यकता है। एक बार कोई श्रा कर बीच में खड़ा हो जाय मेरी जान बच जाय।

रतन एक-ब-एक श्राया। वह अपनी हँसी नहीं रोक सकता था। राजलक्ष्मी घर पर नहीं थी। अब उसे डरने की भी जरूरत न थी। फिर वह चारो ओर देख कर बोला—श्रापने नहीं सुना?

मैंने पूछा—नहीं, क्या बात है?

रतन कहने लगा—दुर्गामाता की कृपा से मा की बुद्धि श्राखिर तक बनी रहे। दो ही चार दिन में हम लोग यहाँ से चल रहे हैं।

कहाँ?

रतन एक बार फिर दरवाजे की ओर देख कर बोला—यह अभी ठीक-ठीक नहीं मालूम है। पटना या काशी—इसके अलावा मा जी का मकान ही कहाँ है?

मैं चुप रहा। इतनी बड़ी बात पर मुझे चुप देख कर उसे ऐसा मालूम हुश्रा कि मैं उसकी बातों पर विश्वास नहीं कर रहा हूँ। इसीलिए गला दबा कर वह कहने लगा—मैं सच कहता हूँ। हमारा चलना तय हो चुका है। अह, तब तो जान बच जाय। ठीक है न?

मैंने कहा—हाँ।

रतन खुश होकर कहने लगा—संतोष कर दो-चार दिन और तकलीफ कर लीजिये। ज्यादा-से-ज्यादा एक सप्ताह की बात है। इससे अधिक नहीं। गंगामाटी का सारा इंतजाम मा कुशारी महाशय से ठीक कर चुकी हैं। अब केवल सामान बाँध कर दुर्गा-दुर्गा कह कर चल देना ही बाकी है। हम लोग शहर के रहने वाले ठहरे, हम लोगों का मन यहाँ कैसे लगेगा? वह प्रसन्नता से बाहर चला गया।

रतन से कोई बात छिपी न रहती थी। वह मुझे भी राजलक्ष्मी का एक नौकर ही समझता था। उसे मालूम था कि किसी के मतामत की श्रावश्यकता नहीं रहती, मालकिन की इच्छा ही सर्वोपरि रहती है।

रतन जिस बात का पता दे गया था वह स्वयं उसका मतलब नहीं समझता था। लेकिन उसके गूढ़ वाक्य का श्रर्थ परिस्फुटित हो गया। राजलक्ष्मी श्रपने

को लेकर संसार में खेल रही थी। एक दिन मेरी जरूरत हुई। उसे रोकने की क्षमता मुझमें नहीं थी। वह मुझे बड़ा बना कर नहीं ले आई थी। मैं स्वयं झुक कर आया था। मैं सोचता था कि उसने ठीक मेरे लिए स्वार्थ-त्याग किया है। पर, यह बात नहीं थी। इतने दिन तक राजलक्ष्मी के स्वार्थ का केंद्र न देखने के कारण ही मैं ऐसा सोचता था। धन-अर्थ-ऐश्वर्य उसने बहुत कुछ छोड़ा है, पर मेरे ही लिए? कूड़े की ढेर की तरह इन सबों से भी तो उसका रास्ता रुका रहा है। राजलक्ष्मी के नजदीक मुझमें और मुझे प्राप्त कर लेने में कितना अंतर है, यह मुझे आज मालूम हुआ। उसका चित्त यहाँ सब कुछ अर्जन करके भी अग्रसर हुआ। उस राह में खड़ा होने का अधिकार मुझे नहीं है। कूड़ा-करकट की तरह अब मुझे अलग ही पड़ा रहना होगा।

दूसरे दिन सबेरे मालूम हुआ कि चालाक रतन जो कुछ कह गया था वह एकदम झूठ नहीं था। गंगामाटी का सब इंतजाम ठीक हो गया था। राजलक्ष्मी से ही यह सुना। सबेरे पूजा-पाट खतम करके वह बाहर नहीं गई बल्कि मेरे पास बैठ कर धीरे से बोली—परसों अगर इसी समय हम लोग चलें त साँइथियाँ में पश्चिम की गाड़ी मिलेगी न?

मैंने कहा—मिल सकती है।

राजलक्ष्मी बोली—यहाँ का सब इंतजाम हो चुका है। कुशारी महाशय जिस तरह सब इंतजाम करते थे उसी तरह करेंगे।

मैं बोला—ठीक हुआ।

राजलक्ष्मी चुप रही। जान पड़ा कि वह ठीक से प्रश्न शुरू न कर सकी थी। आखिर में बोली बंकू को लिख चुकी हूँ कि गाड़ी रिजर्व करा कर स्टेशन पर हाजिर रहना। वह वहाँ रहे तब तो।

मैंने कहा—रहेगा क्यों नहीं। तुम्हारा हुक्म नहीं उठावेगा।

राजलक्ष्मी ने कहा—जहाँ तक हो सकेगा टालेगा तो नहीं, फिर भी—तुम हमारे साथ वहीं चलोगे?

यह मैंने नहीं पूछा कि कहाँ जाना होगा। बोला—अगर मेरी जरूरत समझो तो चल सकता हूँ।

राजलक्ष्मी चुप रही। फिर वह घबरा कर बोली—तुम्हारे लिए अब तक चाय नहीं आया है!

मैंने कहा—वह काम में फँसा जान पड़ता है।

चाय लाने का समय बीत चुका था। और दिन वह बिगड़ कर नौकरों पर तूफान बरसा देती, पर इस बार तो लज्जा से मर गई और चुपचाप कमरे से बाहर चली गई।

जाते समय सब प्रजाजन आये। डोम की लड़की मालती को मैं देखना चाहता था, पर उसने दूसरे गाँव में विवाह कर गृहस्थी जमा ली थी, इसलिये उसे देख न सका। पता लगा कि वह अपने पति के साथ सुख से है। कुशारी बंधु सपरिवार रात रहते ही आ गये थे। जुलाहे का झगड़ा तय हो जाने से दोनों एक हो गये थे। मुझे विस्तारपूर्वक यह जानने का कुतूहल नहीं हुआ कि राजलक्ष्मी ने कैसे सब ठीक-ठाक कर दिया है। आज भी मुझे नहीं मालूम है। उन लोगों के चेहरे से यही जान पड़ता था कि अब अनबन की ग्लानि किसी के चेहरे पर नहीं थी।

सुनंदा भी आई। बच्चों के साथ उसने मुझे प्रणाम किया। वह बोली—मैं जानती हूँ कि हम सब को आप भूल नहीं जायँगे, इसलिए प्रार्थना करना भी बेकार ही है।

मैंने कहा—तो मुझ से और किस बात के लिये प्रार्थना करोगी बहन!

वह बोली—आप मेरे बच्चों को आशीर्वाद दें।

मैंने कहा—यही प्रार्थना तो बेकार की है, सुनंदा। मैं नहीं समझता कि तुम जैसी मा के बच्चों को क्या आशीर्वाद दिया जाय।

राजलक्ष्मी बगल से ही जा रही थी। यह बात सुन कर वह कमरे में आ गई। सुनंदा की ओर देख कर बोली—इस बच्चे को आशीर्वाद दो कि बड़ा हो कर तुम्हारे ही जैसा मन पावे।

मैं हँसकर बोला—अच्छा आशीर्वाद है। तुम्हारे बच्चे से लक्ष्मी मजाक करना चाहती है सुनंदा।

बीच ही में राजलक्ष्मी बोल उठी—मजाक करूँगी अपने ही बच्चे के साथ और वह भी चलने के समय!

कुछ देर तक चुप रह कर वह बोली—मैं भी इनकी मा की तरह हूँ। मैं भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि इन्हें यही वरदान दें। इससे बड़ा और कोई वर मैं नहीं चाहती।

मैंने देखा कि उसकी आँखें भर आईं। वह चुपचाप कमरे से बाहर चली गई।

आँखों में आँसू भर कर हम लोग गंगामाटी से चले। और तो और, रतन भी घूर-घूर कर आँखें पोंछता चला। वहाँ के रहने वालों ने फिर आने का बहुत अनुरोध किया। सब ने उन्हें आने का वचन दिया। सिर्फ मैं ही वचन न दे सका। मैंने निश्चित रूप से समझ लिया था कि अब मेरा लौटना किसी तरह भी संभव नहीं था। बार-बार उस छोटे से गाँव को फिर-फिर कर देखने लगा। उस वक्त मेरे दिल में बार-बार यही खयाल आया कि अपरिमेय माधुर्य और वेदना से परिपूर्ण एक वियोगांत नाटक की जवनिका अभी-अभी गिरी है। नाट्य-शाला का दीप बुझ गया। अब मुझे गहन अंधकार से होकर राह ढूँढ़ निकालनी होगी। जनता के बीच जिस मन को होशियारी से रखने की आवश्यकता है वही मन नशे की खुमारी में आच्छन्न हो गया।

शाम के बाद हम लोग साँइथिया पहुँचे। बंकू राजलक्ष्मी के किसी आदेश की अवहेलना न कर सका था। सारा प्रबंध कर वह खुद स्टेशन पर खड़ा था। ठीक समय पर गाड़ी आ गई। सब सामान रखवा दिया गया। रतन नौकरों के डब्बे में बैठा दिया गया। बंकू अपनी विमाता को लेकर गाड़ी में बैठा। मेरे साथ घनिष्ठता दिखलाने की कोशिश उसने न की। अब वह घर-द्वार, रुपये-पैसे लेकर विशिष्ट आदमियों में गिना जाने लगा था। बंकू बड़ा विचक्षण आदमी है। सभी हालतों को देख कर चलना उसे आता था। संसार में यह विद्या जिसके पास है, उसे कभी दुख नहीं उठाना पड़ता।

पश्चिम की गाड़ी छूटने में पाँच मिनट की देर थी। मेरी गाड़ी—यानी कलकत्ता जाने वाली गाड़ी रात के पिछले पहर आने वाली थी। मैं चुपचाप एक किनारे खड़ा था। गाड़ी की खिड़की से मुँह काढ़ कर राजलक्ष्मी ने मुझे बुलाया। मैं अंदर गया। उसने हाथ पकड़ कर मुझे अपने पास बैठा लिया। वह बोली—तुम जल्दी ही बरमा चले जाओगे? जाने के पहले एक बार मिल नहीं लोगे?

मैंने कहा—आवश्यकता हो तो मिल सकता हूँ।

राजलक्ष्मी ने धीरे से कहा—दुनिया जिसे जरूरत कहती है वह नहीं। सिर्फ एक दफे और देखना चाहती हूँ। आओगे ?

आऊँगा।

कलकत्ता पहुँच कर पत्र लिखोगे ?

लिखूँगा।

गाड़ी छूटने की सीटी बजी। गार्ड ने हरी झंडी दिखला दी। राजलक्ष्मी ने झुक कर चरण-स्पर्श किया। मेरे उतरते ही गाड़ी छूट गई। अँधेरी रात थी। कुछ नजर नहीं आता था। प्लैटफार्म के मिट्टी के तेल के लैंपों के क्षीण प्रकाश में खिड़की के बाहर एक नारी-मूर्ति झाँक रही थी।

× × ×

कलकत्ता आने पर मैंने पत्र लिख दिया। उसका जवाब भी आया। यहाँ कोई ज्यादा काम नहीं था। जो था वह पंद्रह दिन में खतम हो गया। परंतु, वादे के अनुसार राजलक्ष्मी से भी मिल लेना होगा। दो हफ्ते और बीत गये। मन में सोचता था कि कहीं जाने पर जिद न करे या जल्दी आने न दे। वह काशी में थी। उसका पता मुझे मालूम था। दो-तीन पत्र आ चुके थे। मेरे वादे की ओर उसने मेरा ध्यान नहीं आकर्षित कराया। कराना भी नहीं चाहिए था। मन-ही-मन सोचने लगा कि शायद मैं भी मुँह खोल कर उसे यह नहीं लिख सकता कि एक बार आकर भेंट कर जाओ। यह सोच कर मैं अधीर हो उठा। वह मेरे जीवन के साथ इस तरह जकड़ी हुई थी। घड़ी देख कर पता लगाया कि अभी भी गाड़ी मिल सकती थी। सब सामान डेरे पर छोड़ कर मैं निकल पड़ा।

और चीजों को वैसे ही रहने दिया। जो मुझ से ज्यादा मेरी आवश्यकताओं को जानती है उसके पास जरूरतों का बोझा ले कर जाना अच्छा नहीं लगा। रात को गाड़ी में नींद नहीं आई। आँखें बंद किये न जाने कितनी कल्पनाएँ मन में आने लगीं। बहुत तो विश्रृंखल थीं, पर मधु से भरी हुईं। धीरे-धीरे सवेरा हुआ। दिन चढ़ने लगा। लोगों के उतरने-चढ़ने, बोलने-पुकारने, दौड़-

धूप, धौल-धप्प आदि का अंत नहीं रहा। धूप के कारण कुहासे का कहीं भी अंत नहीं रहा। मेरी आँखें उस समय भी वाष्पाच्छन्न थीं।

गाड़ी लेट हो जाने के कारण मैं राजलक्ष्मी के मकान पर देर से पहुँचा। बैठक में एक बूढ़े ब्राह्मण हुक्का पी रहे थे। उन्होंने सिर उठा कर पूछा—क्या चाहते हैं?

मैं एक-ब-एक नहीं बतला सका कि क्या चाहता था। जरा ठहर कर बोला—रतन है?

नहीं, वह बाजार गया है।

ब्राह्मण सज्जन थे। मेरे धूलि भरे मुँह को देख कर उन्होंने दया के स्वर में कहा—बैठिए। वह जल्दी ही आ जायगा। आपको उसी से जरूरत है?

मैं एक चौकी पर बैठ गया। उनके प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर मैंने पूछा—बंकू बाबू हैं?

हैं क्यों नहीं?

इसके बाद उन्होंने एक नये नौकर से बंकू बाबू को बुलाने के लिए कह दिया।

बंकू आया। पहले तो मुझे देख कर विस्मित हुआ। इसके बाद मुझे अपने बैठक में ले जा कर पूछा—हम लोग समझते थे कि आप बरमा चले गये।

हम लोग का मतलब मैं नहीं पूछ सका। बंकू ने पूछा—आपका सामान अभी गाड़ी ही में है क्या?

नहीं, मेरे साथ सामान कुछ भी नहीं है।

नहीं लाये हैं? रात की गाड़ी से लौट जाना है क्या?

मैंने कहा—हो सका तो ऐसा ही सोच कर आया हूँ।

बंकू बोला—हाँ, तब इतने समय के लिए सामान की जरूरत ही क्या थी?

नौकर आया। धोती-गमछा, पानी, सब कुछ दे गया—मेरे पास कोई आया नहीं।

भोजन की बुलाहट हुई। चौके में जाकर देखा केवल मेरे और बंकू के लिए आसान था। दक्षिण का दरवाजा खोल कर राजलक्ष्मी ने मुझे प्रणाम किया। पहले तो मैं उसे पहचान भी न सका। जब पहचाना तब आँखों तले अँधेरा

छा गया। यह खयाल आया कि यहाँ कौन है और कैसे मैं मर्यादा के साथ भलामानस की तरह यहाँ से जा सकूँगा।

राजलक्ष्मी ने पूछा—गाड़ी में तकलीफ तो नहीं न हुई ?

इसके अलावा वह और क्या कह सकती थी। मैं आसन पर बैठ कर एकदम चुप रहा फिर बोला—नहीं, कुछ तकलीफ नहीं हुई।

इस बार उसे गौर से देखा। कोई आभूषण न था। काली किनारी की सादी धोती पहने हुई थी। लंबे-लंबे काले केश भी गायब हो गए थे। ललाट के नीचे तक आँचल खींचा हुआ था। उपवास और कठोर आत्म-निग्रह से वह ऐसी हो गई थी कि एक ही महीने में जान पड़ा, वह मुझ से दस साल ज्यादा बड़ी है।

भात अटक रहा था। किसी तरह उन्हें जबरदस्ती निगलने लगा। मेरे मन में यही खयाल आया कि इस नारी के जीवन में सदा के लिए विलुप्त हो जाऊँ और यह आज मेरे कम खाने की आलोचना न करे।

खा लेने के बाद राजलक्ष्मी बोली—बंकू कह रहा था कि तुम आज ही रात की गाड़ी से वापस चले जाओगे।

हाँ।

कहीं ऐसा भी होता है ! तुम्हारा जहाज उस इतवार को छूटेगा न ?

इस कहे या न कहे से विस्मित हो कर वह लज्जा से गड़ गई। थोड़ी देर बाद अपने को सम्हाल कर धीरे से बोली—अभी तो उसमें भी तीन दिन की देर है !

मैं बोला—हाँ, पर और काम भी तो है।

राजलक्ष्मी फिर कुछ बोलना चाहती थी ! मगर चुप रह गई। शायद मेरी थकावट या अस्वस्थ हो जाने से थोड़ी देर चुप रह कर बोली—मेरे गुरुदेव आये हैं।

मैं समझ गया कि बाहरवाले व्यक्ति ही गुरुदेव थे। उन्हीं को दिखलाने के लिये वह मुझे तब की काशी खींच ले आई थी। शाम को उनके साथ भी बातचीत हुई। आदमी अच्छे थे। धर्म में उनकी निष्ठा थी। उदारता की भी कमी न थी। वे हमारी सभी बातें जानते थे। उन्होंने मुझे उपदेश दिया, पर

वे न तो उग्र थे और न चोट पहुँचानेवाले ही। उनकी सब बातें मुझे याद नहीं हैं पर वे इतना कहते थे कि राजलक्ष्मी का रूप परिवर्तन होगा। दीक्षा के संबध में भी वे प्रचलित रीति को ही मानते थे। उनका विश्वास था कि जिसका पाँव फिसल चुका है, उसी को, और की अपेक्षा, ज्यादा गुरू की आवश्यकता रहती है।

फिर उन्होंने अपनी शिष्या की भक्ति, निष्ठा और धर्म-भीरुता की प्रशंसा की। बात वास्तव में सच्ची थी। मैं इसे स्वयं भी कम न जानता था। पर, मैं चुप रहा।

मेरे जाने का समय हुआ। दरवाजे पर घोड़ा-गाड़ी लग गई। मैं गुरुदेव से विदा ले कर गाड़ी में बैठ गया। राजलक्ष्मी भी सड़क तक आई। गाड़ी में झुक कर मेरे पैरों पर सिर पटक दिया पर उस समय भी कुछ न बोली। शायद कुछ कहने की शक्ति उसमें न थी। यह अच्छा ही हुआ कि अँधेरे में वह मेरा मुँह न देख सकी। आखिरी बिदाई भी निःशब्द ही खतम हुई। गाड़ी चली। मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे। मैंने सर्वांतःकरण से कहा—तुम सुखी होओ, शांत होओ, तुम्हारा लक्ष्य ध्रुव हो। मैं तुम से ईर्ष्या न करूँगा। लेकिन जिस अभागे ने सब कुछ त्याग कर नौकरी छोड़ दी थी, इस जिंदगी में उसे अब किनारा न मिलेगा।

खड़खड़ाती-हड़हड़ाती गाड़ी चली। बिदा के समय उस दिन जो बातें मन में आई थीं, वे ही फिर जाग उठीं। सोचा कि एक जीवन-नाटक का अत्यंत स्थूल और साधु उपसंहार हुआ है। यदि इतिहास में यह लिख दिया जाय तो इसकी ज्योति धूमिल न होगी। श्रद्धा और विस्मय के साथ सिर झुकाने वाले पाठकों की भी कमी नहीं होगी। अब मेरी आत्म-कहानी किसी को भी सुनाने को नहीं है। मैं दूसरी जगह चला। मेरी ही तरह जो पाप में डूबी है, जिसे निस्तार पाने का रास्ता नहीं है, उसी अभया के आश्रम में। मन-ही-मन बोला—तुम्हारा पुण्य-जीवन उन्नत से उन्नततर है, धर्म की महिमा उज्ज्वल से उज्ज्वलतर हो। मैं अब क्षोभ नहीं करूँगा। अभया की चिट्ठी आई। स्नेह, प्रेम और करुणा से अटल अभया ने, बहन से ज्यादा स्नेहमयी विद्रोहिणी अभया ने, मुझे आमंत्रित किया था। आने के समय छोटे दरवाजे पर जो उसके सजल नेत्र देखे थे, वे

याद आ गये और साथ-ही-साथ समस्त अतीत एवं वर्तमान का इतिहास भी आ गया। चित्त की शुद्धता, बुद्धि की निर्भरता और आत्मा की स्वाधीनता से उसने मेरे सारे दुखों को तोप लिया।

गाड़ी रुक गई। देखा तो स्टेशन आ गया था। मैं उतर कर खड़ा हो गया। कोच-बाक्स से एक आदमी और भी उतरा। उसने पैर छू कर मुझे प्रणाम किया।

कौन रतन !

बाबू, अगर परदेश में चाकर की जरूरत हो तो मुझे खबर दीजियेगा। जब तक जिंदा रहूँगा सेवा में कोई कमी न होगी।

गाड़ी की बत्ती का प्रकाश उसके मुँह पर पड़ रहा था। मैं विस्मित हो कर बोला—तू रोता क्यों है !

रतन ने जवाब नहीं दिया। जल्दी से आँखें पोंछ कर आलोपित हो गया।

आश्चर्य, यह वही रतन है।

श्रीकान्त

चौथा पर्व

इतने दिनों तक जीवन उपग्रह की भाँति बीत गया। जिसको केन्द्र बनाकर घूमता रहता हूं उसके पास तक पहुँचने का न तो मुझे अधिकार ही मिला और न तो दूर जाने की अनुमति ही मिली। पराधीन नहीं हूँ, साथ ही अपने को स्वाधीन कहने का बल भी नहीं है। काशी से लौटने वाली रेलगाड़ी में बैठकर बारबार मैं इसी बात पर विचार कर रहा था। सोच रहा था, मेरे ही भाग्य में बार बार ऐसी घटना क्यों घटती रहती है? मृत्यु काल तक क्या अपना कहने योग्य कुछ भी न पा सकूँगा? क्या इसी प्रकार मेरा सारा जीवन बीत जायगा? लड़कपन की याद आ गई। दूसरे की इच्छा से दूसरे के घर में वर्ष के बाद वर्ष टिककर इस शरीर को किशोरावस्था से यौवनावस्था की तरफ बढ़ाता रहा, किन्तु मन को न मालूम किस रसातल की तरफ खदेड़ता रहा। आज अनेक पुकार मचाने पर भी उस बिदा हुए मन का कुछ भी पता नहीं चलता, यद्यपि कभी-कभी किसी क्षीण कण्ठ का अनुसरण कानों में आ लगता है, तथापि असन्दिग्ध रूप से नहीं पहचान पाता कि वह अपना है, विश्वास करने में डर लगता है।

यह समझकर आया हूं कि आज राजलक्ष्मी मेरे जीवन में मृत है। विसर्जित प्रतिमा के अन्तिम चिह्न तक को भी नदी के किनारे खड़े होकर अपनी आखों से देखकर लौटा हूं,—आशा करने का, कल्पना करने का अपने को धोखा देने का कोई भी सूत्र छोड़कर नहीं आया हूं। उस तरफ का सब शेष हो गया है, निश्चिह्न हो गया है। किन्तु यह शेष कितना शेष है, यह किससे कहूं और कहूँ ही क्यों?

किन्तु थोड़े ही दिनों की तो बात है। कुँवर साहब के साथ शिकार खेलने गया। दैवात् पियारी का गाना सुनने बैठा तो भाग्य में कुछ ऐसा मिला, जो जिस तरह आकस्मिक था उसी तरह अपरिसीम भी। अपने गुणों से नहीं पाया, अपनी त्रुटियों से खोया भी नहीं, तो भी आज स्वीकार करना पड़ा कि मैंने खो दिया,

मेरे संसार में केवल क्षति ही रह गयी। जा रहा हूँ कलकत्ता को, पर वासना यह है कि किसी दिन बर्मा पहुँचूँगा। किन्तु यह तो मानो सर्वस्व खोकर जुआरी का घर लौटना है। घर का चित्र अस्पष्ट, अयथार्थ है, केवल पथ ही सत्य है। मालूम हो रहा है मानो इस पथ पर चलने का फिर कभी अन्त न होगा।

"अरे ! यह तो श्रीकान्त है !"

गाड़ी किसी स्टेशन पर आकर रुकी है इसका खयाल भी मुझे नहीं था। देखा कि, मेरे गाँव के बाबा, रांगा दीदी और सत्रह अठारह साल की एक लड़की, सभी गर्दन, सिर और बगल में गठरी मोटरी लिये प्लैटफार्म पर दौड़ते हुए अचानक मेरी खिड़की के सामने आकर रुक गये।

बाबा ने कहा,—'ओः कितनी जबर्दस्त भीड़ है। जहाँ एक सुई खपने तक की भी जगह नहीं है वहाँ तीन-तीन भरे पड़े हैं। तुम्हारा कमरा तो खूब खाली है, चढ़ आऊँ ?'

'चढ़ आइए', कहकर मैंने दरवाजा खोल दिया। वे तीनों ही हाँफते-हाँफते गाड़ी पर चढ़ गये और अपना सभी सामान नीचे उतार रखा। बाबा ने कहा, "शायद यह अधिक किराये वाला कमरा है और किराया तो दण्ड में नहीं देना पड़ेगा ?" मैंने कहा, 'नहीं, मैं गार्ड से कह देता हूँ।"

गार्ड से कहकर, अपना कर्तव्य ठीक से समाप्त कर जब मैं लौटा तो वे आराम से निश्चिन्त बैठे थे। गाड़ी चलने लगी तो रांगा दीदी ने मेरी तरफ नजर डाली और चौंक कर कहा, "तेरा स्वरूप यह कैसा हो गया है श्रीकान्त ? यह तो मुंह सूख कर एक दम रस्सी सा हो गया है, इतने दिन तू कहां था ? जो हो, अच्छी तरह तो था, वही जो तू गया, तब से चिट्ठी भी क्या नहीं लिखनी चाहिए ? सभी सोच में मरे जा रहे हैं।"

इस तरह के प्रश्नों के जवाब की प्रत्याशा कोई नहीं करता, जवाब न मिलने पर दोषी भी नहीं समझता।

बाबा ने बताया कि वे सपत्नीक तीर्थ करने के लिए गया धाम आये थे, और यह लड़की उनकी बड़ी साली की नातिन है, बाप हजार रुपया गिन देने को तैयार है, तो भी अब तक कोई रुचि के अनुसार पात्र नहीं जुटा। साथ छोड़ने को राजी नहीं थी, इसी लिए साथ लाना पड़ा ! "पूंटू, पेड़े की हांडी खोल दो तो। माल-

किन, पूछता हूँ कि दही का बर्तन भूल तो नहीं आई। दो, शालके पत्ते पर सजाकर रख दो तो, दो तीन पेड़े, थोड़ा दही,—ऐसा दही तुमने कभी न खाया होगा भैया, यह मैं कसम खाकर कह सकता हूँ। नहीं नहीं, लोटे के जल से पहले हाथ धो डालो पूंटू, किसी ऐसे तैसे को तो नहीं देना है, ऐसे लोगो को किस तरह देना चाहिए यह सीखो।"

पूंटू ने आदेशानुसार यत्नपूर्वक कर्तव्य का पालन किया। अतएव, असमय में, ट्रेन में ही बिना मांगे दही पेड़े मिल गये। खाने के लिए बैठकर सोचने लगा, कि मेरे भाग्य में ही जितनी अनहोनी घटनाएं हैं होती रहती हैं। कहीं ऐसा न हो कि इस बार मैं ही पूंटू के लिए हजार रुपये वाला पात्र न मनोनीत कर लिया जाऊँ। पहली बार ही उन लोगों को यह खबर मिल गई थी कि मैं बर्मा में अच्छी नौकरी करने लगा हूँ।

रांगा दीदी अत्यन्त स्नेह करने लगीं और आत्मीय समझ कर पूंटू भी एक घंटे में ही घनिष्ठ हो गई, क्योंकि मैं कोई पराया तो नहीं रहा।

लड़की अच्छी है। साधारण भद्र गृहस्थ घर की, गोरी न होने पर भी देखने में अच्छी ही थी। ऐसी हालत हुई कि बाबा उसके गुणों का वर्णन समा प्त न कर पा रहे थे। लिखने पढ़ने के बारे में रांगा बहिन ने कहा 'यह ऐसी सजावट के साथ चिट्ठी लिख सकती है कि तुम लोगों के आज कल के नाटक उपन्यास भी हार मान जाते हैं। उस मकान की नन्दरानी को एक ऐसी चिट्ठी लिख दी थी कि दामाद सात दिनों के बदले पन्द्रह दिनों की छुट्टी लेकर आ गया।

राजलक्ष्मी की चर्चा किसी ने इशारे से भी नहीं की। मानो उस तरह की कोई घटना हुई थी, यह किसी को याद तक नहीं।

दूसरे दिन गांव के पास स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो मुझे उतर जाना पड़ा। शायद उस समय दिन के दस बजे रहे होंगे। समय पर स्नानाहार न करने से पित्त चढ़ जाने की आशंका से, वे दोनों ही व्याकुल हो उठे।

घर पहुँचने पर मेरे प्रति आदर यत्न की सीमा न रही। पांच सात दिनों के अन्दर ही गांव में किसी को इसमें सन्देह नहीं रहा कि पूंटू का वर मैं ही हूँ। यहाँ तक कि पूंटू को भी नहीं।

बाबा की इच्छा थी कि आगामी वैशाख में ही यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जाय।

पूंटू के जो रिश्तेदार जहां थे, उनको बुला लेने की भी बात उठी। रांगा दीदी ने पुलकित चित्त से कहा, 'मजा देख रहे हो, यह कोई भी पहले से नहीं बता सकता कि कौन किसके लिए तैयार करके रखा हुआ है।'

मैं पहले उदासीन हो उठा, फिर चिन्ता में पड़ा, उसके बाद डरने लगा। मैंने स्वयं अपनी स्वीकृति दी है या नहीं दी है, इस सम्बन्ध में क्रमशः अपने ही ऊपर मुझे सन्देह होने लगा। मामला ऐसा आ खड़ा हुआ कि पीछे कहीं कोई दुर्घटना न हो जाय, इस आशंका से नहीं कहने का साहस ही न रहा। पूंटू की मां तो यहीं ही थीं। एक रविवार को एकाएक उसके पिता जी भी दर्शन दे गये। मुझे कोई जाने भी नहीं देता, आमोद प्रमोद और हंसी मजाक भी चलने लगा, पूंटू मेरी ही गर्दन का बोझ बनेगी, केवल कुछ ही दिनों की देर है—क्रमशः ऐसे ही लक्षण चारों तरफ स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। जाल में जकड़ा जा रहा हूँ—मनको शान्ति भी नहीं मिलती, जाल काट कर बाहर भी नहीं निकल पाता। ऐसे ही समय में अचानक एक मौका मिल गया। बाबा ने पूछा, "तुम्हारी कोई जन्मकुण्डली है या नहीं। उसकी तो जरूरत आ पड़ी है?"

जोर लगाकर, सारा संकोच दूर करके मैं बोल उठा "क्या आप लोगों ने सचमुच ही पूंटू के साथ मेरा विवाह करना स्थिर कर लिया है?"

बाबा कुछ काल तक भौंचक से होकर ताकते रहे, फिर बोले, 'सचमुच ही? सुनो तो ऐसी बात एक बार!"

'किन्तु मैंने अब तक कुछ भी निश्चय नहीं किया है।'

'नहीं किया है? तो अब कर लो। लड़की की उम्र चाहे मैं बारह तेरह वर्ष ही बताऊँ या और कुछ, असल में उसकी अवस्था सत्रह अठारह साल की है। इसके बाद इस लड़की का विवाह हम लोग कैसे कर सकेंगे?"

'किन्तु यह तो मेरा अपराध नहीं है।"

"तो किसका अपराध है? शायद मेरा है?"

इसके बाद लड़की की मां और रांगा बहिन से आरम्भ करके पड़ोस की लड़कियाँ तक आ गयीं। रोना धोना, अनुयोग-अभियोग का कोई अन्त नहीं रहा। मुहल्ले के पुरुषों ने कहा,—"इतना बड़ा शैतान और कोई नहीं दिखाई पड़ता. इसको विधि पूर्वक शिक्षा दी जानी चाहिए।"

किन्तु शिक्षा अर्थात् सजा देना और बात है और लड़की का विवाह करना दूसरी बात है। इस कारण बाबा चुप साध गये। इसके बाद अनुनय विनयकी पारी शुरू हुई। पूँटू को और नहीं देख पाता शायद वह बेचारी लज्जा से कहीं मुँह छिपाये पड़ी है। क्लेश होने लगा। कैसा दुर्भाग्य लेकर ही ये हमारे घरों में जन्म लेती हैं। मैंने सुना कि ठीक यही बात उसकी मां भी कह रही है,—यह अभागिनी हम सभी को पहले खाकर तब पीछे जायगी। इसका भाग्य इस प्रकार का बना है कि यदि समुद्र पर नजर डाल दे तो वह भी सूख जाय और जली हुई शोल मछली भी पानी में भाग जाय। इसकी गति ऐसी न होगी तो किसकी होगी!

कलकत्ता जाने के पहले बाबा को बुलाकर अपने घर का पता बता दिया। कहा, "मुझे एक व्यक्ति से सम्मति लेना जरूरी है, उनके कहने पर मैं सहमत हो जाऊँगा।"

मेरा हाथ पकड़कर गद्गद् कण्ठ से बाबा ने कहा, "देखो भाई, लड़की की हत्या मत करो। उनको जरा समझाकर कह देना कि वे असम्मति न दें।"

मैंने कहा, "मुझे विश्वास है कि वे असम्मति न प्रकट करेंगे, वरन् खुश होकर ही सम्मति दे देंगे।"

बाबा ने आशीर्वाद दिया, "तुम्हारे घर पर मैं कब आऊँ भैया?"

"पाँच छः दिनों के बाद ही आइए।"

पूँटू की मां और रांगा दीदी ने रास्ते तक आकर आँसू भरे नेत्रों के साथ मुझे बिदा किया।

मन ही मन मैंने कहा, भाग्य! किन्तु यह अच्छा ही हुआ कि एक प्रकार से वचन दे आया। मैंने इस बात पर निःसंशय विश्वास कर लिया था कि राजलक्ष्मी इस विवाह में लेशमात्र भी आपत्ति न करेंगी।

२

स्टेशन पर पहुँचने के साथ ही ट्रेन छूट गई। दूसरी ट्रेन आने में दो घंटे की देर है। समय काटने का उपाय सोच रहा था कि एक मित्र मिल गये। एक मुसलमान युवक ने कुछ क्षण तक मेरी तरफ देख लेने पर पूछा, "श्रीकान्त हैं क्या"?

"हाँ।"

"मुझे नहीं पहचान सके ? मैं गौहर हूँ" यह कहकर उसने जोर से मेरा हाथ मल दिया, सशब्द पीठ पर थप्पड़ जमा दी और जोर से गले से लिपट कर कहा "चलो हमारे घर चलो। कहां जा रहे थे, कलकत्ता ? अब जाना नहीं हो सकता, चलो।"

यह मेरा पाठशाला का मित्र है। उम्र में चार साल तक बड़ा होगा. सदा से ही कुछ आध पगला सा लड़का रहा है, मालूम हुआ कि उम्र बढ़ने के साथ ही उसका वह पागलपन बढ़ ही गया है घटा नहीं है। पहले भी उसकी जबर्दस्ती से बचने का उपाय न था, इस कारण यह बात याद करके कि कम से कम आज रात भर के लिए तो वह कदापि न छोड़ेगा, मेरी दुश्चिन्ता की सीमा न रही। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उसके उल्लास और उसकी आत्मीयता के साथ जोड़ी लगाकर चलने की शक्ति अब मुझमें नहीं है। किन्तु वह तो छोड़नेवाला बन्दा नहीं है। मेरा बैग उसने स्वयं उठा लिया और कुली बुलाकर उसके सिर पर बिछौना रख दिया। फिर जबर्दस्ती खींच कर बाहर लाया और गाड़ी का भाड़ा ठीक करके मुझसे बोला, "चढ़ो।"

छुटकारा नहीं मिल सकता, तर्क करना व्यर्थ है।

बता चुका हूँ कि गौहर मेरा पाठशाला का मित्र है। हमारे गांव से उसका मकान एक कोस दूर, एकही नदी के किनारे था। बचपन में उसी से बन्दूक चलाना सीखा था। उसके पिता की एक पुरानी गन्दी बन्दूक थी. उसे ही लेकर, नदी के किनारे, आमके बगीचे में और झोंप-झाड़ियों में घूम घूम कर हम दोनों चिड़ियों को मारते फिरते थे। बचपन में कई बार उसके ही घर पर रात बिताई है। उसकी मां फरुही, गुड़ दूध केला लाकर मेरे लिए फलाहार का बन्दोबस्त कर देती थी। उसकी जमीन जायदाद खेती बारी बहुत थी। गाड़ी में बैठकर गौहर ने प्रश्न किया, "इतने दिनों तक कहाँ थे श्रीकान्त ?"

जहाँ जहाँ था, उसका एक संक्षिप्त विवरण दे दिया। पूछा, "तुम अब क्या करते हो गौहर ?"

"कुछ भी नहीं।"

"तुम्हारी मां अच्छी तरह हैं ?"

"मां-बाप दोनों की ही मृत्यु हो गयी, घर पर मैं अकेला हूँ।"

"विवाह कहीं किया ?"

"वह भी मर गई।"

मनही मन मैंने अनुमान किया कि इसी लिए जिसको हो मनमें आता है पकड़ कर ले जाने का इसे इतना आग्रह है, कोई बात ढूंढ़ने पर नहीं मिली तो मैंने पूछा, 'तुम्हारी वह पुरानी बन्दूक है ?"

गौहर ने हंसकर कहा, 'देखता हूँ कि तुझे उसकी याद है। वह है, उसके अलावा एक और अच्छी बन्दूक खरीदी थी। तुम शिकार खेलने जाना चाहो तो साथ चलूँगा, किन्तु अब मैं चिड़ियाँ नहीं मारता, बहुत दुःख होता है।"

"यह क्या गौहर, तब तो तुम दिनरात इसीके पीछे पागल रहते थे।"

"यह सच है, किन्तु बहुत दिनों से अब छोड़ दिया है।"

गौहर का एक परिचय और है, वह कवि है। उन दिनों वह धड़ाधड़ लगातार जबानी तौर पर ग्राम्य गीतों की झड़ी लगा सकता था, किसी भी समय और किसी भी विषय पर। छन्द, मात्रा, ध्वनि आदि काव्यशास्त्र के नियमों को मानकर चलता था या नहीं इसका ज्ञान मुझे तब भी नहीं था और अब भी नहीं है। किन्तु मणिपुर का युद्ध, टिकेन्द्रजीत सिंह के वीरत्व की कहानी छन्दबद्ध रूप से उसके मुँह से सुनकर उन दिनों हमलोग बार-बार उत्तेजित हो उठते थे, यह बात तो मुझे याद है। पूछा, "गौहर, किसी समय तुम्हें कृत्तिवास से भी अच्छा रामायण लिखने का शौक था, यह संकल्प अब भी है या चला गया ?"

"चला गया ?" गौहर पल भर में गम्भीर हो उठा, बोला "वह क्या जानेवाली बात है रे ? उसी को लेकर तो जीवित हूँ। जब तक जीवन रहेगा, तब तक इसे लिये ही रहूँगा। कितना लिख डाला है, चलो न, आज सारी रात तुमको सुनाऊँगा, तो भी खतम न होगा।"

"यह क्या कह रहे हो गौहर ?"

"नहीं तो क्या तुमसे झूठ बोल रहा हूँ ?"

प्रदीप्त कवि प्रतिभा से उसकी आँखें और मुँह चमकने लगे। सन्देह नहीं किया, केवल विस्मय प्रकट किया था। तथापि कहीं केंचुआ खोद कर निकालते साँप न निकल आये, मुझे पकड़ कर बैठा कर वह सारी रात कहीं काव्य चर्चा ही न करने लगे, इस भय से मेरी शंका की सीमा न रही। खुश करने के लिए कहा,

"नहीं गौहर, मैं यह नहीं कहता। तुम्हारी अद्भुत शक्ति को हम सभी स्वीकार करते हैं पर बचपन की बात याद है या नहीं, यही जानने के लिए इतना कह दिया। तब तो यह ठीक ही है—यह बंगाल की एक कीर्ति होकर रहेगी।"

—"कीर्ति? अपने मुँह से और क्या कहूँ भाई, पहले सुन लो फिर बाद को ये सब बातें होगी।"

किसी तरह भी छुटकारा नहीं! क्षण भर के लिए स्थिर रह कर मानो अपने मन से ही मैंने कहा, "सबेरे से ही तबीयत ऐसी खराब हो रही है कि, ऐसा लग रहा है कि यदि सो रहता।"

—"गौहर ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया, बोला "पुष्पक रथ पर बैठी हुई सीताजी जहाँ रोते-रोते गहने फेंक रही हैं, वहाँ के अंश को जिन लोगों ने सुना है, वे अपने आँसू नहीं रोक सके हैं श्रीकान्त।"

आँखों का जल मैं भी रोक सकूँगा, इसकी सम्भावना कम है। कहा, "किन्तु—"

गौहर ने कहा, "हमारे उस बूढ़े नयनचाँद चक्रवर्ती की तुम्हें याद है न? उसके मारे मैं बहुत ही परेशान हो रहा हूँ।" जब तब आकर कहने लगता है, "गौहर जरा वह अंश पढ़ो न, सुन लूँ।" कहता है, "बेटा, तुम मुसलमान की सन्तान कभी नहीं हो, मुझे स्वयं अपनी आँखों से तेरे शरीर में असली ब्राह्मण रक्त दिखाई पड़ रहा है।"

नयन चाँद नाम सचराचर नहीं मिलता, इसीलिए याद आ गया। मकान गौहर के ही गाँव में है, पूछा, "वही बूढ़ा चक्रवर्ती तो? जिसके साथ तुम्हारे पिताजी का बड़ा झगड़ा चला था, लाठियाँ चली थीं और मामला मुकदमा भी चला था?"

गौहर ने कहा,—"हाँ, किन्तु पिताजी से लड़ कैसे सकतो है? पिताजी ने उसकी जमीन, बगीचा, तालाब सबको, कर्ज में नीलाम करवा लिया था, किन्तु मैंने उसका तालाब और मकान लौटा दिया है। बहुत ही गरीब है, दिन रात आँसू बहाता रहता था, ऐसा क्या अच्छा लगता श्रीकान्त?"

अच्छा तो नहीं लगता, परन्तु चक्रवर्ती के काव्य प्रेम से कुछ ऐसा अन्दाज लग रहा था। कहा, "अब तो रोना बन्द हो गया है न?"

गौहर ने कहा, "किन्तु मनुष्य तो वास्तव में अच्छा है। ऋण के कारण उसने

उस समय जो कुछ किया, वैसा तो बहुत लोग करते हैं। उसके मकान के आगे ही लगभग डेढ़ बीघे का आम का बगीचा है, उसके प्रत्येक पेड़ को चक्रवर्ती ने अपने हाथों से लगाया है। नाती पोते और नातिन पोतियाँ बहुत हैं, खरीद कर खाने के लिए पैसे नहीं हैं—इसके अलावा मेरा ही कौन है, कौन खानेवाला है।"

यह ठीक है। इसे भी जाकर लौटा दो।"

"लौटा देना ही ठीक है श्रीकान्त। आँखों के सामने ही आम पकते हैं, लड़के बच्चे देख कर आहें भरने लगते हैं, मुझे बहुत दुःख होता है भाई। आमके दिनों में सभी बगीचों को व्यापारियों को दे ही देता हूँ, केवल उसी बगीचे को नहीं बेचता। कह दिया है, चक्रवर्ती महाशय, तुम्हारे नाती पोते तोड़ कर खाते रहें। क्या कहते हो, ठीक किया न?"

"बिल्कुल ठीक।" मन ही मन कहा, बैकुंठ के खाते की जय हो। उसके कारण यदि गरीब नयन चाँद कुछ भी जुटाकर ले सके तो हानि ही क्या है? इसके अलावा गौहर कवि है। कवि की इतनी सम्पत्ति किस काम की, यदि वह रसग्राही सज्जनों के भोग में न लगे।

चैत के प्रायः बीचोबीच की बात है। गाड़ी के किवाड़ को अकस्मात् अन्त तक ठेल कर बाहर सिर निकाल कर गौहर ने कहा, "दक्षिणी हवा का अनुभव हो रहा है श्रीकान्त?"

"हो रहा है।"

गौहर ने कहा, "वसन्त को पुकारते हुए कवि ने कहा है, "आज दक्षिण का द्वार खोल दो—"

कच्ची मिट्टी का रास्ता है। मलय पवन के एक झोंके ने रास्ते की सूखी धूलि को और रास्ते पर नहीं रहने दिया, उससे समस्त सिर और मुँह को भर दिया। रंज होकर मैं बोला, "कवि ने वसन्त को नहीं बुलाया, वे कह रहे हैं कि इस समय यमका दक्षिण द्वार खुला है, अतः गाड़ी का दरवाजा न बन्द करने पर शायद वही आकर हाजिर हो जायगा।"

गौहर ने हंसकर कहा, "चलकर एक बार देखोगे, चलो तो। चकोतरे के दो पेड़ों पर फूल खिले हैं और आध कोस से उनकी गन्ध आती है। सामने वाला जामुन का पेड़ माधवी फूलों से भर गया है, उसकी एक डाल पर मालती की लता है।

फूल अभी नहीं खिले हैं, कलियों के किन्तु गुच्छे के गुच्छे लटक रहे हैं। हमारे चारो ओर आमका बगीचा है, इस बार मौर मौर से पेड़ छा गये हैं, कल सवेरे मधु मक्खियों का मेला देखना ! कितने नीलकंठ, कितनी बुलबुलें और कितनी कोयलों के गान ! इनदिनों चाँदनी रात है न, इस कारण रात के समय भी कोयलों की पुकार नहीं बन्द होती। बाहर के कमरे की दक्षिणवाली खिड़की यदि खुली रखोगे, तो फिर दोनों आंखों की पलकें न झपेंगी। किन्तु इस बार सहज में ही छोड़ न दूँगा भाई, यह पहले से कह देता हूं। इसके अलावा खाने की भी कोई चिन्ता नहीं है, चक्रवर्ती महाशय को एक बार खबर मिलने भर की देर है, गुरु की तरह आदर करेंगे।"

उसके आमन्त्रण की अकपट आन्तरिकता से मुग्ध हो गया। कितने दिनों के बाद मुलाकात हुई है किन्तु ठीक उसी दिन जैसा ही गौहर है, जरा भी नहीं बदला है, वैसा ही लड़कपन है, मित्र मिलन में अकृत्रिम उल्लास की वैसी ही घटा है।

गौहर मुसलमान फकीर सम्प्रदायका वंशधर है। सुना है कि उसके पितामह बाउल, राप्रसादी और दूसरे गीत गाकर भीख मांगते थे। उसकी पली हुई एक सारिका की अलौकिक संगीत पारदर्शिता की कहानी उन दिनों इधर बहुत प्रसिद्ध थी। किन्तु गौहर के पिता पैतृक वृत्ति छोड़कर तिजारत और पाटका कारबार करने लगे और उससे अर्थोपार्जन करके लड़के के लिए सम्पत्ति खरीदकर छोड़ गये हैं। किन्तु लड़कों को बाप जैसी व्यापारिक बुद्धि नहीं मिली; इसे मिला है बाबा के काव्य और संगीत के प्रति अनुराग। अतः पिता की बहुश्रमार्जित संचित भूसम्पत्ति और खेती बारी का अन्ति परिणाम क्या होगा, यह शंका और सन्देह का विषय है। खैर; जो हो, उन लोगों का मकान लड़कपन में देखा था। अच्छी तरह याद नहीं है। शायद अब वह कवि की वाणीसाधना के तपोवन में रूपान्तरित हो गया हो। एक बार फिर आँखों से देखने का आग्रह हुआ।

उसके गाँव का पथ मुझसे परिचित है। उसकी दुर्गमता का चेहरा भी याद पड़ता है, किन्तु थोड़ी ही देर के बाद मालूम हो गया कि शैशव की उस याद के साथ आज की आँखों से देखने की कोई भी तुलना नहीं की जा सकती। बादशाही जमाने की सड़क है अतिशय सनातन। ईंट-पत्थरों की परिकल्पना इधर के लिए नहीं है, ऐसी दुराशा भी कोई नहीं करता किन्तु मरम्मत या संस्कार की सम्भावना

भी लोगों के मन से बहुत समय पहले ही मिट गई है, गाँव के लोग जानते हैं कि अनुयोग अभियोग विफल ही होते रहेंगे, उनके लिए किसी दिन भी राजकोष में रुपये न रहेंगे, वे जानते हैं कि पुरुषानुक्रम से सड़क के लिए केवल टैक्स जुटाना पड़ता है किन्तु वह सड़क कहाँ है और किसके लिए है यह सब सोचना भी उनके लिए ज्यादती है।

उसी सड़क को बहुकाल से संचित और स्तूपीकृत धूलि और बालू की रुकावट को हटाती हुई गाड़ी केवल हमारे चाबुक के जोर से ही अग्रसर हो रही थी, ऐसे ही समय गौहर अकस्मात् बड़े जोर से चिल्ला उठा, "गाड़ीवान, और नहीं और नहीं, ठहरो, एकदम रोको!"

उसने यह इस तरह कहा, मानो पंजाब मेल का मामला हो। सब वैक्यूम ब्रेक यदि बन्द न किये जा सकें तो सर्वनाश की सम्भावना हो।

गाड़ी रुक गई। बाँये हाथ की तरफ जानेवाला पथ उनके गाँव को जाता है। उतरकर गौहर ने कहा, "श्रीकान्त, उतर आओ, मैं बैग ले लेता हूं, तुम बिछौना ले लो, चलो।"

"शायद गाड़ी और आगे नहीं जायगी?"

"नहीं। देखते नहीं हो, रास्ता नहीं है।"

यह ठीक है। दक्षिण और बाँयीं तरफ काँटेदार गुल्मों और बेत कुंज की घनी तथा एक दूसरे में मिली हुई शाखाप्रशाखाओं के कारण गांव को जानेवाली यह गली अति संकीर्ण हो गयी है। गाड़ी अन्दर घुसने का प्रश्न ही अवैध है, यदि कोई मनुष्य भी कुछ सावधान होकर झुककर न घुसे तो काटे से कपड़े फट जाना अनिवार्य है। अतएव कवि के कथनानुसार वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य अनिर्वचनीय ही है। उसने बैग को कंधे पर रखा, मैंने बिछौने को बगल में दबा लिया। हमलोग गोधूलि की बेला में गाड़ी से उतरे।

कवि गृह में जब पहुँचे तो शाम हो चुकी थी। अनुमान से मालूम किया कि आकाश में वसन्त रात्रिका चन्द्रमा भी निकल आया है। शायद पूर्णिमा के आसपास की कोई तिथि थी, अतएव इस आशा में था कि गम्भीर निशीथ में, चन्द्रदेव सिर के ऊपर आ जायँ तो इस सम्बन्ध में निःसंशय हो जाऊँ। मकान के चारों तरफ घना बाँसों का वन है। बहुत सम्भव है कि इसी जंगल में उसकी कोयल, नीलकंठ और

बुलबुलों का झुण्ड रहता हो और वे अहर्निश अपनी पुकार, कूक या गान से कवि को व्याकुल कर देता हो। बांस की असंख्य सूखी पत्तियों ने झड़ झड़कर आँगन और चबूतरे को परिव्याप्त कर रखा है। नजर पड़ते ही झड़ी हुई पत्तियों के गीत गाने की प्रेरणा से समूचा मन मुहूर्त मात्र में गर्जन कर उठता है। नौकर ने आकर बाहर का कामरा खोल दिया और शरण दी। गौहर ने चौकी दिखाकर कहा, 'तुम इस कमरे में रहो, देखना कैसी हवा लगती है।"

असम्भव नहीं है। देखा, दक्षिण की हवा से समूचे देश की सूखी लताओं और पत्तियों ने गवाक्षपथ से भीतर घुसकर कमरे को भर दिया है. चौकी भी भर गई है फर्श पर पैर पड़ते ही शरीर सनसना उठा। खाट के पाये के पास चूहे ने अपना बिल बनाकर मिट्टी जमा कर रखी है। मैंने उसे दिखा कर कहा, "गौहर, इस कमरे में तुम लोग क्या कभी आते भी नहीं?"

गौहर बोला, "नहीं। जरूरत ही नहीं पड़ती। मै अन्दर ही रहता हूं। कल सब साफ करा दूँगा।"

'मान लेता हूं कि साफ करा दोगे, किन्तु इस बिल में साँप भी तो रह सकते हैं?"

नौकर ने कहा, 'दो थे, किन्तु, अब नहीं हैं। ऐसे दिनो में वे नहीं रहते, हवा खाने के लिए बाहर चले जाते हैं?''

पूछा, ' यह कैसे मालूम हुआ मियाँ?''

गौहर ने हँसते हुए कहा, "वह मियाँ नहीं है। हम लोगों का नवीन है। पिताजी के जमाने का आदमी है। गाय बछड़ा, खेती बारी देखता है और मकान की सफाई आदि से हिफाजत रखता है। हमारे यहाँ कहाँ क्या है, क्या नहीं है, सब जानता है।"

नवीन बंगाली हिन्दू है और पिता के जमाने का आदमी है। इस घर के गाय बछड़ों, खेती-बारी से लेकर मकान तक का सारा हाल जानना उसके लिए असम्भव नहीं है। तथापि साँप के बारे में उसकी बातों से निश्चिन्त न हो सका। यहां तो समूचे मकान को दक्षिणी हवा लग गई है। सोचा, हवा के लोभ से सर्प युगल का बाहर चला जाना कोई आश्चर्य नहीं है, किन्तु लौटने में ही कितनी देर लग सकती है?'

गौहर समझ गया कि, मुझे भरोसा नहीं हुआ है। बोला, "तुम तो खाट पर रहोगे, तुम्हें डर किस बात का है? इसके अलावा वे लोग कहाँ नहीं रहते? भाग्य में लिखा रहने से राजा परीक्षित को भी इनसे निस्तार नहीं मिला, हम तो तुच्छ ही हैं। नवीन, कमरे में झाड़ू लगाकर बिल के मुँह पर एक ईंट रखकर बन्द कर देना। भूल मत जाना। किन्तु, क्या खाओगे श्रीकान्त?"

मैंने कहा, "जो कुछ मिल जाय।"

नवीन बोला, "दूध, फरुही और अच्छी ईख का गुड़ है। आज के लिए—"

मैंने कहा, "खूब, खूब, इस मकान में इन चीजों का मुझे अभ्यास है, और कुछ जुटाने की जरूरत नहीं है भाई, बल्कि तुम कहीं से एक समूची ईंट उठा लाओ। बिल को कुछ मजबूती से ढँक दो, जिससे दक्षिणी हवा से पेट भर कर जब वे लोग लौट आवें, तो फिर अकस्मात् बिल में न घुस सकें।

नवीन बत्ती लेकर चौकी के नीचे कुछ देर तक झांक झूंक कर बोला, "नहीं, नहीं हो सकता।"

"क्या नहीं होगा जी?"

उसने सिर हिलाकर कहा, "नहीं हो नहीं, सकता। बिल मुँह क्या एक ही है बाबू? पजावा भर ईंट लाने की जरूरत पड़ेगी। चूहों ने फर्श को एक दम झँझरी बना दिया है।"

गौहर विशेष विचलित नहीं हुआ, केवल आदमी लगाकर कल अवश्य मरम्मत करा देने का हुक्म दे गया।

नवीन हाथ पैर धोने के लिए पानी देकर, फलाहार का आयोजन करने के लिए जब भीतर चला गया तो मैंने पूछा, 'तुम क्या खाओगे गौहर?'

"मैं? मेरी एक बूढ़ी मौसी हैं, वे ही खाना पकाती हैं। इन बातों को छोड़ो, खाना पीना खतम होने पर अपनी रचनाए तुझे पढ़ कर सुनाऊँगा।" वह अपने काव्य के ध्यान में ही मग्न था, अतिथि की सुखसुविधा की चिन्ता शायद उसने की ही नहीं, बोला, "बिछौना बिछा दूं, क्या कहते हो?" रात को हम दोनों एक साथ रहेंगे, क्या कहते हो?"

यह एक और आफत आई। कहा, 'नहीं भाई गौहर, तुम अपने कमरे में जाकर सो रहो, आज मैं बहुत थका हूं, कल सबेरे ही तुम्हारी पुस्तक सुनूँगा।"

"कल सबेरे ? तब क्या समय रहेगा ?"

गौहर चुप होकर कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला, "अच्छा श्रीकान्त, एक काम किया जाय तो कैसा हो ! मैं पढ़ता हूँ, तुम लेटे-लेटे सुनते रहना। नींद आने पर मैं चला जाऊँगा। क्या कहते हो ? यह तो ठीक बात है न ? बोलो ?"

मैंने बिनती करके कहा, "नहीं भाई गौहर, ऐसा करने से तुम्हारी पुस्तक की मर्यादा नष्ट होगी. कल मैं पूरा मन लगा कर सुनूँगा।"

गौहर ने शुद्ध हृदय के साथ बिदा ली पर बिदा करके मेरा मन भी प्रसन्न नहीं हुआ।

यह एक पागल ही है। इसके पहले इशारों से तो मैंने यही समझा था कि अपना काव्यग्रन्थ वह छपवा कर प्रकाशित करना चाहता है ; मन में आशा है कि उसके प्रकाशन से संसार में नयी सनसनी फैल जायगी। उसने अधिक लिखना पढ़ना नहीं सीखा है। पाठशाला और स्कूल में साधारण बंगला और अंग्रेजी ही उसने सीखी है। इच्छा भी नहीं थी, शायद समय भी नहीं मिला। कब किस शैशवावस्था में उसने कविता से प्रेम कर लिया, शायद वही प्रेम उसकी शिराओं के रक्त में बह रहा है, इसके बाद संसार का और सब कुछ उसकी नजरों में अर्थ हीन हो गया है। अपनी अनेक रचनाएँ उसे याद हैं, गाड़ी में बैठकर गुनगुना कर वह बीच-बीच में उनकी आवृत्ति भी कर रहा था। सुन कर मैंने यह नहीं सोचा था कि सरस्वती देवी अपने स्वर्णपद्म की एक पपड़ी भी गिराकर इस अक्षम भक्त को कभी पुरस्कृत करेंगी। किन्तु अक्लान्त आराधना के एकान्त आत्मनिवेदन में इस बेचारे को विराम नहीं विश्राम नहीं। बिछौने पर लेट कर सोचने लगा कि बारह वर्ष के बाद यह मुलाकात हुई है। इन बारह बर्षों से इसने सब पार्थिव स्वार्थों को जलांजलि देकर, एक बात के बाद उसके साथ दूसरी बात गूँथ कर श्लोकों का पहाड़ जमा कर लिया है, किन्तु यह सब किस काम में लगेगा ? जानता हूँ कि काम में नहीं लगा। गौहर आज नहीं है। उसकी दुश्चर तपस्या की अकृतार्थता का स्मरण कर आज भी दुःख होता है। सोचता हूँ कि लोक चक्षुओं के अन्तराल में न जाने कितने शोभा हीन, गन्धहीन फूल खिलते रहते हैं और फिर अपने आप ही सूख भी जाते हैं। यदि विश्वविधान में उनकी कोई सार्थकता है, तो शायद गौहर की साधना भी व्यर्थ नहीं हुई होगी।

गौहर ने बहुत सबेरे ही पुकार कर मेरी नींद तोड़ दी। तब शायद सात बजे थे, या न भी बजे हों। उसकी इच्छा थी कि बसन्त के दिनों में बंगाल के निभृत गाँवों को अनुपम शोभासौन्दर्य अपनी आँखों से देखकर धन्य हो जाऊँ। उसका मनोभाव कुछ ऐसा था कि मानो मैं बिलयत से आया हूं। उसका आग्रह पागलों की तरह था, अनुरोध टालने का उपाय नहीं था। अतएव हाथ मुँह धोकर तैयार हो जाना पड़ा। दीवार से सटकर एक अधमरा जामुन का पेड़ था। उसके आधे में माधवी और बाकी आधे में मालती लता थी। यह कवि की अपनी परिकल्पना है। अत्यन्त निर्जीव चेहरा है, तथापि एक में दो चार फूल खिले हैं दूसरे में हाल ही में कलियाँ फूटी हैं। उसकी इच्छा थी कि थोड़े से फूल मुझे उपहार में दे, पर पेड़ में चींटे इतने थे कि छूने का कोई उपाय नहीं सूझा। उसने मुझे यह कर सान्त्वना दी कि कुछ देर बाद उन्हें अंकुसी से अनायास ही तोड़वा दिया जा सकेगा। अच्छा, चलो।

नवीन प्रातःक्रिया को स्वच्छन्द ठीक तौर से सम्पन्न करने के उद्योगपर्व में तम्बाकू का दम लगाकर बड़े जोर से खाँस रहा था। थूककर, खखार निगलकर बहुत अंशों में संभालकर हाथ हिलाकर उसने मना किया। बोला, "जंगल झाड़ी में कहीं गायब मत हो जाइयेगा, कह देता हूँ।

नवीन ने जवाब दिया, "कोई दो तीन सियार पागल हो गये हैं। पशुओं को और आदमियों को काटते हुए घूम रहे हैं।

मैं डर के मारे पीछे हट गया। "कहाँ रे नवीन ?"

"कहाँ है, यह क्या मैंने देख रखा है ? कहीं न कहीं झोपझाड़ी में छिपे होंगे। जाइयेगा तो जरा आँखें खोलकर जाइयेगा।"

"तो भाइ, जाने का काम नहीं गौहर।

"वाह रे, इन दिनों कुत्ते और सियार ती जरा पागल हो ही जाते हैं, इसीलिए क्या लोग रास्ता न चलेंगे ? खूब कहा!"

यह भी दक्षिण की हवा का मामला है। अतएव प्रकृति की शोभा देखने साथ में जाना ही पड़ा। रास्ते के दोनों ओर आम के बगीचे हैं। पास पहुँचते ही असंख्य छोटे छोटे कीड़े मकोड़े चड़ चड़ पट पट आवाज करते हुए आम्र मुकुलों को छोड़कर आँख, नाक, मुँह और कपड़ों के भीतर घुस गये। सूखी पत्तियों पर आम

का मधु गिरकर चिपकनी लेई की तरह हो गया था, वह जूतों के तले में चिपकने लगा। पतले रास्ते का बहुत सा भाग वे दखलकर विराजमान करौंदे की झाड़ियाँ मुकुलित विकसित फलों के भार से लदी हैं। इसी समय याद आ गयी नवीन की चेतावनी। गौहर के मतानुसार यह समय पागल होने के लिए उपयुक्त है, इस लिए करौंदे के फूलों की शोभा और किसी दिन उपभोग की जायगी। आज गौहर और मैं, नवीन के कथनानुसार 'गायमनुष्य' ने जरा तेज कदम बढ़ाकर ही स्थान त्याग कर दिया।

कह चुका हूँ कि हमारे ही गाँव की नदी इनके भी गाँव की सीमा के पास से होकर बहती है। वर्षाकाल की चौड़ी जलधारा वसंत के समागम से अत्यन्त शीर्ण हो गई है। उस समय की धार से बहकर आई हुई अपरिमेय सेवार काई आजकल सूखी तटभूमि पर फैल गई है, और शिशिर तथा धूप में सड़कर समूचे स्थान को दुर्गन्ध से नरककुण्ड बना दिया है। उस पार कुछ दूर कई सेमर के पेड़ों में अनेकानेक लाल फूल खिले हुए थे, उनपर दृष्टि पड़ी, किन्तु उस तरफ दृष्टि आकर्षित करना कवि को भी मानो अनुचित सा जान पड़ा। उसने कहा, "चलो घर लौट चलें।"

"अच्छा चलो।"

"मैंने सोचा था कि ये सब तुम्हें अच्छे लगेंगे।"

मैंने जवाब दिया, "लगेंगे भाई, लगेंगे। अच्छे अच्छे शब्दों में तुम इनका विवरण कविता में लिखो, पढ़कर मैं खुश हीं हूँगा।"

"शायद इस कारण ही गाँव के लोग भूलकर भी इनको नहीं देखते।"

"नहीं, देखते देखते उनको अरुचि हो गई है। आँखों की रुचि और कानों की रुचि एक नहीं है भाई। जो लोग यह समझते हैं कि कवि के वर्णन को आँखों से देखकर लोग मोहित हो जाते हैं, वे लोग ठीक बात नहीं जानते। दुनियाँ की सभी बातों में यही बात लागू है। आखों के लिए जो साधारण घटना है या मामूली तुच्छ वस्तु है, वही कवि की भाषा में नई सृष्टि हो जाती है। तुम जो देखते हो वह सत्य है। इसके लिए तुम दुखी मत होना गौहर।"

तो भी लौटते समय रास्ते में उसने न मालूम कितनी क्या-क्या वस्तुएँ दिखाने की चेष्टा की उनकी गणना नहीं की जा सकती। पथ का प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लता

गुल्म तक भी मानो उसका पहचाना हुआ है। न जाने कब एक पेड़ की छाल कोई आदमी औषधि के लिए छील कर ले गया था और उससे चिपकने वाला रस तब तक भी झर रहा था। सहसा उसे देखकर गौहर सिहर उठा, उसकी दोनों आँखें छलछला उठीं, हृदय में उसने कितनी वेदना का अनुभव किया, यह मैं उसका मुँह देखकर स्पष्ट रूप से समझ गया। चक्रवर्ती जो अपनी सभी खोई हुई सम्पत्ति वापस पा रहा था, वह केवल युक्ति या उपाय पढ़ा कर नहीं, इसका कारण तो गौहर के स्वभाव में ही है। ब्राह्मण के प्रति मेरा क्रोध अपने आप ही कम हो गया। चक्रवर्ती से मुलाकात नहीं हुई, क्योंकि सुना गया कि उसके घर में उसके दो नातियों पर माता की कृपा हुई है। गांव गांव में अबतक हैजा बीबी ने दर्शन नहीं दिया है, वे सड़ी हुई पोखरियों के पानी के थोड़ा और सूख जाने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

जो हो, घर पहुँचकर गौहर ने अपनी पोथी लाकर हाजिर कर दी। उसका परिमाण देखकर जिसे भय न लगे, ऐसा मनुष्य यदि कोई हो भी तो बिरला ही समझना चाहिये। बोला, "पढ़ना खतम न होने तक किन्तु छुट्टी न पाओगे श्रीकान्त, तुम्हें अपनी सच्ची सम्मति इसपर देनी पड़ेगी।

यह आशंका तो थी ही। स्पष्ट रूपसे राजी हो सकूँ, इतना साहस नहीं था, तो भी कवि के मकान पर काव्यालोचना में इस बार की यात्रा में मेरे सात दिन बीत गये। किन्तु निविड़ साहचर्य में इस मनुष्य का जो परिचय मुझे मिला वह जितना सुन्दर था, उतना ही विस्मयकारक भी।

एक दिन गौहर ने कहा, "तुझे बर्मा जाने की क्या जरूरत है श्रीकान्त। हम दोनों के ही अपना कहने का कोई नहीं है। आओ न दोनों भाई एक साथ यहाँ ही एक साथ जीवन बिता दें।"

हँसकर कहा, "मैं तो तुम्हारी तरह कवि नहीं हूँ भाई, पेड़-पौधों की भाषा भी नहीं समझता और उनके साथ बातचीत भी नहीं कर सकता, इस जंगल में कैसे रह सकूँगा। दो दिन में ही हाँफ जाऊँगा।"

गौहर ने गम्भीर होकर कहा, "किन्तु मैं तो सचमुच ही उनकी भाषा समझता हूँ। सचमुच ही वे बातचीत करते हैं, क्या तुमलोग विश्वास नहीं करते?"

मैंने कहा, "विश्वास करना कठिन है, यह तो तुम भी समझते हो?"

गौहर ने सहज में ही स्वीकार कर लिया। बोला "हाँ, यह भी समझता हूं।"

एक दिन सबेरे अपने रामायण का अशोकवन वाला अध्याय कुछ देर तक पढ़ने के बाद उसने अकस्मात् पुस्तक बन्द कर दी और मेरे मुँह की तरफ देखकर पूछ बैठा, "अच्छा श्रीकान्त, तुमने कभी किसी को प्यार किया है ?"

कल बहुत रात तक जागकर राजलक्ष्मी को शायद मैंने यह अपनी अन्तिम चिट्ठी ही लिखी थी। बाबा की बातें, पूंटू की बात और उसके दुर्भाग्य का विवरण पूरा ही उसमें था। उन लोगों को वचन दिया था कि एक आदमी की अनुमति मांग लूँगा, वह भिक्षा भी उसमें थी। चिट्ठी भेजी नहीं गई थी, तब तक भी मेरी जेब में पड़ी हुई थी। गौहर के प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा, 'नहीं।'

गौहर ने कहा, "यदि कभी प्यार करो, यदि कभी ऐसा दिन आ जाय, तो मुझे बता देना श्रीकान्त।"

"जानकर क्या करोगे ?"

"कुछ भी नहीं। तब केवल तुम लोगों के बीच जाकर कुछ दिन काट आऊँगा।"

"अच्छा।"

"और यदि उस समय रुपये की जरूरत हो तो मुझे खबर दे देना। बाबू जी बहुत रुपया छोड़ गये हैं, वह मेरे काम में तो नहीं लगा, किन्तु शायद तुमलोगों के काम में लग जाय।"

उसके कहने का तरीका ऐसा था कि सुनते ही आँखों से आँसू गिरने लगे। कहा, "अच्छा, यह भी खबर दूंगा, किन्तु आशीर्वाद दो कि ऐसी जरूरत कभी न पड़े।"

मेरे जाने के दिन गौहर फिर मेरा बैग कन्धे पर उठाकर तैयार हो गया। ऐसा करने की जरूरत न थी, नवीन तो लज्जा से प्रायः अधमरा सा हो गया, किन्तु उसने जरा भी ध्यान नहीं दिया। ट्रेन में बैठाकर वह औरतों की तरह रो उठा, बोला, "मेरे सिर की शपथ रही श्रीकान्त, चले जाने के पहले एक दिन फिर आना, जिससे फिर एक बार मुलाकात हो जाय।"

आवेदन की उपेक्षा न कर सका, वचन दिया कि मिलने के लिए फिर आऊँगा।

"कलकत्ता पहुँचकर कुशल समाचार दोगे तो ?"

यह वचन भी दिया। मानो कितनी दूर चला जा रहा हूँ।

कलकत्ता के डेरे पर जब पहुँचा, तब प्रायः सन्ध्या हो चुकी थी। चौखट पर पैर रखते ही जिससे मुलाकात हुई, वह और कोई नहीं स्वयं रतन था।

"यह क्या रे, तू है ?"

"हाँ, मैं ही हूँ। कल से बैठा हूं। एक चिट्ठी है।" समझ गया कि उसी प्रार्थना का उत्तर है। कहा "डाक से भेजने पर भी तो आ जाती ?"

रतन ने कहा, "यह व्यवस्था किसान, हलवाहे, मजदूर और गृहस्थ के लिए है। मां की चिठ्ठी यदि एक आदमी बिना खाये-पिये बिना सोये पाँच सौ मील से दौड़ता हुआ हाथ में लिये न लाये तो खो जाती है। आपतो सब जानते हैं, क्यों झूठ-मूठ पूछ रहे हैं।"

बाद को सुना कि रतन का यह अभियोग झूठा है। क्योंकि वह स्वयं उद्योगी होकर वह चिठ्ठी अपने हाथ लाया है। अब मालूम हो गया कि ट्रेन की भीड़ से और भोजन आदि की अव्यवस्था के कारण उसका मिजाज बिगड़ गया है। हँस कर कहा, "ऊपर आ। चिट्ठी पीछे पढ़ूँगा, चल तेरे खाने का इन्तजाम पहले कर दूँ।"

रतन ने पैरों की धूलि लेकर प्रणाम किया और बोला "चलिए।"

३

सशब्द डकार से चौंकाता हुआ रतन सामने हाजिर हुआ।

"क्या रतन, पेट भर गया ?"

"जी हाँ! पर आप जो चाहें, कहें बाबू, हमारे कलकत्ते के बंगाली ब्राह्मणों के सिवा और कोई रसोई का हाल कुछ भी नहीं जानता। उन लोगों के मारवाड़ी महाराजों को तो इनके सामने जानवर ही कहा जा सकता है।"

दोनों प्रान्तों की रसोई की अच्छाई या रसोईदार की शिल्पनिपुणता के बारे में मैंने रतन से कभी बहस की हो, यह तो मुझे याद ही नहीं। किन्तु रतन का जितना जानता हूँ उससे यही बात समझ में आई कि सुप्रचुर भोजन से वह खूब सन्तुष्ट हो गया है। ऐसा न होता तो पश्चिम के रसोईदारों के सम्बन्ध में ऐसा

निरपेक्ष सुविचार न कर सकता। उसने कहा "गाड़ी के धक्के तो मामूली नहीं थे, जरा हाथ पैर फैला कर लेट न रहने से—"

"अच्छा तो है रतन, कमरे में हो, चाहे बरामदे में हो, एक बिछौना बिछा कर सो जा। कल सब बातें होंगी।"

न मालूम क्यों, चिट्ठी के लिए उत्कण्ठा नहीं थी। मनमें यही भाव आ रहा था कि उसमें जो कुछ लिखा है वह जानता ही हूँ।

रतन ने फतुई की जेब से एक लिफाफा निकाल कर मेरे हाथ में दे दिया। नीचे ऊपर वह चपड़े से सील मोहर किया हुआ था। बोला, "बरामदे की उस दक्षिणवाली खिड़की के पास बिछौना बिछा लूँ? मसहरी लगाने का झमेला न रहेगा। कलकत्ता के अलावा ऐसा सुख और कहाँ है। जाता हूँ—"

"किन्तु सब समाचार अच्छा है न रतन?"

रतन ने मुँह गम्भीर करके कहा, "ऐसा ही तो दिखाई पड़ता है। गुरुदेव की कृपा से मकान का बाहरी हिस्सा गुलजार है। भीतर दासदासियों, बंकू बाबू और नई दुलहिन ने आकर घर द्वार प्रकाशमय कर दिया है और सबके ऊपर स्वयं माँ हैं, जो मकान की मालकिन हैं। ऐसी गृहस्थी की निन्दा कौन करेगा? किन्तु मैं बहुत पुराना नौकर हूँ, जाति का नाई हूँ, रतन को इतना सहज में भुलावा नहीं दिया जा सकता। इसीलिए तो उसदिन स्टेशन पर आँखों का आँसू न रोक सका। निवेदन करके कह दिया था कि परदेश के नौकरों की कमी होने पर रतन को एक बार जरूर खबर दे दें। जानता हूँ कि आपकी सेवा करने से भी उसी माँ की सेवा होगी। धर्म से मैं च्युत न होऊँगा।"

मैं कुछ भी नहीं समझा, केवल चुपचाप ताकता रहा। वह कहने लगा, बंकू बाबू की अब उम्र भी हो गई है, जो हो थोड़ा बहुत पढ़ लिख कर आदमी भी बन गये हैं। शायद सोच रहे हैं कि किस लिए दूसरे के अधीन रहा जाय? दानपत्र के जोर से सब भार तो लिया ही है। मानता हूँ कि मोटे तौर पर उन्होंने काफी हाथ लगा लिया है, किन्तु वह कितने दिनों के लिए है बाबू?"

बात अब भी साफ तौर पर नहीं मालूम हुई। किन्तु एक परछाहीं आँखों के सामने तैर गई।

वह फिर कहने लगा "खुद अपनी आँखों से आपने देख लिया है कि महीने में कम से कम दो बार मेरी नौकरी छूट जाती है। हालत बुरी नहीं है, नाराज होकर जा भी सकता हूँ। किन्तु क्यों नहीं जाता? जा नहीं सकता। इतना तो जानता हूँ कि जिसकी दया से सब कुछ हुआ है उसके एक निश्वास से ही आश्विन की वर्षा की भाँति सब लुप्त हो जायगा, आँखों की पलक गिराने का भी अवसर न देगा। यह माँ का क्रोध नहीं है यह तो मेरे देवता का आशीर्वाद है।"

यहाँ पाठकों को यह स्मरण करा देना आवश्यक है कि रतन बचपन में कुछ दिनों तक प्राइमरी स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर चुका है।

कुछ रुक कर कहा, "माँ ने मना कर दिया है, इसलिए कभी कुछ नहीं कहता। घर में जो कुछ था, चाचा लोगों ने ठग कर ले लिया, जजमानों का एक घर भी नहीं दिया। एक छोटा लड़का और एक लड़की और उनकी माँ को छोड़कर पेट के लिए एक दिन गाँव छोड़ कर बाहर निकल पड़ा। किन्तु पूर्व जन्म की मेरी तपस्या थी कि मुझे इस माँ के घर में ही नौकरी मिल गई। सब दुःख की बातें उन्होंने सुन लीं, किन्तु उस समय कुछ भी नहीं कहा। लग भग एक वर्ष बीत जाने पर मैंने एक दिन निवेदन किया, "माँ, बच्चे बच्ची दोनों को देखने की इच्छा हो रही है, यदि कुछ दिनों के लिए छुट्टी मंजूर करें।' हँस कर बोलीं, 'फिर आओगे न?" जाने के दिन हाथ में एक पोटली देते हुए कहा, "रतन, चाचा लोगों से लड़ाई झगड़ा मत करना बेटा, जो कुछ तेरा, चला गया है, उसे इसके द्वारा जाकर लौटा ले।" पोटली खोल कर देखा कि पाँच सौ रुपये हैं! पहले तो अपनी दोनों आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। ऐसा डर मालूम होने लगा मानो जाग्रत अवस्था में ही सपना देख रहा हूँ। मेरी उसी माँ से ही बंकू बाबू अब उलटी सीधी बातें कहते हैं, आड़ में खड़े होकर अण्डबण्ड बोलते हैं। सोचता हूँ कि अब इनके अधिक दिन नहीं हैं, क्योंकि अब माँ लक्ष्मी जाने ही वाली हैं।'

मैंने यह आशंका नहीं की थी, चुपचाप सुनने लगा। मन में ऐसा खयाल आया कि रतन कुछ दिनों से क्रोध और क्षोभ से फूल रहा है, बोला, "माँ जब देती हैं तो दोनों हाथों से बिखेर देती हैं। बंकू को भी दिया है। इसी लिए उसने यह सोच लिया है कि निचोड़े हुए मधुके छत्ते का मूल्य ही क्या हो सकता है? बड़े जोरों से उसे जलाया ही जा सकता है। इसीलिए वह इतना उसपर

लापरवाह हो गया है। मूरख यह नहीं जानता कि आज भी माँ का एक गहना वेच देने से इस तरह के पाँच मकान तैयार हो सकते हैं।"

मैं भी नहीं जानता था। हँसकर कहा. 'ऐसी ही बात है क्या? किन्तु वह सब हैं कहाँ?"

रतन भी हँस कर बोला, "उन्हीं के पास हैं। माँ इतनी बेवकूफ नहीं हैं। केवल आपके ही चरणों पर सब लुटाकर वे भिखारिणी हो सकती हैं, किन्तु और किसी के भी लिए नहीं। बंकू नहीं जानता कि आपके जीवित रहते मां को आश्रय की कमी न होगी, और रतन के जीवित रहते उन्हें नौकर के लिए चिन्तित होने की जरूरत नहीं! उस दिन काशी से आपके चले आने से मां के हृदय में कैसा तीर बिधा है, इसकी खबर क्या बंकू बाबू रखते हैं? गुरु महाराज को भी उनकी खोज खबर कहाँ मिल सकती है!"

"किन्तु मुझे तो उन्होंने खुद ही बिदा किया था, यह खबर तो तुम जानते हो रतन?"

जीभ निकालकर रतन शर्म से मर सा गया। इतनी विनय उसमें इसके पहले कभी नहीं देखी थी। बोला, "बाबू, हम तो नौकर चाकर हैं, ये सब बातें हमें अपने कानों से नहीं सुननी चाहिये। यह झूठ है।"

रतन अंगड़ाई लेकर जरा लेट लेने के लिए चला गया। शायद कल आठ बजे के पहले उसका शरीर ठिकाने पर न आयेगा।

दो बड़े समाचार मिले। एक तो यह कि बंकू बड़ा हो गया है। पटना में जब पहली बार मैंने उसे देखा था तो उस समय उसकी उम्र सोलह सत्रह साल की थी, अब वह इक्कीस वर्ष का युवक है। इसके अतिरिक्त इस पाँच छः वर्षों के समय में वह लिखना पढ़ना सीखकर आदमी बन गया है। अतः शैशव का वह सकृतीज्ञ स्नेह यदि आज यौवन के आत्मसम्मान बोध से सामंजस्य न रख सके तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है?

दूसरा समाचार यह है कि न बंकू को और न तो गुरुदेव को किसी को भी राजलक्ष्मी की गम्भीर वेदना का कुछ भी पता आजतक नहीं चला है।

मेरे मन में ये ही दो बातें बहुत देर तक घूमती रहीं।

यत्न के साथ अंकित चपड़े की सील मोहर को देखकर चिट्ठी खोल ली। उस

हाथ की लिखावट अधिक देखने का मौका नही मिला है, पर यह याद पड़ा कि अक्षर ऐसे नहीं हैं कि पढ़ने में कठिनाई पड़े परन्तु अच्छे तो नहीं हैं। किन्तु इस पत्र को उसने बहुत सावधान होकर लिखा है, शायद उसे भय था कि कहीं चिढ़कर मैं फेंक न दूँ; बरन् आदि से अन्त तक सब सहूलियत से पढ़ सकूँ।

आचार और आचरण में राजलक्ष्मी उस युग को प्राणी हैं। प्रणय-निवेदन की अत्यधिकता तो दूर की बात है, यह भी याद नहीं आता कि उसने कभी मेरे सामने 'प्रेम करती हूँ', ऐसी बात उच्चारण किया हो। उसने चिठ्ठी लिखी है मेरी प्रार्थना के अनुकूल अनुमति लेकर। तो भी, न मालूम क्या है, पढ़ने में मानो एक प्रकार का भय होने लगा। उसके बाल्यकाल की बात याद आ गयी। उस दिन गुरुमहाशय की पाठशाला में उसका लिखना पढ़ना बन्द हो गया था। बाद के समय में, घर पर ही रहकर सम्भव है कि उसने मामूली तौर से कुछ विद्याभ्यास कर लियो हो। अतएव, भाषा का इन्द्रजाल, शब्दों की झंकार, पदविन्यास की माधुरी की उसके पत्र में आशा करना अन्याय है। साधारण रीति से सदा प्रचलित साधारण कुछ बातों में ही अपने मन का भाव व्यक्त करने के अतिरिक्त और वह क्या करेगी? एक अनुमति देकर मामूली शुभकामना प्रकट करके दो लाइनें लिखी होंगी,—यही तो? किन्तु लिफाफा खोलकर पढ़ना शुरू किया तो कुछ क्षण के लिए बाहर का और कुछ भी याद न रहा। पत्र लम्बा नहीं है, किन्तु भाषा और भाव जितना सहज और सरल समझ लिया था, उतना नहीं है। मेरे आवेदन का उत्तर उसने इस तरह दिया है—

काशीधाम

"प्रणाम के उपरान्त सेविका का निवेदन!

तुम्हारी चिट्ठी इस बार लेकर एक सौ बार पढ़ डाली, तो भी यह बात समझ में नहीं आयी कि तुम पागल हो गये हो या मैं पागल हो गई हूँ। शायद तुमने यही सोचा है कि मैंने अचानक तुम्हें कहीं पड़ा हुआ पा लिया था? मैंने तुमको कहीं पड़ा हुआ नहीं, आराधना से बड़ी तपस्या से पाया था। इसीलिए बिदा देने के मालिक तुम नहीं हो। मुझे त्याग करने का मालिकाना स्वत्वाधिकार तुम्हारे हाथो में नहीं है।

फूलों के बदले में, बन से करौंदे तोड़ कर उनसे माला गूँथकर किस शैशवकाल में तुम्हें वरण किया था, यह बात तुम्हें याद नहीं है। कांटे में हाथ लग जाने से खून बहने लगता था। लाल माला का वह लाल रंग तुम नहीं पहिचान सके। बालिका की पूजा का अर्घ्य उस दिन तुम्हारे गले में था, तुम्हारे हृदय' पर रक्तरेखा से जो लेखा अंकित कर देती थी, वह तुम्हारी दृष्टि में नहीं पड़ी, किन्तु जिसकी दृष्टि में संसार का कुछ भी बाद नहीं पड़ सकता, उनके पादपद्मों में मेरा वह निवेदन पहुँच गया था।

उसके बाद आई दुर्योग की रात। काले बादलों ने मेरे आकाश की ज्योत्स्ना ढँक दी। किन्तु वह सचमुच हो मैं हूँ या और कोई इस जीवन में यथार्थ रूप में ही वे सब घटनाएँ घटी थीं, या सोते सोते सपना देख रही थी—इन पर सोचते ही अनेक समय मुझे भय लगता है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं पागल हो जाऊँ। तब सब को भूलकर जिसे ध्यान करने वैठती हूँ, उसका नाम नहीं लिया जाता। किसी से कहने की भी बात नहीं है। उनकी क्षमा ही मेरे जगदीश्वर की क्षमा है। इसमें भूल नहीं है, सन्देह नहीं है, यहाँ मैं निर्भय हूँ।

हाँ, मैं कह रही थी कि इसके बाद मेरे दुर्दिन की रात आई। किन्तु वही क्या मनुष्य का पूरा परिचय है। उस अखण्ड ग्लानि के निरवकाश आवरण के बाहर उसका क्या और कुछ बाकी नहीं है?

अव्याहत अपराध के बीच बीच उसे मैंने बार बार देखा है। यदि ऐसा न होता, विगत दिनों का राक्षस यदि मेरे समस्त अनागत मंगल को निःशेष निगल जाता तो तुमको मैं फिर वापस कैसे पा लेती? मेरे हाथों में लाकर फिर तुम्हें कौन दे जाता? मुझसे तुम उम्र में चार पाँच वर्ष के बड़े हो तो भी तुमको जो अच्छा लगता है, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं बंगाली घर की लड़की हूँ, जीवन के सत्ताईस वर्ष पार कर चुकने के बाद अब मैं यौवन का दावा नहीं करती। मुझे तुम गलत मत समझना,—जितनी ही अधम क्यों न होऊँ यदि वह बात क्षणभर के लिए भी घुणाक्षर न्याय से तुम्हारे मन में आये, तो उससे बढ़कर लज्जा की बात मेरे लिए दूसरी नहीं है। बंकू जीवित रहे, वह बड़ा हो गया है, उसकी बहू आ गई है, तुम्हारे ब्याह के बाद उन लोगों के सामने मैं किस मुँह से बाहर निकलूँगी? यह अपमान कैसे सहूँगी?

यदि तुम कभी बीमार पड़ो तो तुम्हारी सेवा कौन करेगा, पूँटू ? और मैं तुम्हारे मकान के बाहर से ही नौकर के मुँह से खबर लेकर लौट आउँगी ? इसके बाद भी जीवित रहने के लिए कहते हो क्या ?

शायद प्रश्न करोगे, तो क्या चिर काल तक ही ऐसा निःसंग जीवन काटूँगा ? किन्तु प्रश्न जो कुछ भी क्यों न हो, इसका उत्तर देने का दायित्व मेरे ऊपर नहीं है, तुम्हारे ऊपर है। किन्तु तो भी यदि तुम बिलकुल ही न सोच सको, बुद्धि का इतना अधिक क्षय हो गया हो, तो मैं उधार दे सकती हूँ, वह लौटानी न पड़ेगी, किन्तु देखना ऋण अस्वीकार मत करना।

तुम सोचते हो कि गुरुदेव ने मुझे मुक्ति का मंत्र दिया है, शास्त्रों ने पथ का सन्धान दिया है, सुनन्दा ने धर्म की प्रवृत्ति दी है, और तुमने दिया है केवल भार, बोझ। इसी तरह के अन्धे तुम लोग हो।

पूछती हूँ, तुम्हें तो मैंने तेईस वर्ष की उम्र में पा लिया था, किन्तु उसके पहले ये सब लोग कहाँ थे ? तुम इतना सोच सकते हो, और यह नहीं सोच सकते ?

आशा लगी थी कि एक दिन मेरा पाप नष्ट हो जायगा, मैं निष्पाप हो जाऊँगी। यह लोभ क्यों है जानते हो ? स्वर्ग के लिए नहीं, मुझे वह नहीं चाहिए। मेरी कामना है कि मरने के बाद फिर आकर जन्म ले सकूँ। क्या समझ सकते हो कि इसका अर्थ क्या है ?

सोचा था कि पानी की धारा कीचड़ से धुल गई है। उसे निर्मल मुझे करना ही पड़ेगा। किन्तु आज यदि उसका उद्गम स्थान ही सूख जाय, तो पड़ी रह जायगी मेरी पूजा अर्चना, पड़ा रह जायगा जपतप, रह जायगी सुनन्दा रह जायँगे मेरे गुरुदेव।

स्वेच्छा से मैं मृत्यु नहीं चाहती। किन्तु यदि मेरा अपमान करने का जाल रच चुके हो तो उस बुद्धि को छोड़ दो। तुम विष दोगे तो मैं ले लूँगी, किन्तु उसे न ले सकूँगी। मुझे जानते हो, इसीलिए बता दिया कि जो सूर्य डूब जायगा, उसके पुनः उदय होने की प्रतीक्षा में बैठे रहने का अब मुझे समय नहीं मिलेगा। इति—

—राजलक्ष्मी।"

छुटकारा मिला। सुनिश्चित कठोर अनुशासन का परम पत्र भेजकर, उसने एक तरफ तो मुझे एकदम निश्चिन्त कर दिया। इस जीवन में उस विषय को

लेकर सोचने के लिए और कुछ नहीं रह गया। किन्तु निःसंशय रूप से यही जान गया कि क्या क्या न कर सकूँगा। किन्तु इसके बाद मुझे क्या करना चाहिए इस सम्बन्ध में राजलक्ष्मी बिलकुल चुप है। शायद, उपदेश देकर और चिट्ठी लिखेगी, अथवा सशरीर मुझे ही तलब करेगी, किन्तु इस समय के लिए जो व्यवस्था हो गई है, वह बहुत ही सुन्दर है। इधर बाबा महोदय सम्भवतः कल सवेरे ही आकर उपस्थित हो जायँगे। उन्हें भरोसा दे आया हूँ कि घबड़ाने की जरूरत नहीं है अनुमति मिलने में विघ्न न होगा। किन्तु जो कुछ आ पहुँचा, वह निर्विघ्न अनुमति ही है। रतन नाई के हाथ उसने वस्त्र और मौर मुकुट नहीं भेज दिया, यही बहुत है।

उस तरफ गाँव के मकान में विवाह का आयोजन अवश्य ही अग्रसर हो रहा होगा। पूंटू के आत्मीय स्वजनों में से भी शायद कोई कोई आकर उपस्थित हो रहे होंगे और प्राप्तवयस्का अपराधिनी लड़की शायद इतने दिनों की लांछना और भर्त्सना के बदले कुछ आदर का मुँह देख रही होगी। यह जानता हूं कि बाबा से क्या कहूँगा। पर वह बात किस तरह कहूंगा, यह सोचकर स्थिर न कर सका। उनके निर्मम तकाजों और लज्जाहीन युक्तियों और वकालत की मन ही मन आलोचना करके, एक तरफ हृदय जितना तिक्त हो उठा, दूसरी तरफ उनके व्यर्थ लौटने से निराशा में पड़े हुए परिवारवालों के उस अभागिनी लड़की पर और अधिक उत्पीडन होने की बात सोचते ही हृदय को उतनी ही व्यथा पहुँची। किन्तु उपाय क्या है? बिछौने पर लेट कर बड़ी रात तक जागता रहा। पूंटू की बात भूलने में देर न लगी, पर निरन्तर गंगा-माटी की बात याद आने लगी। जनविरल उस क्षुद्र गाँव की स्मृति कभी मिट नहीं सकती। इस जीवन की गंगा-यमुना धारा एक दिन यहाँ आकर मिली है और थोड़े समय तक आसपास प्रवाहित होकर एक दिन यहाँ ही अलग हुई थी। एक साथ रहने के वे क्षणस्थायी दिन श्रद्धा से गहरे, स्नेह से मधुर, आनन्द से उज्ज्वल और उनकी ही तरह निःशब्द वेदना से अतिशय स्तब्ध हैं। विच्छेद के दिन भी हमने प्रवंचना की निन्दा से एक दूसरे से कलंक लिप्त नहीं किया, लाभ हानि के व्यर्थ के वादप्रतिवाद से गंगा माटी के शान्त गृह को हम धुएँ से आच्छन्न करके नहीं आये। वहाँ के सभी जानते हैं कि फिर एक दिन हम लौट आयेंगे, फिर आमोद-प्रमोद शुरू होगा. और फिर शुरू होगी भू-स्वामिनी की

दीन दुखियों की सेवा और सत्कार। किन्तु वह सम्भावना तो समाप्त हो गइ है। प्रभात की विकसित मल्लिका दिन के अन्त का हुक्म मानकर चुप हो गई है. यह बात वे स्वप्न में भी नहीं सोचते।

आँखों में नींद नहीं है, निद्रा हीन रजनी प्रातःकाल की ओर जितनी ही लुढ़कती आने लगी, उतनी ही इच्छा होने लगी यह रात कभी खतम ही न हो। यही एक मात्र चिन्ता ही मानो मुझे मोहाच्छन्न करके रखती रही।

विगत कहानी घूम-घूमकर याद आ जाती है, वीरभूम जिले की वह तुच्छ कुटिया मन पर भूत की तरह दबाव डाल बैठती है। प्रतिक्षण गृह कार्यों में लगी हुई राजलक्ष्मी के दोनों स्निग्ध हाथ आँखों के सामने स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। 'इस जीवन में परितृप्ति का आस्वादन इस प्रकार कभी किया है या नहीं, यह बात याद नहीं आती।

इतने दिनों तक पकड़ा ही जाता रहा हूं पकड़ नहीं सका हूँ। किन्तु आज यह पकड़ ली गई कि राजलक्ष्मी की सबसे बड़ी कमजोरी कहां है। वह जानती है कि मैं स्वस्थ नहीं हूँ, किसी भी दिन बीमार पड़ सकता हूं। तब न मालूम कहाँ की एक पूंट्ट मुझे घेर कर शय्या छेंक कर बैठी है. राजलक्ष्मी का कोई प्रभुत्व ही नहीं है, इतनी बड़ी दुर्घटना को वह अपने मन में स्थान ही नहीं दे सकती। संसार की सभी वस्तुओं से ही वह अपने को वंचित कर सकती है, किन्तु यह वस्तु असम्भव है, यह उसके लिए असाध्य है। मृत्यु तुच्छ है, इसके निकट एक ओर रह गये उसके गुरुदेव और एक ओर रह गये उसके जप तप व्रत-उपवास। चिट्ठी में उसने मुझे झूठा भय नहीं दिखाया है।

प्रातःकाल मैं शायद सो गया था, रतन की पुकार से जब जाग उठा तब काफी दिन चढ़ आया था। उसने कहा, "न मालूम कौन एक वृद्ध घोड़ागाड़ी पर सवार होकर अभी आये हैं।"

वे तो बाबा हैं किन्तु गाड़ी किराया करके? सन्देह पैदा हो गया।

रतन ने कहा, "साथ में एक सत्रह अठारह साल की लड़की है।"

यह तो पूंट्ट है। यह निर्लज्ज मनुष्य उसे कलकत्ते के डेरे तक भी घसीट लाया है! प्रातःकाल का प्रकाश तिक्तता से मलिन हो गया। बोला, "उन्हें इस

कमरे में लाकर बैठाओ रतन," मैं हाथ मुँह धोकर आता हूं, यह कहकर मैं नीचे के स्नानघर में चला गया।

एक घंटा के बाद मेरे लौट आने पर बाबा ने ही आदर पूर्वक मेरी अभ्यर्थना की, मानो मैं ही उनका अतिथि हूं. "आओ बेटा आओ। तबीयत खूब ठीक है न?"

मैंने प्रणाम किया। बाबा ने पुकार मचाई, 'पूंटू, तू कहाँ चली गई?'

पूंटू खिड़की के पास खड़ी होकर रास्ता देख रही थी, उसने पास आकर मुझे नमस्कार किया।

बाबा ने कहा, 'इसकी बूआ विवाह के पहले इसे एक बार देखना चाहती हैं। फूफा तो हाकिम हैं, पाँच सौ रुपया मासिक वेतन पाते हैं, डायमण्डहारबर में तबादला हुआ है, घर गृहस्थी छोड़कर बूआ को बाहर कहीं जाने का उपाय नहीं है। इसलिए साथ लेता आया। कह दिया कि दूसरे के हाथ में सौंपने के पहले उसे एक बार दिखा लाऊँ। इसकी दादी मां ने आशीर्वाद देकर कहा, "पूंटू, ऐसा ही भाग्य तेरा भी हो।"

मेरे कुछ कहने के पहले वे स्वयं ही बोले, "किन्तु मैं सहज में ही नहीं छोड़ूँगा भैया। हाकिम ही हों, और जो कुछ भी क्यों न हों रिश्तेदार ही तो हैं, खड़े रहकर काम पूरा करना होगा, तभी उनको छुट्टी मिलेगी। जानते ही तो हो बेटा, शुभ कार्य में बहुत विघ्न होते हैं, शास्त्र में भी लिखा है—श्रेयांसि बहु विघ्नानि। ऐसे एक आदमी के खड़े रहने पर किसी को चूँ तक करने की हिम्मत न होगी। हमारे गाँव के लोगों को तो विश्वास नहीं है, वे सब कुछ कर सकते हैं। पर वे तो हाकिम हैं, उनकी तो राशि ही अलग है।"

पूंटू के फूफा हाकिम हैं। समाचार अप्रासंगिक नहीं है। मतलब का है।

नया हुक्का खरीद लाकर रतन यत्नपूर्वक तम्बाकू चढ़ाकर दे गया। थोड़ी देर तक गौर से देख लेने पर बाबा ने कहा, "इस आदमी को कहीं मैंने देखा है, ऐसा ही मालूम हो रहा है न?"

रतन ने तुरत ही कहा, "जी हाँ, जरूर ही देखा है, गाँव के मकान में, जब बाबू बीमार थे।"

'ओ, तभी तो कहता हूं कि यह मुँह तो परिचित है।

"जी हाँ।" यह कहकर रतन चला गया।

बाबा का मुँह अत्यन्त गम्भीर हो उठा। वे अत्यन्त धूर्त मनुष्य हैं, शायद सब बातें ही उन्हें याद आ गईं। चुपचाप तम्बाकू का दम लगाते लगाते बोले, "घर से निकलने के समय दिन दिखाकर आया था। बहुत अच्छा दिन है। मेरी इच्छा है कि आशीर्वाद का काम इसी तरह पूरा करके जाऊँ। नूतन बाजार में तो सभी चीजें बिकती हैं। नौकर को एक बार भेज देने से काम न चलेगा? क्या कहते हो?"

कुछ भी जब कहने को न मिला तो किसी तरह केवल कह दिया, "नहीं।"

"नहीं? नहीं क्यों? बारह बजे तक दिन बहुत अच्छा है। पंचांग है?"

मैंने कहा, "पंचांग की जरूरत नहीं। मैं विवाह न कर सकूँगा।"

बाबा ने हुक्के को दीवार से लगाकर रख दिया। चेहरा देखकर समझ गया कि युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं। गले को बहुत शान्त और गम्भीर बनाकर उन्होंने कहा, "उद्योग आयोजन तो एक तरह से पूरा ही हो गया है कहना चाहिए। लड़की के विवाह की बात है, हँसी मजाक का मामला तो नहीं है। वचन दे आने पर अब नहीं कहने से कैसे काम चलेगा।"

पूंटू पीछे की तरफ घूमकर खिड़की से बाहर की तरफ देख रही है और दरवाजे की आड़ में रतन कान लगाये खड़ा है, यह अच्छी तरह जानता हूं।

मैंने कहा, "वचन देकर तो नहीं आया था। यह आप भी जानते हैं और मैं भी। कहा था कि एक व्यक्ति की अमुमति मिल जाने पर राजी हो सकता हूँ।

"अनुमति नहीं मिली?"

"नहीं।"

एक क्षण रुक कर बाबा ने कहा, "पूंटू के बाप कहते हैं कि सब मिलाकर वे एक हजार रुपये देंगे। जोर अधिक लगाने पर और दो एक सौ तक बढ़ सकता है। क्या कहते हो?"

रतन ने कमरे में घुसकर कहा, "तम्बाकू क्या एक बार फिर बदल दूँ।"

"बदल दो। तुम्हारा नाम क्या है जी?"

"रतन।"

"रतन? बड़ा सुन्दर नाम है, कहां रहते हो?"

"काशी में।"

"काशी? देवीजी शायद इन दिनों काशी में ही रहती हैं? वहां क्या करती हैं?"

रतन ने मुँह ऊपर उठा कर कहा, "उस खबर से आपको क्या जरूरत है?"

बाबा जरा हँसकर बोले, "नाराज क्यों होते हो भाई, क्रोध करने की तो कोई बात नहीं है। गांव की लड़की है न, इसीलिए खबर जानने की इच्छा होती है। शायद कभी उसके पास चला जाना पड़े। अच्छा, वह अच्छी तरह है तो?"

रतन उत्तर न देकर ही चला गया, और कोई दो मिनट के बाद ही चिलम को फूँकता हुआ लौट आया और हुक्का उनके हाथ में देकर चला जा रहा था कि बाबा जोर से कई दम लगाकर उठ खड़े हुए। बोले, "ठहरो तो भाई, जरा पाखाना एक बार दिखा दो। सवेरे घर से निकल पड़ा था न!" कहते कहते वे रतन के पहले ही तेजी से कदम बढ़ा कर कमरे से बाहर निकल गये।

पूंटू ने मुँह फेर कर देखा और कहा। "बाबा की बातों पर आप विश्वास मत कीजिएगा। बाबू जी हजार रुपया कहां पावेंगे कि देंगे? इसी तरह दूसरों के गहने उधार मँगाकर बहिन का विवाह किया था, फल यह हुआ कि वे लोग अब बहिन को नहीं बुलाते। वे कहते हैं कि लड़के का दूसरा विवाह करेंगे।"

इस लड़की ने इतनी बातें मुझसे पहले कभी नहीं की थीं। कुछ आश्चर्य में पड़कर पूछा, "तुम्हारे बाबूजी सचमुच क्या हजार रुपये नहीं दे सकते?"

पूंटू ने गर्दन हिलाकर कहा "कभी नहीं। बाबू जी रेलवे में केवल चालीस रुपये महीना पाते हैं। फीस के लिए रुपये न जुटने से मेरे छोटे भाई की पढ़ाई बन्द हो गई।" कहते कहते उसकी दोनों आँखें छलछला आईं।

प्रश्न किया, "क्या तुम्हारा विवाह केवल रुपये के कारण नहीं हो रहा है?"

पूंटू ने कहा,, "हाँ ऐसी ही बात है। हमारे गाँव के अमूल्य बाबू के साथ बाबूजी ने सम्बन्ध पक्का किया था। उनकी लड़कियाँ ही मुझसे अवस्था में बहुत बड़ी हैं। माँ पानी में डूबकर मरने गई थीं जिससे विवाह रुक गया। इस बार बाबूजी शायद किसी की भी बात न सुनेंगे, वहाँ ही मेरा विवाह कर देंगे।"

पूछा, "पूंटू, तुम क्या मुझे पसन्द करती हो?"

पूंटू ने लज्जा से मुँह जरा नीचा करके जरा सिर हिला दिया।

"किन्तु मैं भी तो तुमसे चौदह पन्द्रह वर्ष बड़ा हूँ।

पूंटू ने इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया।

पूछा, 'तुम्हारा क्या और कहीं कभी सम्बन्ध पक्का नहीं हुआ था?''

पूंटू ने मुँह ऊपर उठाकर खुश होकर कहा, "हुआ तो था। आप अपने गांव के कालीदास बाबू को जानते हैं? उनके छोटे लड़के ने बी० ए० पास किया है, उम्र में मुझसे केवल कुछ ही वर्षों का बड़ा है। उसका नाम शशधर है।

"उसे तुम पसन्द करती हो?"

पूंटू सहसा हंस पड़ी।

मैंने कहा, "किन्तु यदि शशधर तुमको पसन्द न करे?" पूंटू ने कहा, "क्या ऐसा हो सकता है। हमारे मकान के सामने से बराबर आया जाया करता था। रांगा दीदी हँसी में कहती थीं कि वह केवल मेरे लिए ही ऐसा करता था।"

"किन्तु यह विवाह क्यों नहीं हुआ?"

पूंटू का चेहरा मलिन हो गया, बोली, "उसके पिता हजार रुपये के गहने और हजार रुपये नकद माँगते थे। फिर विवाह में ऊपर से पाँच सौ रुपये भी खर्च न हो जाते बताइए तो? ऐसा तो जमींदारों की लड़कियों के लिए ही होता है। क्या यह बात सच नहीं है। वे लोग बड़े आदमी हैं, उनके पास बहुत रुपये हैं, मेरी मां उनके घर गई और बहुत हाथ पैर पकड़े, किन्तु उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया।"

"शशधर ने कुछ भी नहीं कहा?"

"नहीं, कुछ भी नहीं। किन्तु वह भी तो बहुत बड़ा नहीं है। उसके मां-बाप जीवित हैं न।"

यह ठीक है। शशधर का विवाह हो गया?"

पूंटू ने व्यग्र होकर कहा, "नहीं, अभी नहीं हुआ है, सुनती हूँ कि शीघ्र ही होगा।"

"अच्छा यदि तुम्हारा विवाह वहाँ हो जाय, और वे लोग तुमको प्यार न करें?"

"मुझे? क्यों प्यार न करेंगे। मैं तो रसोई पकाना, सिलाई करना, और गृहस्थी के सभी काम जानती हूँ। मैं अकेली ही उन लोगों का सब काम कर दूँगी।"

इससे अधिक बंगाली घराने की लड़की और क्या जानती है। शारीरिक परिश्रम

द्वारा ही वह सब अभाव पूरा करना चाहती है। पूछा, "उन लोगों का सब काम अवश्य करोगी तो ?"

"हाँ, अवश्य करूँगी।"

"तो तुम अपनी मां से जाकर कह दो कि श्रीकान्त दादा ढाई हजार रुपये भेज देंगे।"

"आप देंगे ? तब विवाह के दिन उपस्थित रहेंगे न, बताइए ?

"हाँ, उपस्थित भी होऊँगा।"

दरवाजे के छोर पर बाबा की आहट मिली। धोती के चुने हुए छोर से मुँह पोंछते पोंछते वे कमरे में आये। बोले. "पाखाना तो बहुत अच्छा है भैया ! सो जाने की इच्छा होती है। रतन कहां गया। और एक चिलम तम्बाकू भर लावे न ?"

४

संसार का सबसे बड़ा सत्य यह है कि मनुष्य को सदुपदेश देने से कभी फल प्राप्ति नहीं होती। सत् परामर्श किसी तरह भी कोई नहीं सुनता। किन्तु सत्य है ही, इस कारण दैवात् इसका व्यतिक्रम भी होता है। इस सम्बन्ध में एक घटना सुनाऊँगा।

बाबा ने दांत निकाल कर आशीर्वाद दिया और अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर चले गये। पूंटू ने बहुत पदधूलि लेकर आदेश का पालन किया, किन्तु उनके चले जाने पर मेरे परिताप की सीमा न रही। समूचा मन विद्रोही होकर केवल तिरस्कार करने लगा कि ये लोग कौन हैं कि विदेश में नौकरी करके बहुत काल से जो कुछ संचय किया है, वही दे डालूँगा। झोंक में आकर एक बात मुँह से निकाल दी तो क्या इसका यह मतलब है कि दाता कर्ण बन जाना होगा ? न मालूम कहां की इस लड़की ने रेलगाड़ी में बिना मांगे ही पेड़े और दही खिला कर मुझे तो अच्छा फन्दे में डाल दिया है। एक फन्दा काटने में एक और फन्दे में जकड़ गया। परित्राण का उपाय सोचने में माथा गरम हो गया और उस निरीह लड़की के प्रति क्रोध और विरक्ति की सीमा नहीं रही। और वह शैतान बाबा। इच्छा होने लगी कि वह

घर न पहुँचने पावे। रास्ते में ही सर्दी गरमी लगने से मर जाय। किन्तु यह आशा भित्तिहीन है। निश्चित रूप से जानता हूँ कि वह मनुष्य किसी तरह भी नहीं मरेगा. और जब एक बार उसे मेरे मकान का पता लग गया है तो फिर आयेगा, और जैसे ही क्यों न हो रुपये वसूल करेगा। हो सकता है कि इस बार वह उस हाकिम फूफा को भी साथ लावे। एक उपाय है—यः पलायति। टिकेट खरीदने गया, पर जहाज में स्थानाभाव, सभी टिकेट दोपहर के पहले ही बिक गये हैं, अतः दूसरे जहाज की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, उसके लिए अभी छः सात दिन लग जायँगे।

एक और उपाय है मकान बदल देना। बाबा खोजने पर भी न पावें। किन्तु इतना अच्छा मकान इतनी जल्दी कहाँ मिलेगा। किन्तु अवस्था इतनी विषम हो गई है कि अच्छे बुरे का प्रश्न ही अप्रासंगिक है—यथारण्यम् तथा गृहम्। शिकारी के हाथ से प्राण बचाने के लिए ऐसा ही करना पड़ेगा।

भय उत्पन्न हो गया कि कहीं मेरा यह गुप्त उद्वेग रतन की दृष्टि में न पड़ जाय। किन्तु आफत तो यह है कि वह यहां से हिलना भी नहीं चाहता, काशी की अपेक्षा कलकत्ता ही उसको अधिक अच्छा मालूम होने लगा है। पूछा, "चिट्ठी का जवाब लेकर क्या तुम कल ही जाना चाहते हो, रतन ?"

रतन ने तुरत ही उत्तर दिया, "जी नहीं। आज दोपहर को मैंने मां को एक पोस्टकार्ड लिख दिया कि मुझे दो-पाँच दिनों की देर होगी। मृत सोसाइटी और जीवित सोसाइटी (अजायब खाना और चिड़ियाघर) बिना देखे न आऊँगा. अब फिर कब आना होगा, इसका तो कोई ठिकाना नहीं।"

मैंने कहा, "किन्तु वे तो घबड़ा सकती हैं।"

"जी नहीं। यह लिख दिया है कि गाड़ी में जो धक्के लगे थे उनको अभी मिटा न सका हूँ।"

"किन्तु चिट्ठी का जवाब ?"

"जी, दीजिए न। कल ही रजिस्ट्री से भेज दूँगा। उस मकान में मां को चिट्ठी खोलने का साहस यम भी नहीं करेगा।"

चुपचाप बैठा रहा। नाई बच्चे के सामने कोई भी युक्ति काम न कर सकी। उसने सभी प्रस्ताव रद कर दिये।

जाते समय बाबा रुपये की बात का प्रचार कर ही गये थे। चित्त की उदारता

या सरलता की अधिकता से उन्होंने ऐसा किया, इस तरह का खयाल कोई न कर ले। वे गवाह रख गये हैं।

रतन ने ठीक इसी बात की चर्चा छेड़ दी, बोला—"यदि आप कुछ बुरा न मानें तो एक बात कहूँ बाबू।"

"क्या बात रतन?"

रतन ने कुछ दुबिधा में पड़कर कहा, "ढाई हजार रुपये तो कम रकम नहीं है बाबू, वे कौन होते हैं कि उनकी लड़की के विवाह में इतना रुपया व्यर्थ ही में देने को कहा। इसके अलावा बाबा हो या और कुछ हो वह बूढ़ा अच्छा आदमी नहीं है। उसे ऐसी बात कहना अच्छा काम नहीं हुआ बाबू।"

उसका मन्तव्य सुनकर जैसे अनिर्वचनीय आनन्द मिला, वैसे ही मन को जोर भी मिला, मैं तो यह चाहता था।

तथापि अपने कण्ठस्वर में जरा सा सन्देह का आभास देकर बोला, "कहना ठीक नहीं हुआ, क्यों रतन?"

रतन बोला, "अवश्य ही ठीक नहीं हुआ बाबू। रुपये भी तो कम नहीं हैं, इसके अलावा ऐसा काम किस लिए, बताइए तो?"

"ठीक तो है। अब तो नहीं देंगे।"

आश्चर्य से थोड़ी देर तक देखने के बाद उसने कहा, "वह छोड़ेगा क्यों?"

मैंने कहा, "नहीं छोड़ेगा तो क्या करेगा? लिखकर तो कुछ दिया नहीं है। और उस समय तक मैं यहाँ रहूँगा या चला जाऊँगा, यही कौन जानता है।"

रतन क्षणभर तक चुप रहकर जरा हँसा, बोला, "आप बूढ़े को पहचान नहीं सके बाबू। उन लोगों में लाज शर्म और मान अपमान का खयाल नहीं है। रो-धोकर भीख मांगकर भी क्यों न हो, या डरा धमका कर जुल्म करके ही क्यों न हो, रुपये तो वह लेगा ही। आप से मुलाकात न होने पर वह लड़की को साथ लेकर काशी जायगा और मां से रुपया वसूल करके ही छोड़ेगा। मां को बड़ी लज्जा मालूम होगी। ऐसा करना तो ठीक न होगा।"

सुनकर निस्तब्ध हो बैठा रहा। रतन मुझसे बहुत अधिक बुद्धिमान है। अर्थ-हीन आकस्मिक करुणा को हठ में पड़ने का जुरमाना मुझे देना ही पड़ेगा। निस्तार नहीं है।

रतन ने गांव के बाबा को पहचानने में गलती नहीं की, यह बात तब समझ में आई, जब कि चौथे दिन वे लौट आये। केवल आशा यह थी कि इस बार हाकिम फूफा जी भी साथ अवश्य ही आवेंगे, किन्तु अकेले ही आकर हाजिर हो गये। बोले, "दस गांवों में धन्य धन्य हो रहा है भैया, सभी कह रहे हैं कि कलि-युग में ऐसी बात कभी नहीं सुनाई पड़ती। गरीब ब्राह्मण की कन्या का ऐसा उद्धार करते कभी किसी ने नहीं देखा। आशीर्वाद करता हूँ कि चिरजीवी होओ।"

मैंने पूछा, "विवाह कब है ?"

"इस महीने की पच्चीस तारीख ठीक हुई है, बीच में केवल दस दिन बाकी हैं। कल देखना पक्का हो जायगा, आशीर्वाद,—तीन बज जाने के बाद मुहूर्त नहीं है, इसके भीतर ही सब शुभकार्य पूरे कर लेने होंगे। किन्तु तुम्हारे न जाने से सब काम रुके रहेंगे, कुछ भी न हो सकेगा। यह लो अपनी पूंटू की चिट्ठी, उसने अपने हाथ से लिखकर भेजी है। पर यह भी कह देता हूँ बेटा, जिस रत्न को तुमने अपनी इच्छा से खो दिया, उसकी जोड़ी कभी न पाओगे।' यह कहकर उन्होंने मुड़ा हुआ एक पीले रंग के कागज का टुकड़ा मेरे हाथों में दे दिया।

कुतूहलवश चिट्ठी पढ़ने की कोशिश की। बाबा ने अचानक एक लम्बी सांस खींचकर कहा, "कालिदास रुपयेवाला है तो क्या हुआ, बिलकुल नीच है,—चमार। उसके लिए आँख की लाज नाम की कोई चीज ही नहीं है। कल ही रुपया पैसा सब नकद चुकाना होगा। गहने आदि सब अपने सोनार से बनवायेगा। किसी पर उसको विश्वास नहीं है, यहाँ तक कि मुझ पर भी नहीं।"

उस मनुष्य में भारी खराबी है। बाबा तक का भी विश्वास नहीं करता।—आश्चर्य।

पूंटू ने अपने हाथ से पत्र लिखा है। एक पृष्ठ दो पृष्ठ नहीं, ठसाठस भरे चार पृष्ठ। चारों पृष्ठों में सकातर विनती है। ट्रेन में रांगा दीदी ने कहा था कि आजकल के नाटक-उपन्यास भी हार मान लें। केवल आजकल के नहीं, सब काल के नाटक-उपन्यास हार मान लेंगे, यह मैं अस्वीकार न करूँगा। इस बात पर विश्वास हो गया कि इस लिखने के प्रभाव से ही नन्दरानी का पति चौदह दिन की छुट्टी लेकर सातवें दिन ही आकर हाजिर हो गया था।

अतएव, मैं भी दूसरे दिन सवेरे ही रवाना हो गया। रुपये सचमुच

ही अपने साथ ले लिये, और बाबा ने अपनी आँखों के सामने इसकी जाँच कर ली कि मैं तोड़-मरोड़ कर प्रतारणा तो नहीं कर रहा हूँ। बोले, "रास्ता चलना जान कर, रुपये लेना गिनकर, हमलोग देवता तो नहीं हैं भाई, मनुष्य ही तो हैं, भूल होने में कितनी देर लगती है!"

सच ही तो है। रतन कल रात को हो काशी के लिए रवाना हो गया है। उसके हाथ चिट्ठी का जवाब भेज दिया है, लिख दिया है—तथास्तु। पता इस कारण न दे सका कि कोई ठीक नहीं है। इस त्रुटि के लिए अपने गुणों से क्षमा करने की भी प्रार्थना कर दी है।

यथा समय गाँव में पहुँचा, मकान के सब लोगों की दुश्चिन्ता दूर हो गई, जो आदर और सम्मान मिला, उसे बताने के लिए कोश में शब्द नहीं हैं।

देखने का काम पक्का करने और आशीर्वाद देने के उपलक्ष्य में कालिदास बाबू से परिचय हुआ। वे जैसे रूखे मिजाज के हैं वैसे ही दाम्भिक भी हैं। उनके पास बहुत रुपये हैं, इस बात को सर्वदा सबको स्मरण कराते रहने के अलावा कोई दूसरा काम उनके लिए इस जगत् में है, ऐसा मालूम नहीं हुआ। सब धन उनका कमाया हुआ है, दम्भ के साथ बोले,—'महाशय! भाग्य को मैं नहीं मानता, जो कुछ करूँगा सब अपने बाहुबल से। देवी देवताओं के अनुग्रह की भिक्षा भी मैं नहीं करता। मैं कहता हूँ कि दैव "दैव आलसी पुकारा'।"

बड़े आदमी होने के कारण और छोटे मोटे ताल्लुकेदार होने से गांव के प्रायः सभी आदमी उपस्थित थे और और शायद अधिकांश के वे महाजन थे, और दुर्दान्त महाजन थे। अतएव सबने ही एक स्वर से उनकी बातें स्वीकार कर लीं। तर्करत्न महाशय ने कोई संस्कृत का श्लोक सुनाया और आसपास से उनके सम्बन्ध में दो चार पुरानी कहानियों का भी सूत्रपात हुआ।

अपरिचित और मामूली आदमी समझ कर उन्होंने अवहेलना के साथ मेरी तरफ देखा। उस समय रुपये के शोक से मेरा हृदय जल रहा था, उस दृष्टि को मैं सहन न कर सका, एकएक बोल उठा, "यह तो नहीं जानता कि किस परिमाण में आपका बाहुबल है, पर मैं यह स्वीकार करता हूँ कि रुपया कमाने का जहाँ तक प्रश्न है, आपका भाग्य इस विषय में प्रबल है।"

"इसका क्या मतलब?"

मैंने कहा, "मतलब तो मैं स्वयं ही हूँ। न तो वर को पहचानता हूँ, न तो कन्या को ही, फिर भी रुपया मेरा खर्च हो रहा है और वह आपकी सन्दूक में घुसता चला जा रहा है। इसे भाग्य नहीं कहते तो किसको कहते हैं। आपने अब भी कहा कि आप देवी देवताओं का अनुग्रह नहीं लेते, किन्तु आपके लड़के के हाथ की अंगूठी से लेकर बहू के गले का हार तक मेरे अनुग्रह के दान से बनेगा। हो सकता है कि बहूभात खिलाने तक का खर्च भी मुझे ही जुटाना पड़े।"

कमरे में वज्रपात होने पर भी शायद सब लोग इतने व्याकुल और उत्तेजित न होते। बाबा ने न मालूम क्या सब कहने की कोशि की, किन्तु कुछ भी सुस्पष्ट या सुव्यक्त न हो सका। कालिदास बाबू ने क्रोधावेश में भीषण मूर्ति धारण करके कहा, "आप रुपये दे रहे हैं यह बात मैं किस तरह जान सकूँ? और दे ही क्यों रहे हैं?"

कहा, 'क्यों दे रहा हूँ यह आप नहीं समझ सकते। आपको समझाना भी नहीं चाहता। किन्तु, समूचे गांव के लोग सुन चुके हैं कि मैं रुपये दे रहा हूँ, केवल आपने ही नहीं सुना। लड़की की मां ने आपके घर के सब लोगों के हाथ पैर पकड़े, किन्तु आप ही बी० ए० पास लड़के का दाम ढाई हजार से एक पैसा भी काम करने को राजी नहीं हुए। लड़की का बाप चालीस रुपये महीने की नौकरी करता है। उसमें चालीस पैसे देने की भी शक्ति नहीं है, आपने इस पर विचार करके नहीं देखा कि आपके लड़के को खरीदने के लिए इतना रुपया अचानक वे कहाँ से पा गये? जो हो, लड़का बेचने के रुपये बहुत लोग लेते हैं, आप भी लें तो कोई अपराध नहीं मांना जा सकता। किन्तु इसके बाद कभी गांव के लोगों को मकान पर बुलाकर रुपयों का घमंड अब न कीजिएगा और एक बाहरी आदमी के भिक्षादान से लड़के का विवाह किया है इस बात को भी याद रखिएगा।"

उद्वेग और भय से सबका मुँह काला हो गया। शायद सभी ने सोचा कि इस बार कोई भयंकर घटना घटेगी और कालिदास बाबू फाटक बन्द करवाकर, सबको लाठियों से पीटे बिना किसी को भी घर न वापस जाने देंगे।

किन्तु थोड़ी देर तक चुप बैठे रहने के बाद मुँह ऊपर उठाकर उन्होंने कहा, "मैं रुपये नहीं लूँगा।"

मैंने कहा, "इसका अर्थ यह है कि आप लड़के का विवाह यहाँ नहीं करेंगे।"

कालिदास बाबू ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, ऐसी बात नहीं, मैंने विवाह का वचन दिया है, इसमें कुछ हेर फेर न होगा। कालिदास मुखर्जी अपनी बात के खिलाफ काम नहीं करता। आपका नाम क्या है?"

बाबा ने व्यग्र कण्ठ से मेरा परिचय दिया। कालिदास बाबू ने पहचान कर कहा, "ओः, ठीक है। इनके बाप के साथ ही तो एक बार मेरा बहुत जबर्दस्त फौजदारी मामला चला था?"

बाबा ने कहा, 'जी हाँ, आप कुछ भी नहीं भूलते, यह उनका ही लड़का है, रिश्ते में मेरा भी नाती लगता है।"

कालिदासबाबू ने प्रसन्न कण्ठ से कहा, "अच्छा, ऐसा ही सही! मेरा बड़ा लड़का जीवित रहता तो उसकी भी उम्र इतनी ही हुई होती। शशधर के विवाह में आना बेटा। मेरी ओर से उस दिन के लिए तुमको निमन्त्रण रहा।"

शशधर उपस्थित था, उसने केवल कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मेरी तरफ एक बार देखा और फिर तुरत ही मुँह नीचा कर लिया।

मैंने उठ कर प्रणाम किया। कहा, "जहाँ ही क्यों न रहूँ, कम से कम बहूभात के दिन आकर नववधू के हाथ का अन्न खा जाऊँगा। किन्तु मैंने बहुत सी कड़ी बातें कही हैं आप मुझे क्षमा करें।"

कालिदास बाबू ने कहा, "सच है कि तुमने कड़ी बातें कही हैं, किन्तु मैंने क्षमा भी कर दिया है। किन्तु अभी उठ कर चले जाने से काम न चलेगा, श्रीकान्त, शुभ कार्य के उपलक्ष्य में मैंने थोड़ा सा खाने पीने का भी आयोजन कर रखा है। तुम्हें खाकर जाना होगा।"

"आपकी जैसी आज्ञा होगी, वैसा ही करूँगा।" यह कह कर मैं फिर बैठ गया।

उस दिन पात्र को आशीर्वाद देने के कार्य से लेकर समागत अभ्यागतों को खिलाने पिलाने तक के सभी काम निर्विघ्न सुसम्पन्न हो गये। इस अध्याय के प्रारम्भ में सदुपदेश के सम्बन्ध में जिस नियम का मैंने उल्लेख किया था, पूँटू का विवाह उसके ही व्यतिक्रम का एक उदाहरण है। संसार में यही एक उदाहरण अपनी आँखों से देखा है। कारण निःसम्पर्कीय अपरिचित अभागी लड़की के बाप का कान ऐंठते ही जहाँ रुपये वसूल होते हैं, वहाँ, वैष्णव बन कर हाथ जोड़ने से

बाघ के ग्रास से निस्तार नहीं मिलता। निष्ठुर और निर्दय कह कर, गाली गलौज करके, समाज और भाग्य को धिक्कारने पर, किंचित् क्षोभ मिट सकता है, किन्तु प्रतिकार नहीं मिलता। क्योंकि वर के बाप के हाथ में प्रतिकार नहीं है, यह तो लड़की के बाप के हाथ में है।

५

गौहर की खोज में आने पर नवीन से मुलाकात हुई। वह मुझे देख कर खुश हुआ, किन्तु उसका मिजाज बहुत रूखा था। बोला, "जाकर वैष्णवों के अड्डे पर देखिए। कल से तो उनका घर पर आना ही नहीं हुआ।"

"यह कैसी बात है नवीन। वैष्णवी कहां से आ गई।"

"क्या एक ही है एक दल ही आ जुटा है।"

"वे कहाँ रहती हैं ?"

"वही तो मुरारीपुर के अखाड़े में। यह कह कर नवीन ने एकाएक एक लम्बी साँस खींच ली, बोला, "हाय बाबू, अब न वे तो राम हैं, और न वह अयोध्या ही है। वृद्ध मथुरादास बाबाजी मर गये, और उनकी जगह पर एक छोकरा वैरागी आ गया। उसकी कोई चार गंडे सेवा दासियाँ हैं। द्वारिकादास वैरागी से हमारे बाबू की बड़ी मित्रता है,—वहीं तो प्रायः रहते हैं।" आश्चर्य में पड़ कर पूछा, "किन्तु तुम्हारे बाबू तो मुसलमान हैं, वैष्णव वैरागी अपने अखाड़े में उसे रहने कैसे देंगे ?"

नवीन ने रंज होकर कहा, "इन सब आउल बाउल साधुओं को क्या धर्माधर्मज्ञान है ? वे सब जाति जन्म कुछ भी नहीं मानते। जो कोई भी उनके साथ जा मिलता है, वे अपने दल में खींच लेते हैं, सोच विचार कुछ भी नहीं करते।"

पूछा "किन्तु उस बार जब मैं तुम्हारे यहाँ छः सात दिन रहा, तब तो गौहरने उनके बारे में कुछ भी नहीं कहा ?"

नवीन ने कहा, "कहते तब तो कमललता के गुण अवगुण प्रकट हो जाते।

उन कई दिनों बाबू अखाड़े के पास भी नहीं गये। और ज्यों ही आप चले गये, त्यों कापी कागज कलम लिये अखाड़े में जा पहुँचे।''

प्रश्न करने पर मालूम किया कि द्वारिकादास बाउल गाना गाने और कवित्त रचना में सिद्धहस्त है। गौहर इस प्रलोभन में फँस गया है। उसको कविता सुनाता है, उससे अपनी गलतियों का संशोधन करा लेता है। और कमललता एक युवती वैष्णवी है. उसी अखाड़े में रहती है। वह देखने में अच्छी है। गाना अच्छा गाती है, उसकी बातें सुनने पर लोग मुग्ध हो जाते हैं। वैष्णव सेवा के लिए गौहर बीच बीच में रुपये पैसे भी देता है, अखाड़े की पुरानी दीवार जीर्ण होकर गिर गई थी, गौहर ने अपने खर्च से उसकी मरम्मत करा दी है। यह काम उनके सम्प्रदाय के लोगों से छिपा कर उसने चुपचाप ही किया है।

लड़कपन में इस अखाड़े के बारे में जो बातें सुनी थीं, वे मुझे याद पड़ीं। पुराने जमाने में महाप्रभु के एक भक्त शिष्य ने इस अखाड़े की स्थापना की थी, तब से शिष्य परम्परा के अनुसार वैष्णव साधु इसमें बास करते आ रहे हैं।

अत्यन्त कुतूहल हुआ। कहा, ''नवीन, मुझे एक बार अखाड़ा दिखा सकोगे?''

नवीन ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया, बोला, ''मुझे बहुत काम है और आप भी तो इसी देश के आदमी हैं, खोजकर स्वयं न जा सकेंगे? आध कोस से अधिक नहीं है, उस सामनेवाले रास्ते से सीधे उत्तर तरफ जाने से आप देख सकेंगे, किसी से पूछना न पड़ेगा। सामनेवाले पोखरे के नीचे बकुलके पेड़ के नीचे वृन्दाबन लीला हो रही है, दूर से ही कानों में आवाज पहुँच जायगी, सोचना नहीं पड़ेगा।''

मेरे जाने के प्रस्ताव को नवीन ने शुरू से ही पसन्द नहीं किया।

मैंने पूछा ''वहाँ क्या होता है, कीर्तन?''

नवीन ने कहा, ''हाँ, दिन रात। खँजड़ी और करताल को कभी अवकाश नहीं मिलता।''

हँसकर मैंने कहा, ''यह तो अच्छा ही है नवीन। जाऊँ, गौहर को पकड़ लाऊँ।''

इस बार नवीन भी हँस पड़ा, बोला, ''हाँ, जाइए। किन्तु देखिएगा, कमलीलता का कीर्तन सुनकर कहीं आप खुद ही न अटक जाइए।''

"देखूँ, क्या होता है।" कहकर हँसता हुआ कमललता वैष्णवी के अखाड़े में जाने के उद्देश्य से अपराह्न में चल दिया।

अखाड़े का पता जब मिला तब शायद शाम हो चुकी थी, दूर से कीर्तन या खँजड़ी करताल की ध्वनि मात्र भी सुनाई नहीं दी. पर पुराना बकुल वृक्ष दिखाई पड़ा, जिसके नीचे टूटी फूटी बेदी है, किन्तु किसी एक मनुष्य को भी मैंने वहाँ नहीं देखा। एक संकीर्ण मार्ग की रेखा टेढ़ी मेढ़ी होकर दीवार के पास से घिसती हुई नदी की तरफ चली गई है। अनुमान किया कि शायद उधर किसी का पता चले, अतएव उधर ही कदम बढ़ा दिया। मैंने गलती नहीं की. शीर्ण संकीर्ण सेवार से ढँकी नदी के किनारे एक साफ सुथरी गोबर से पुती हुई कुछ ऊँची भूमि पर गौहर और एक दूसरे व्यक्ति बैठे हैं,—अन्दाज लगाया कि ये ही वैरागी द्वारिकादास हैं, अखाड़े के वर्तमान अधिकारी हैं। नदी का किनारा होने के कारण तब तक भी वहाँ सन्ध्या का अन्धकार घना नहीं हुआ था। बाबाजी को बहुत साफ तौर से ही देख सका। यह मनुष्य देखने में भद्र और ऊँची जाति का ही जान पड़ा। वर्ण श्याम, दुबला पतला होने के कारण कुछ लम्बा मालूम होता है। माथे के बाल जूरे की भाँति सामने बँधे हुए हैं, दाढ़ी मूँछ ज्यादा नहीं, थोड़ी ही है, आँखों और मुँह में एक स्वाभाविक हँसी का भाव मौजूद है। उम्र का ठीक अन्दाज नहीं लगा सका, तो भी पैंतीस छत्तीस से ज्यादा मालूम कर सका। मेरे आगमन और उपस्थिति पर दोनों में से किसी ने भी लक्ष्य नहीं किया। दोनों ही नदी के उस पार पश्चिम दिगन्त में ताकते हुए स्तब्ध बने रहे। वहाँ नाना रंग और नाना आकार के बादलों के टुकड़ों के बीच क्षीण पीला तृतीया का चन्द्रमा है, और मानो ठीक उसके ही कपाल के बीच में अत्युज्ज्वल सान्ध्य तारा चमक रहा है। बहुत नीचे दिखाई दे रहीं हैं दूर ग्रामान्त की वृक्ष पंक्तियाँ, मानो उनका कहीं अन्त नहीं है, सीमा नहीं है। काले, सफेद, पीले, नाना रंगों के टूटे फूटे बादलों के शरीर पर तब तक भी अस्त होनेवाले सूर्य की शेष दीप्ति खेल रही थी, ठीक उसी तरह जिस तरह कि किसी दुष्ट लड़के के हाथ में रंग की तूलिका पड़ जाने से छबि का पूरा श्राद्ध हो रहा हो। उसका आनन्द क्षण काल के लिए था, क्योंकि चित्रकार ने आकर कान मल दिये और हाथ से तूलिका छीन ली।

उस स्वल्प जलवाली नदी का थोड़ासा अंश शायद गाँववालों ने साफ कर दिया

है। सामने के स्वच्छ काले और थोड़े पानी पर छोटी छोटी रेखाओं में चन्द्रमा और सान्ध्य ताराओं का प्रकाश आसपास पड़कर भिलमिला रहा है, मानो कसौटी पर घिसकर सोनार सोने के मूल्य की जाँच कर रहा हो। पास ही कहीं वन में शायद असंख्य वन मल्लिकाएँ खिली हैं, उनकी ही गन्ध से पूरी हवा भार हो उठी है और पास के ही किसी पेड़ पर के असंख्य बकुलों के घोंसलों से उनके बच्चों का एक स्वर से मिला हुआ चींचीं शब्द विचित्र मधुरता से कानों में अविराम आ कर प्रवेश कर रहा है। यह सब ठीक है और जो दो आदमी तद्‌गत चित्त से जड़ भरत की भाँति बैठे हुए हैं, वे भी कवि हैं. इसमें सन्देह नहीं। किन्तु यह सब देखने के लिए इस जंगल में सन्ध्या समय नहीं आया हूँ। नवीन ने कहा था कि वैष्णवियों का एक दल है और उस दल में सबसे श्रेष्ठ कमललता है, वह कहाँ है ?

पुकारा, "गौहर !"

गौहर ध्यान भंग कर हतबुद्धि की तरह मेरी तरफ ताकता रह गया।

बाबाजी ने उसे जरा ठेलकर कहा, ' गोसाई, ये ही तुम्हारे श्रीकान्त हैं न ?"

गौहर ने तेज कदम बढ़ाकर मुझे बड़े जोर से बाहुपाश में आबद्ध कर लिया। ऐसा हुआ कि मानो उसका वह आवेग रुकना ही न चाहता हो। किसी तरह अपने को मुक्त कर के मैं बैठ गया, बोला, "बाबाजी मुझे एकाएक कैसे पहचान गये ?"

बाबाजी ने हाथ हिलाया "यह नहीं होगा गोसाईं, क्रियापद का अन्तिम शब्द सम्भ्रमार्थ न रखकर, गये की जगह पर गया बोलना होगा, तभी रस जमेगा।"

मैंने कहा, 'अच्छा ऐसा ही किया। मान लो, किन्तु तुमने एकाएक मुझे कैसे पहचान लिया ?"

बाबाजी ने कहा, "एकाएक कैसे पहचानूँगा ? तुम तो वृन्दावन के हमारे परिचित मनुष्य हो गोसाईं, तुम्हारी दोनों आँखें तो रस की समुद्र हैं, उन्हें देखते ही आँखें भर जाती हैं। जिस दिन कमललता आई, उसकी भी दोनों आँखें ऐसी ही थीं, उसे देखते ही पहचान गया और बोल उठा 'कमललता, कमललता, इतने दिनों तक तू कहाँ थी ?' कमल आकर जो अपनी हो गई तो फिर उसका आदि अन्त, विरह विच्छेद नहीं रहा। यही तो साधना है गोसाईं, इसी को तो रसकी दीक्षा कहता हूँ।'

मैंने कहा, "कमललता को देखने के ही लिए तो आया हूँ गोसाईं, वह कहाँ है ?"

बाबा जी बहुत ही खुश हुए, बोले. "तुम उसको देखोगे ? किन्तु गोसाईं, वह तो तुम्हारी अपरिचित नहीं है तुमने उसे अनेक बार देखा है, शायद भूल गये हो, पर देखते ही पहचान जाओगे कि वह कमललता है। गोसाईं, उसे एकबार बुलाओ न।" यह कहकर बाबा जी ने गौहर को पुकारने का इशारा किया। इनके निकट सभी गोसाईं हैं। बोले, "जाकर कह दो कि श्रीकान्त तुम्हें देखने आया है।"

गौहर के चल जाने पर मैंने पूछा, "गोसाईं, मेरी सभी बातें शायद गौहर ने तुम्हें बता दी हैं ?"

बाबा जी ने सिर हिलाकर कहा "हां, सब बताया है।" उससे मैंने जब पूछा कि गोसाईं, तुम छः सात दिन क्यों नही आये ? उसने कहा, "श्रीकान्त आये थे, यह भी उसने कहा था कि शीघ्र ही फिर तुम आओगे। तुम बर्मा जाओगे यह भी जानता हूं।"

सुनकर स्वस्ति की साँस छोड़कर मन ही मन मैंने कहा, रक्षा मिले। यह भय उत्पन्न हुआ था कि किसी अलौकिक शक्ति के बल से मुझे देखते ही पहचान गये हैं। जो हो, इस सम्बन्ध में मेरे बारे में उनका अन्दाज गलत नहीं हुआ, यह तो मान ही लेना पड़ेगा।

बाबा जी अच्छे ही मालूम पड़े, कम से कम असाधु स्वभाव के तो नहीं मालूम हुए। बहुत ही सरल। बाबा जी ने यह सहज ही में स्वीकार कर लिया कि न मालूम क्यों इन लोगों से गौहर ने मेरी सभी बातें — अर्थात् जितना वह जानता है, कह दी हैं। कुछ सनकी मिजाज से, कविता और वैष्णव रसचर्चा में कुछ विभ्रान्त से मालूम हुए।

थोड़ी देर बाद ही गौहर गोसाईं के साथ कमललता आकर हाजिर हुई। उम्र तीस से अधिक न रही होगी, सांवला रंग, इकहरा शरीर, हाथ में कुछ चूड़ियाँ हैं, शायद पीतल की हैं —सोने की भी हो सकती हैं, बाल छोटे छोटे नहीं हैं, गिरह देकर पीठपर झूल रहे हैं गले में तुलसी की माला है, हाथ की थैली के भीतर भी तुलसी की जपमाला है। छाप छोप का बहुत ज्यादा आडम्बर नहीं है, अथवा हो सकता है कि सवेरे रहा हो, इस समय कुछ मिट गया है। इसके मुँह की तरफ

देखने पर किन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हो गया। विस्मय के साथ ऐसा मालूम हुआ मानो आँखों और मुँह का भाव मेरा परिचित है और चलने का ढंग भी मानो पहले कहीं देखा है।

वैष्णवी ने बोलना आरम्भ किया। तुरत ही समझ गया कि वह नीचे के स्तर की प्राणी नहीं है। उसने कुछ भी भूमिका नहीं बांधी, सीधे मेरी तरफ देखकर कहा, 'गोसाईं, पहचान सकते हो?''

मैंने कहा, ''नहीं, किन्तु ऐसा मालूम हो रहा है कि कहीं देखा है।''

वैष्णवी ने कहा, ''वृन्दावन में देखा था, बड़े गोसाईं जी से अबतक क्या खबर नहीं सुनी?''

मैंने कहा, ''सो तो सुन ली है, किन्तु मैं तो जन्म भर में कभी वृन्दावन नहीं गया।''

वैष्णवी ने कहा, ''जरूर गये हो, बहुत दिनों की बात है, इस कारण अचानक याद नहीं पड़ रही है। वहां गाय चराते, फल तोड़कर लाते, वनफूलों की माला गूँथकर हम लोगों के गले में पहनाते—क्या ये सब भूल गये?'' यह कहकर वह होठों को दबाकर धीरे धीरे हँसने लगी।

मैंने यह समझा कि मजाक कर रही है, किन्तु मेरा या बड़े गोसाईं जी का, यह ठीक न कर सका। बोली ''रात हो रही है, अब जंगल में क्यों बैठे हो? भीतर चलो।''

मैंने कहा, ''जंगल के रास्ते हमें बहुत दूर जाना होगा, कल फिर आयेंगे।''

वैष्णवी ने पूछा, ''यहां का पता किसने बताया? नवीन ने?''

''हां, उसीने।''

''कमललता की बात नहीं बताई!''

''हां, यह भी बताई थी।''

''वैष्णवी का जाल तोड़कर अचानक बाहर नहीं जाया जा सकता, इस सम्बन्ध में क्या तुमको उसने सावधान नहीं किया है?''

हँसते हुए मैंने कहा, 'हां, ऐसा भी किया है।

वैष्णवी हँस पड़ी, बोली, ''नवीन होशियार नाविक है। उसकी बात न मानकर तुमने अच्छा नहीं किया।''

"क्यों बताओ तो ?"

वैष्णवी ने इसका जवाब नहीं दिया, गौहर को दिखाकर कहा, "गोसाईं कहते हैं कि तुम नौकरी करने के लिए विदेश जा रहे हो। तुम्हारा तो कोई नहीं है, फिर नौकरी क्यों करोगे ?"

"तब क्या करूँगा ?"

"हम लोग जो करती हैं। गोविन्द जी का प्रसाद तो कोई छीन नहीं सकता।"

"यह जानता हूँ। किन्तु वैरागीगिरी मेरे लिए नई नहीं है।"

वैष्णवी हँस पड़ी, बोली, "शायद सहन नहीं कर सकते ?"

"नहीं, बहुत दिनों तक सहन नहीं कर सकता।"

वैष्णवी मुँह दबाकर हँस पड़ी, बोली, "तुम्हारा थोड़ा ही अच्छा है। भीतर आओ, उन लोगों से तुम्हारी जान पहचान करा दूँ। यहाँ कमल का वन है।"

"यह तो सुना है, किन्तु अन्धकार में लौटूँगा कैसे ?"

वैष्णवी फिर हँस पड़ी, बोली, "अँधेरे में हम लौटने ही क्यों देंगी ? अन्धेरा कट जायगा जी, अन्धेरा कट जायगा। तब जाना। आओ।"

"चलो।"

वैष्णवी ने कहा, "गौर ! गौर !"

'गौर गौर' कहते हुए अर्थात् गैरांग महाप्रभु या चैतन्य देव का नामोच्चारण करते करते मैंने भी अनुसरण किया।

६

यद्यपि धर्माचरण में मेरा मन नहीं लगता और विश्वास भी नहीं है, तो भी जिन लोगों को विश्वास है, उनको वाधा भी नहीं पहुंचाता। मन में बिना संशय के जानता हूँ कि इस गुरुतर विषय का ओर छोर कभी न खोज पाऊँगा। तथापि मैं धार्मिकों की भक्ति करता हूँ। विख्यात स्वामीजी और स्वख्यात साधुजी, किसी को भी छोटा बड़ा नहीं समझता, दोनों की वाणी मेरे कानों में समान मधुवर्षा करती है।

विशेषज्ञों के मुँह से सुना है कि बंगाल की आध्यात्मिक साधना का निगूढ़ रहस्य वैष्णव सम्प्रदाय में ही सुगुप्त है और वही बंगाल की शुद्ध अपनी चीज है। इसके पहले संन्यासियों और साधुओं का थोड़ा बहुत सत्‌संग किया है फललाभ का विवरण प्रकाशित करने की इच्छा नहीं है। किन्तु इस बार यदि दैवात् शुद्ध चीज भाग्य में बदा होती हो तो इस सुअवसर को व्यर्थ न जाने दूँगा ऐसा सकल्प कर लिया। पूंटू के बहूभात का निमंत्रण रखना ही पड़ेगा। कम से कम संगरहित कलकत्ते के मेस के बदले ये कई दिन वैष्णवी अखाड़े के आसपास कहीं बिता सकें तो और चाहे जो कुछ हो, जीवन के संचय में विशेष हानि न होगी।

भीतर आकर देखा कि कमललता का कहना झूठ नहीं है, वहाँ कमल का बन ही है, किन्तु दलित विदलित है। मत्त हाथियों से मुलाकात तो नहीं हुई, किन्तु उनके बहुत से पदचिह्न विद्यमान थे। वैष्णवियाँ विभिन्न उम्र की और तरह तरह के चेहरों की हैं और भिन्न भिन्न कामों में लगी हुई हैं। कोई दूध गरम कर रही है, कोई क्षीर बना रही है, कोई लड्डू तैयार कर रही है, कोई मैदा गूँद रही है, कोई फलमूल ठीकठाक कर रही है, यह सब ठाकुरजी के रात के भोग की तैयारियाँ हैं। एक अपेक्षाकृत कम उम्र की वैष्णवी ध्यानमग्न हो फूलों की माला गूँथ रही है और उसी के निकट बैठी हुई एक और वैष्णवी नाना रंग के छपे हुए छोटे छोटे कपड़ों के टुकड़े सावधानी से कुंचित करके सजा कर रख रही है। सम्भवतः श्री गोविन्दजी कल स्नान के बाद उन्हें पहनेंगे। कोई भी खाली बैठी हुई नहीं है। उनका काम में आग्रह और एकाग्रता देखने से आश्चर्य होता है। सभी ने मेरी ओर ताका पर निमेष मात्र के लिए। कौतुहल का अवसर नहीं है, सबके अष्ठाधर हिल रहे हैं, शायद मन ही मन नाम जप कर रही हैं, इधर दिन खतम हो चला है, एक एक करके दिये जलने शुरू हो गये हैं। कमललता ने कहा "चलो देवता को नमस्कार कर आवें। किन्तु अच्छा, तुमको क्या कह कर पुकारूँ, बताओ तो? नये गोसाईं कह कर पुकारूँ तो कैसा?"

मैंने कहा, "क्यों न होगा? तुम लोगों के यहां जब कि गौहर तक गौहर गोसाईं हो गया है, तब मैं तो कम से कम ब्राह्मण का लड़का हूँ। किन्तु मेरे अपने नाम ने क्या बुराई की है? उसी के साथ 'गोसाईं' जोड़ दो न।"

कमललता ने मुँह दबाकर हँसते हुए कहा, "ऐसा नहीं होता ठाकुर, वह नाम मैं नहीं ले सकती, अपराध होता है, आओ।"

"आता हूं। पर अपराध कैसा ?"

"कैसा यह सुनकर तुम क्या करोगे ? बड़े अच्छे आदमी हो !"

जो वैष्णवी माला गूँथ रही थी, वह हँस पड़ी और फिर उसने तुरत ही मुँह नीचा कर लिया।

ठाकुर जी की कोठरी में काले पत्थर और पीतल की राधाकृष्ण की युगल मूर्तियां हैं। एक नहीं हैं, कई हैं। यहां भी पांच छः वैष्णवियां काम में लगी हुई हैं। आरती का समय हो गया है, सांस लेने का भी अवकाश नहीं है।

भक्तिपूर्वक यथाविधि प्रणाम करके बाहर चला आया। ठाकुरजी के कमरे के अलावा अन्य सभी कमरे मिट्टी के हैं, किन्तु यत्नपूर्वक की गई सफाई की सीमा नहीं है, बिना आसन के कहीं भी बैठने में संकोच नहीं होता, तो भी कमललता ने पूरबवाले बरामदे में एक तरफ आसन बिछा दिया। बोली, "बैठो, तुम्हारे रहने का कमरा जरा ठीक कर आऊँ।"

"क्या मुझे आज यहीं रहना पड़ेगा ?"

"क्यों, डर क्या है ? मेरे रहते तुम्हें कष्ट न होगा।"

मैंने कहा, "कष्ट के लिए नहीं कहता, किन्तु गौहर तो नाराज हो जायगा।"

वैष्णवी ने कहा, "यह भार मेरे ऊपर है। मैं रखूँगी तो तुम्हारा मित्र जरा भी नाराज न होगा" यह कह कर वह हँसती हुई चली गई।

अकेला बैठ कर अन्य वैष्णवियों का काम देखने लगा, वास्तव में ही समय नष्ट करने का उनके पास जरा भी समय नहीं है। मेरी तरफ किसी ने घूम कर भी नहीं देखा। दस मिनट तक समय बीत जाने पर जब कमललता लौट आई तब काम खतम कर सभी चली गई थीं। पूछा, "तुम इस मठ की अधिकारिणी हो क्या ?"

कमललता ने जीभ काट कर कहा, "हम सभी गोविन्दजी की दासियाँ हैं, कोई छोटी बड़ी नहीं हैं। एक एक पर एक एक काम का भार है। मेरे ऊपर प्रभु ने यह भार दिया है।" यह कह कर उसने मन्दिर के उद्देश्य से हाथ जोड़ कर कपाल से लगा लिया। बोली, "ऐसी बात अब कभी मुँह से मत निकालना।"

मैंने कहा, "ऐसा ही होगा। अच्छा, बड़े गोसाईं और गौहर गोसाईं ये दोनों क्यों नहीं दिखाई दे रहे हैं।"

वैष्णवी ने कहा, "वे अब आते ही होंगे। नदी में स्नान करने गये हैं।"

"इतनी रात को? और इस नदी में?"

वैष्णवी ने कहा, "हाँ।"

"गौहर भी?"

"हाँ, गौहर गोसाईं भी।"

"किन्तु मुझे ही क्यों नहीं स्नान कराया।"

"वैष्णवी ने कहा, "हम लोग किसी को स्नान नहीं करातीं, वे स्वयं करते हैं। ठाकुर जी की दया होने पर तुम भी एक दिन करोगे, और उस दिन मना करने पर भी न मानोगे।"

मैंने कहा, "गौहर भाग्यवान है, किन्तु मेरे पास तो रुपया नहीं है, मैं गरीब आदमी हूँ, शायद ठाकुर जी की दया मेरे ऊपर न होगी।"

शायद वैष्णवी इशारा समझ गई और नाराज होकर कुछ कहना ही चाहती थी। पर कहा नहीं। इसके बाद बोली, "गौहर गोसाईं, कुछ भी हो, किन्तु तुम भी गरीब नहीं हो। जो आदमी अनेक रुपया देकर दूसरे की लड़की का उद्धार करता है, उसे तो ठाकुर जी गरीब नहीं मानते। तुम्हारे ऊपर भी दया होना आश्चर्य नहीं है।"

मैंने कहा, "तब तो वह भय की बात है, तो भी भाग्य में जो कुछ लिखा है वही होगा, टाला नहीं जा सकता। किन्तु पूछता हूँ कि कन्या-उद्धार करने की खबर तुम्हें कहां से मिली?"

वैष्णवी ने कहा, "हम लोगों को पांच घरों से भीख मांगनी पड़ती है, हम सभी खबरें सुनती रहती हैं।"

"किन्तु यह खबर शायद तुमको अभी नहीं मिली है कि रुपया देकर कन्यादान के भार से मुक्ति नहीं लेनी पड़ी।"

वैष्णवी कुछ विस्मित हुई, बोली, "नहीं, यह खबर तो नहीं मिली है, किन्तु क्या हुआ? क्या विवाह टूट गया?"

हँसकर मैंने कहा, "विवाह नहीं टूटा, किन्तु कालिदास बाबू टूट गये हैं, जो खुद वर के बाप ही हैं। दूसरे की भीख के दान से लड़का बेचने की रकम मिलने

पर उसे ग्रहण करने में उन्हें लज्जा मालूम हुई और इस प्रकार मैं भी बच गया। इतनी बातें कहकर मैंने सारा मामला संक्षेप में बता दिया। वैष्णवी ने आश्चर्य में पड़ कर कहा, यह क्या कहते हो जी. यह तो अनहोनी घटना हुई है।"

मैंने कहा "यह तो ठाकुरजी की कृपा है। क्या केवल गोहर गोसाईं जी ही अंधेरे में नदी के सड़े जल में डुबकियाँ लगायेगा संसार में और कहीं क्या कोई अनहोनी बात न होगी? उनकी लीला ही फिर कैसे प्रकट होगी बताओ तो?" इतनी कहकर ज्यों ही मैंने वैष्णवी का मुँह देखा समझ गया कि इतना बोल जाना मेरे लिए अच्छा नहीं हुआ, सीमा लांघ गया है। किन्तु वैष्णवी ने प्रतिवाद नहीं किया। केवल उसने हाथ उठाकर मन्दिर को लक्ष्य करके चुपचाप प्रणाम किया, मानो अपराध क्षमा करने की भीख माँगी।

सामने की ओर से एक वैष्णवी एक बड़ी थाली में पूडियाँ लिये हुए ठाकुरजी की कोठरी की तरफ गई। देखकर मैंने कहा, "आज तुम्हारे यहाँ समारोह है, शायद कोई खास पर्व का दिन है? नहीं?"

वैष्णवी ने कहा "नहीं, आज कोई पर्व का दिन नहीं है। यह तो हमारे यहाँ का प्रतिदिन का काम है. ठाकुरजी की कृपा से कभी किसी चीज की कमी नहीं पड़ती।"

मैंने कहा, "यह तो खुशी की बात है, किन्तु आयोजन शायद रात को ही ज्यादा होता है?"

वैष्णवी ने कहा "ऐसा भी नहीं, सेवा में सबेरे और शाम का बखेड़ा नहीं है, यदि दया करके दो दिन ठहर जाओ तो स्वयं सब देख सकोगे। हम सभी दासी की दासियाँ हैं. उनकी सेवा करने के अलावा संसार में और तो हम लोगों को कोई काम नहीं है।" यह कहकर उसने मन्दिर की ओर हाथ जोड़कर एक बार फिर प्रणाम किया।

पूछा, "सारा दिन तुमलोगों को क्या करना पड़ता है?"

वैष्णवी ने कहा. "आकर जो कुछ तुमने देखा वही।"

मैंने कहा. "आकर देखा मसाला पीसना तरकारी काटना. दूध गरम करना, माला गूँथना, कपड़ा रंगना, — इसी तरह के और बहुत से काम। तुम लोग क्या सारा दिन केवल यही करती रहती हो?"

वैष्णवी ने कहा, "हाँ, सारा दिन केवल यही करती हैं।"

"किन्तु ये सब तो केवल घर गृहस्थी के काम हैं, सभी औरतें करती हैं। तुम लोग भजन साधन कब करती हो?"

वैष्णवी ने कहा 'यही हम लोगों का भजन साधन है।"

"यही रसोई पकाना पानी भरना, कूटना, फटकना माला गूँथना, कपड़े रंगना— क्या इनको ही साधना कहते हैं?"

वैष्णवी ने कहा, "हाँ इसको साधना कहते हैं। दासदासियों की इससे बढ़कर साधना हम और कहाँ पायेंगी गोसाईं।" यह कहते कहते उसकी दोनों सजल आँखें मानो अनिर्वचनीय आनन्द से परिपूर्ण हो गईं। मुझे अचानक ऐसा मालूम होने लगा कि इस अपरिचिता वैष्णवी के मुँह की तरह सुन्दर मुँह मैंने इस संसार में कहीं नहीं देखा है। मैंने पूछा, 'कमललता, तुम्हारा मकान कहाँ है?'

वैष्णवी ने आँचल से आँखें पोंछकर हँसकर कहा 'पेड़ के नीचे।"

"किन्तु पेड़ की छाया तो सर्वदा नहीं थी?'

वैष्णवी ने कहा। "तब था ईंटों और काठ के बने किसी मकान का एक छोटासा कमरा। किन्तु उस कहानी को सुनाने का तो समय अब नहीं है गोसाईं। आओ तो मेरे साथ तुम्हारा नया कमरा दिखा दूं।"

कमरा बहुत अच्छा है। उसने बांस की खूंटी पर रंगा हुआ एक साफ रेशम का कपड़ा दिखाते हुए कहा "इसे पहन कर ठाकुर जी के कमरे में आना। देखो, देर मत करना।" यह कहकर वह तेजी से कदम बढ़ाते चली गई।

एक ओर एक छोटी सी चौकी पर बिछौना बिछा है। पास ही एक मेज पर कई ग्रन्थ और एक थाली में बकुल फूल रखे हैं। अभी तुरत ही प्रदीप जलाकर शायद धूप धूना जलाया गया है। उसकी गन्ध और धुएँ से कमरा तब भी भरा हुआ था, जो बहुत ही अच्छा लगा। दिन भर की थकावट तो थी ही ठाकुर देवताओं से सर्वदा दूर दूर ही रहता हूँ इसलिए उस तरफ आकर्षण नहीं था, कपड़े उतार कर झटपट बिछौने पर लेट गया। न मालूम यह किसका कमरा है एक रात के लिए अपरिचित वैष्णवी न मालूम यह किसकी सेज मुझे उधार दे गई है अथवा हो सकता है कि यह उसकी ही हो, किन्तु इन चिन्ताओं से मेरा मन स्वभावतः ही बहुत संकोच अनुभव करता है, तो भी आज, कुछ भी खयाल नहीं आया मानो कितने दिनों के परिचित अपने ही आदमियों के पास चला आया हूँ। शायद कुछ तन्द्रा

से आविष्ट हो गया था कि इतने में ही मानो किसीने दरवाजे के बाहर से पुकारा, "नये गोसाईं मन्दिर नहीं जाओगे? वे लोग तुम्हें बुला जा रहे हैं।"

झटपट उठ बैठा। मँजीरा के सहयोग से होनेवाला कीर्तनगान कानों तक पहुँचा। बहुत से लोगों का समवेत कोलाहल नहीं जो गाना हो रहा था उसके शब्द जितने मधुर थे उतने ही स्पष्ट भी थे। स्त्री के गले के शब्द थे उस रमणी को आँखों से देखे बिना ही निःसन्देह अनुमान कर लिया कि ये शब्द कमललता के ही है। नवीन को विश्वास है कि इस मीठे स्वर ने ही उसके मालिक का मुग्ध कर लिया है। मैंने भी यही सोचा कि यह असम्भव नहीं है और अत्यन्त असंगत भी नहीं है।

मन्दिर में घुसकर एक तरफ चुपचाप बैठ गया। किसीने मेरी ओर नहीं देखा। सबकी दृष्टि ही राधाकृष्ण की युगल मूर्ति पर लगी थी। बीच में खड़ी होकर कमललता कीर्तन कर रही है मदन गोपाल जय जय यशोदालाल की। नन्दलाल जय जय गिरिधारीलाल की। गिरिधारीलाल जय जय गोविन्दगोपाल की।

इन थोड़ेसे सहज और साधारण कुछ शब्दों के आलोडन से भक्तों का गंभीर वक्षस्थल मन्थित होकर कौन सुधा तरंगित हो उठती है, वह मेरे लिए उपलब्ध करना कठिन है। किन्तु देखा कि उपस्थित व्यक्तियों में से किसीकी भी आँखें सूखी नहीं हैं। गायिका दोनों आँखों को प्लावित करके झरझर धारा में आँसू बहा रही है. और भावों के गुरुभार से उसका कण्ठस्वर मानो टूट रहा है। इन सब रसों का रसिक मैं नहीं हूं, कि तुम मेरे मन के भीतर भी न मालूम कैसी धरा बहने लगी। द्वारिकादास बाबाजी आँखें बन्द किये एक दीवार पर टेककर बैठे थे। यह समझ में नहीं आया कि वे सचेत हैं या अचेत। और केवल थोड़ी देर पहले की स्निग्ध हास्य-परिहास चंचल कमललता ही नहीं, बल्कि साधारण गृह-कर्मों में नियुक्ता जिन वैष्णवियों को अभी तक मैं साधारण. तुच्छ और कुरूप समझ रहा था. वे भी मानो इस धूप के धुएँ से समाच्छन्न गृह के अनुज्वल दीपक के प्रकाश में मेरी आँखों में क्षणभर के लिए अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ने लगीं। मुझे भी मानो ऐसा मालूम होने लगा कि अदूरवर्ती वह पत्थर की मूर्ति सचमुच ही आँखें खोलकर देख रही है और कान रोपकर कीर्तन का समस्त माधुर्य उपभोग कर रही है।

भावों की इस विह्वल मुग्धता से मैं बहुत डरता हूँ, घबड़ाकर बाहर चला आया, किसी ने देखा भी नहीं। देखा कि आंगन के एक छोर पर गौहर बैठा हुआ है। कहां के प्रकाश की एक रेखा आकर उसके शरीर पर पड़ रही है। मेरे पैरों के शब्द से उसका ध्यान भंग नहीं हुआ किन्तु उस एकान्त एकाग्र मुंह के प्रति देख कर भी मैं हिल न सका उसी स्थान पर स्तब्ध होकर पड़ा रहा। ऐसा मालूम होने लगा मानो केवल मुझे ही अकेला छोड़कर इस मकान के और सभी मानो किसी दूसरे देशको चले गये हैं—वहाँ का पथ मैं नहीं पहचानता। कमरे में जाकर बत्ती बुझाकर लेट गया। यह अच्छी तरह जानता हूँ कि ज्ञान, विद्या और बुद्धि में इन सबसे बड़ा हूँ तो भी, न मालूम किस व्यथा से मन भीतर से रोने लगा और उसी प्रकार के अज्ञात कारण से आँखों के कोने से बड़े बड़े बूंदों में पानी गिरने लगा।

कितनी देर तक सोता रहा, इसका पता मुझे नहीं रहा। कान में शब्द पहुँचा, "अरे नये गोसाईं?"

जग कर उठ बैठा,—"कौन?"

"मैं हूँ तुम्हारी सन्ध्या की मित्र, इतना सोते हो?"

अंधेरी कोठरी में चौखट के पास कमललता वैष्णवी खड़ी थी। मैंने कहा, "जागते रहने से क्या लाभ होता? सोने से समय का कुछ तो सदुपयोग हुआ।"

"लूंगा यह तो मालूम है। किन्तु देवता का प्रसाद नहीं लोगे।"

"तब इतना अधिक सो क्यों रहे हो?"

"जानता हूँ कि विघ्न न होगा, प्रसाद तो पाऊँगा ही। सन्ध्या की मेरी मित्र मुझे रातके समय भी न छोड़ेंगी।"

वैष्णवी ने हंसते हुए कहा 'यह दावा तो वैष्णवों का है, तुम लोगों का नहीं।"

मैंने कहा, 'आशा मिलने पर वैष्णव बनते कितनी देर लगती है। तुमने गौहर तक को गोसाईं बना डाला है और मैं ही क्या इतनी अवहेला का पात्र हूँ। हुक्म पाऊँ तो वैष्णवों का दासानुदास बन जाने को भी राजी हूँ।"

कमललता का कण्ठस्वर कुछ गम्भीर हो उठा बोली, 'वैष्णवों के प्रति हँसी मजाक ठीक नहीं गोसाईं, यह तो अपराध है। गौहर गोसाईं जी को भी तुमने गलत समझा है। उसके अपने आदमी भी उसको काफेर कहते हैं, किन्तु वे उसे

नहीं जानते। वह पक्का मुसलमान है। पिता पितामह के धर्म विश्वास को उसने त्याग नहीं किया है।''

"किन्तु उसका भाव देखने से तो ऐसा नहीं मालूम होता।"

वैष्णवी ने कहा, "यही तो आश्चर्य की बात है। किन्तु अब देर मत करो, आओ।' जरा सोच कर ''अथवा प्रसाद हो तुमको यहाँ दे जाऊँ, क्या कहते हो ?'' मैंने कहा, ''आपत्ति नहीं, किन्तु गौहर कहां है ? वह यदि हो तो दोनों को एक साथही दो न।''

उसके साथ बैठकर खाओगे ?''

मैंने कहा, ''बराबर ही तो खाता हूँ। लड़कपन में उसकी मां ने अनेक बार खिलाया है उस समय तुम लोगों के प्रसाद की अपेक्षा वह कम मीठा नहीं होता था। इसके अलावा गौहर भक्त है, गौहर कवि है, कवि की जाति का विचार नहीं किया जाता।''

अंधेरे में भी मालूम हुआ कि वैष्णवी ने एक सांस को दबा लिया, फिर बोली, ''गौहर गोसाईं नहीं हैं, कब चले गये, हम लोगों को पता नहीं है।''

मैंने कहा ''गौहर को देखा है कि आंगन में बैठा है। उसे क्या तुम लोग भीतर नहीं जाने देती ?''

वैष्णवी ने कहा, ' नहीं।''

मैंने कहा ' गौहर को मैंने आज देखा है। कमललता, मेरे मजाक से तुम नाराज हो गई किन्तु अपने देवता के साथ तुम लोग भी कम मजाक नहीं करती अपराध केवल एक तरफ से नहीं होता है।''

इस अभियोग का वैष्णवी ने कुछ जवाब नहीं दिया, चुपचाप बाहर चली गई। थोड़ी देर के बाद ही उसने एक दूसरी वैष्णवी के हाथों बत्ती और आसन तथा स्वयं प्रसाद का बर्तन लिये प्रवेश किया, बोली, ''नये गोसाईं, अतिथि सेवा में त्रुटि हो सकती है, किन्तु यहाँ का सब कुछ ठाकुर जी का प्रसाद ही है।''

मैंने हँसकर कहा, "ऐ सन्ध्या समय की मित्र, भय की बात नहीं है, वैष्णव न होने पर भी तुम्हारे नये गोसाईजी में रसबोध है आतिथ्य की त्रुटि के लिए वह रसभंग न करेगा। जो कुछ ले आयी हो रख दो। लौटकर देखोगी कि प्रसाद का एक कण भी बाकी नहीं है।''

'ठाकुरजी का प्रसाद इसी तरह तो खाया जाता है।" यह कहकर कमललता ने नीचे झुँककर सब खाद्य सामग्री एक एक करके सिलसिलेवार सजा दी।

दूसरे दिन बहुत सबेरे ही नींद टूट गई। घड़ी घण्टे के विकल शब्द से विपुल बाजे गाजे के साथ मंगल आरती शुरू हो गई। प्रभाती के सुर में कीर्तन का पद कानों में आ पहुंचा कान्ह गले बनमाला विराजै राधा गले मोती साजैं। अरुण चरण में नूपुर शोभित खंजन गंजन लाजैं।" इसके बाद सारा दिन ठाकुरसेवा होती रही। पूजा पाठ कीर्तन नहलाना खिलाना, शरीर पोंछना, चन्दन लगाना माला पहनाना—इसमें जरा भी विराम विच्छेद नहीं पड़ा। सभी व्यस्त हैं सभी नियुक्त हैं। ऐसा मालूम हुआ कि पत्थर के देवता ही अष्ट प्रहर व्यापी अनन्त सेवा सह सकते हैं और कोई होता तो इतने अधिक उपद्रव से घिसकर खतम हो जाता।

कल वैष्णवी से पूछा था तुम लोग साधन भजन किस समय करती हो?" उसने उत्तर दिया। 'यही तो साधन भजन है।" आश्चर्य में पड़कर प्रश्न किया था, "यह रसोई बनाना, फूल चुनना, माला गूंथना, दूध औटना—क्या यही साधना है?" उसने सिर हिलाकर उसी क्षण जवाब दिया था, "हाँ, हम लोग इसी को साधना कहती हैं, हम लोगों का और कोई साधन भजन नहीं है।"

आज सारे दिन का काण्ड देखकर समझ गया कि उसकी बातें अक्षर अक्षर सत्य हैं। कहीं अति रंजन या अत्युक्ति नहीं है। दोपहर को जरा मौका पाकर बोला, "कमललता, मैं जानता हूँ कि तुम और सबकी तरह नहीं हो। सच कहो तो, भगवान की प्रतीक यह जो पत्थर की मूर्ति—"

वैष्णवी ने हाथ उठाकर मुझे रोककर कहा, "वेही तो साक्षात् भगवान् हैं। ऐसी बात कभी मुँह से मत निकालना गोसाई'

मेरी बातों से मानो उसे ही अधिक लज्जा मालूम हुई। मैं भी एक प्रकार घबड़ा उठा, तो भी धीरे धीरे बोला, "मैं तो नहीं जानता, इसीलिए पूछता हूँ कि क्या सचमुच ही तुम लोग सोचती हो कि उस पत्थर की मूर्ति में ही भगवान की शक्ति और चेतना है, उनका—"

मेरी यह बात भी पूरी न हो सकी। वह बोल उठी, "सोचने क्यों जाऊँगी; यह तो हमारे लिए प्रत्यक्ष है। तुम लोग संस्कारों का मोह नहीं तोड़ सके हो, इसलिए ऐसा सोचते हो कि रक्त मांस के शरीर के अतिरिक्त चैतन्य के रहने के लिए

और कोई जगह नहीं है। किन्तु यह क्यों? और यह भी कहती हूँ कि शक्ति और चैतन्य का सार क्या तुम लोग ही समूचा हजम कर बैठ गये हो जो यह कहोगे कि पत्थर में उसके लिए जगह नहीं है। जगह मिलती है जो, मिलना है, भगवान को भी कहीं रहने में बाधा नहीं पड़ती, नहीं तो बताओ उन्हें भगवान ही हमलोग क्यों कहेंगे?"

युक्ति की दृष्टि से ये बातें स्पष्ट भी नहीं हैं। पूर्ण भी नहीं हैं किन्तु यह तो उसका सजीव विश्वास है। उसके उस जोर और अकपट उक्ति के सामने मैं न मालूम किस तरह घबड़ा उठा तर्क करने या प्रतिवाद करने का साहस ही नहीं हुआ, इच्छा भी नहीं हुई। वरन् सोचने लगा, सच ही तो है, पत्थर हो या और कुछ हो, इसतरह के परिपूर्ण विश्वास से अपने को एकदम समर्पित न कर सकने से ये लोग वर्ष के बाद वर्ष दिनान्त व्यापी वह अविच्छिन्न सेवा करने की शक्ति किस तरह पा लेते। इस प्रकार सीधे और निश्चिन्त और निर्भय होकर खड़े होनेका अवलम्ब कहाँ मिलता? ये लोग शिशु तो नहीं हैं। बच्चों के खेल के इस मिथ्या अभिनय से दुविधा ग्रस्त मन क्या थकावट की कमजोरी से दो दिन में ही गिर न जाता। किन्तु ऐसा तो नहीं हुआ वरन् भक्ति और प्रेम की अखण्ड एकाग्रता से इनके आत्मनिवेदन का आनन्दोत्सव बढ़ता ही जा रहा है। इस जीवन में पाने की दृष्टि से विचार करने पर क्या सब कुछ निरर्थक है भूल है, सब अपने को ठगना है!

वैष्णवी ने कहा "क्यों गोसाईं, बात क्यों नहीं करते?"

मैंने कहा "सोच रहा हूँ।"

"किसको सोच रहे हो?"

"सोच रहा हूँ तुमको ही।"

"अहा, यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य है।" थोड़ी देर बाद कहा, "फिर भी यहाँ रहना नहीं चाहते, कहाँ किस बर्मा देश में नौकरी करने के लिए जाना चाहते हो। नौकरी क्यों करोगे?"

मैंने कहा, "मेरे पास तो मठ की जगह जमीन नहीं है मुग्ध भक्तों का दल भी नहीं है, खाऊँगा क्या?"

"ठाकुर जी देंगे।"

मैंने कहा, "यह तो अत्यन्त दुराशा है। किन्तु तुमलोगों का भी ठाकुर जी पर खूब भरोसा है ऐसा भी तो नहीं मालूम होता। क्योंकि भीख मांगने को जाती हो?"

वैष्णवी ने कहा, "जाती हूँ इसलिए कि वे देने के लिए द्वार द्वारपर खड़े रहते हैं। नहीं तो अपनी गरज नहीं है, होती तो नहीं जाती, बिना खाये सूख सूख कर मरने की घड़ी आ जाने पर भी नहीं जाती।"

"कमललता, तुम्हारा गाँव कहाँ है?"

"कल ही तो बतलाया था गोसाईं, कि मेरा मकान पेड़ों के नीचे है और गांव रास्ते रास्ते में है।"

"तो पेड़ों के नीचे और रास्ते रास्ते में न रहकर मठ में किसलिए रहती हो?"

"बहुत दिनातक रास्ते रास्ते में ही थी गोसाईं, साथी पा जाऊं तो फिर एक बार रास्ते का ही सम्बल बना लूँ।"

मैंने कहा, "तुमको साथियों की कमी है, इस बातपर तो विश्वास नहीं होता कमललता। जिसको बुलाओगी, वही राजी हो जायगा।"

वैष्णवी ने हँसते हुए कहा, "तुमको बुला रही हूँ नये गोसाईं, राजी हो जाओगे?"

मैं भी हँस पड़ा, बोला, "हाँ, राजी हूं, नाबालिग उम्र में जिस मनुष्य को यात्रा के दल से डर नहीं मालूम हुआ, बालिग अवस्था में वह वैष्णवी से क्या डरेगा?"

"तुम यात्रा के दल में भी थे क्या?"

"हाँ।"

"तब तो, गाना गा सकते हो?"

"नहीं, मालिक ने इतनी दूर आगे बढ़ने नहीं दिया पहले ही जवाब दे दिया। तुम मालिक होती तो क्या करतीं नहीं कहा जा सकता।"

वैष्णवी हंसने लगी, बोली, "मैं भी जवाब दे देती। इस बात को छोड़ो, अब हम में से एक के जानने पर भी काम चल जायगा। इस देश में जैसे भी हो, भगवान का नाम ले सकने पर भीख को कमी नहीं पड़ती। चलो न गोसाईं, बाहर निकल पड़ें। तुम तो कहते थे कि वृन्दावन धाम कभी नहीं देखा है, चलो,

तुम्हें दिखला लाऊँ। बहुत दिन घर में बैठे बैठे कट गये, रास्ते का नशा फिर मानो अपनी तरफ खींचना चाहता है। सच चलोगे नये गोसाईं ?"

अचानक उसके मुंह की ओर देखकर बहुत आश्चर्य हुआ। कहा, "हमारा परिचय हुए तो अभी चौबीस घंटे से भी अधिक नहीं हुआ. मुझपर इतना विश्वास कैसे हो गया।"

वैष्णवी ने कहा, "ये चौबीस घंटे तो केवल एक पक्ष के लिए नहीं हैं गोसाईं, ये तो दोनों पक्षों के लिए हैं। मेरा विश्वास है कि रास्ते में प्रवास में मुझे भी तुम पर अविश्वास न होगा। कल पंचमी है, निकल पड़ने का बड़ा शुभ दिन है, चलो। और रास्ते के किनारे रेल का पथ ता है ही, अच्छा नहीं लगे तो लौट आना, मैं मना नहीं करूँगी।"

एक वैष्णवी ने आकर खबर दी, "ठाकुरजी का प्रसाद कमरे में रख दिया गया है।"

कमललता ने कहा, "चलो तुम्हारे कमरे में चलकर बैठें।"

"मेरे कमरे में ? अच्छी बात है।"

और एक बार उसके मुँह की तरफ देखा। इस बार अब इसमें सन्देह का लेशमात्र भी नहीं रहा कि वह परिहास नहीं कर रही है। यह भी निश्चित है कि मैं उपलक्ष्य मात्र हूँ। किन्तु जिस कारण से ही क्यों न हो यहाँ का बन्धन तोड़कर भाग निकलने से ही मानो वह रक्षा पा जायगी—वह एक मुहूर्त की भी देर अब सहन करने में असमर्थ हो रही है।

कमरे में आकर खाने बैठा। प्रसाद बहुत अच्छा है। भागने का षड़यन्त्र अच्छी तरह जम जाता, किन्तु किसी बहुत ही जरूरी काम से कोई कमललता को बुला ले गया। अत: अकेले मुँह बन्द करके ही सेवा समाप्त करनी पड़ी। बाहर आने पर किसी को भी नहीं देखा। द्वारिकादास बाबाजी भी कहाँ चले गये ? दो चार पुरानी वैष्णवियाँ घूम फिर रही हैं। कल शाम को ठाकुरजी के कमरे में धुएँ की अधिकता से शायद ये ही अप्सराओं की भाँति दिखाई पड़ रही थीं. किन्तु आज दिन के प्रखर प्रकाश में कल का वह अध्यात्म सौन्दर्यबोध उतना अटूट नहीं रहा, शरीर न मालूम कैसा हो गया, सीधा आश्रम के बाहर चला आया। वही सेवार से ढकी पतली मन्द सोतवाली परिचित नदी और वही लता-गुल्म कंटकाकीर्ण तट भूमि,

तथा वही सर्पसंकुल सुदृढ़ बेतों का कुञ्ज और सुविस्तृत बामों की झाड़ियाँ। बहुत दिनों से अभ्यास छूट जाने के कारण शरीर झनझन करने लगा। दूसरी जगह जाने को तैयार हो रहा था कि एक आदमी जो कहीं छिप कर बैठा था उठ कर आया और मेरे पास खड़ा हो गया। पहले तो आश्चर्य में पड़ गया कि क्या इस स्थान में भी कोई आदमी रहता है। उस मनुष्य की उम्र मेरी ही उम्र के बराबर रही होगी और यदि वह मुझसे दस वर्ष उम्र में बड़ा भी रहा हो तो इसमें कुछ विचित्रता नहीं है। नाटा क़द, दुबला पतला शरीर का ढांचा, शरीर का रंग बहुत अधिक काला नहीं है, किन्तु मुँह के नीचे का हिस्सा जिस तरह अस्वाभाविक रूप में छोटा है आँखों की दोनों भौंहें भी उसी तरह अस्वाभाविक रूप में लम्बाई चौड़ाई में विस्तीर्ण हैं। वस्तुतः इतनी बड़ी घनी मोटी भौंहें भी मनुष्य की होती हैं, यह ज्ञान मुझे इसके पहले नहीं था। दूर से सन्देह हुआ था कि प्रकृति ने किसी मज़ाक के खयाल से एक जोड़ी मोटे मूँछें ओठों के बदले कपाल में उगा दी हैं। गले में तुलसी की मोटी माला है। पोशाक पहनावा भी बहुत अंशों में वैष्णव जैसा है, किन्तु जितना मैला है उतना ही जीर्ण है।

"महाशय जी।"

चौंककर खड़े होते हुए मैंने कहा "आज्ञा दीजिए।"

"क्या सुन सकता हूं कि आप यहाँ कब आये हैं?"

"सुन सकते हैं। कल तीसरे पहर को आया हूं।"

"रात को अखाड़े में शायद थे?"

"हाँ, था।"

"आ।"

कई मिनट नीरवता में बीत गये। कदम बढ़ाने की कोशिश करते ही उस आदमी ने कहा "आप तो वैष्णव नहीं हैं, भले आदमी हैं, अखाड़े में आपको रहने दिया?"

मैंने कहा "यह खबर तो वे ही जानते हैं। उन्हीं से पूछिए।

"आः, शायद कमललता ने रहने के लिए कहा होगा।"

"हाँ।"

"ओः, क्या आप जानते हैं कि उसका असली नाम क्या है? ऊषांगिनी।

मकान सिलहट में है, किन्तु मालूम होती है कि कलकत्ते की लड़की है। मेरा मकान भी सिलहट में है, गाँव का नाम है महमूदपुर। उसके स्वभाव-चरित्र का हाल कुछ सुनेंगे?"

मैंने कहा, "नहीं।" किन्तु उस मनुष्य का हाव भाव देखकर इस बार सचमुच ही आश्चर्य में पड़ गया। पूछा, "कमललता के साथ क्या आपका कोई सम्बन्ध है?"

"क्यों नहीं है?"

"वह कैसा है?"

वह मनुष्य क्षणभर इधर उधर करके हठात् गरज उठा 'क्यों, क्या झूठ है? वह मेरी पत्नी है। उसके बापने स्वयं ही हम लोगों की कंठी बदली की थी। इसके गवाह हैं।'

न जाने क्यों मुझे विश्वास नहीं हुआ। पूछा, 'आपकी जाति क्या है?"

"हम द्वादश तेली हैं।"

"और कमललता?"

प्रत्युत्तर में वह अपनी वही मोटी भौंहों की जोड़ी घृणा से कुंचित करके बोला, "वह कलवार है,— उनके पानी से हम पैर भी नहीं धोते। एक बार उसे बुला सकते हैं?"

"नहीं। अखाड़े में सभी जा सकते हैं, इच्छा हो तो आप भी जा सकते हैं।"

क्रोधित होकर वह बोला "जाऊँगा महाशय जाऊँगा। दारोगा को दो पैसे खिला दिये हैं, प्यादे साथ लेकर एकदम झोंटा पकड़कर बाहर खींच लाऊँगा। बाबाजी के बाप भी उसे बचा नहीं सकेंगे! साला रास्कल कहाँ का!'

और वाक्य व्यय न करके चलने लगा। पीछे से कर्कश कंठ से वह बोला, "इसमें आपका क्या बिगड़ जाता, जाकर एकबार बुला देते तो क्या शरीर का कुछ क्षय हो जाता? ओः भले आदमी!"

फिर पीछे घूमकर देखने का साहस नहीं हुआ। पीछे कहीं क्रोध न संभाल सकूं और इस अति दुर्बल मनुष्य के शरीर पर कहीं हाथ न छोड़ बैठूं, इस भय से कुछ तेजी के साथ ही मैंने प्रस्थान किया। ऐसा मालूम होने लगा कि वैष्णवों के भगाने का हेतु शायद यहीं कहीं सम्बद्ध है।

मन खराब हो गया था। ठाकुर जी के कमरे में न तो मैं खुद गया और न तो

कोई बुलाने ही आया। कमरे के अन्दर एक चौकी पर कई वैष्णव ग्रन्थावलियाँ यत्नपूर्वक रखी हुई थीं उनमें से हो एक को हाथ में लेकर और प्रदीप को सिरहाने के पास लाकर बिछौने पर लेट गया। वैष्णव धर्मशास्त्र के अध्ययन के लिए नहीं, केवल समय काटने के लिए। क्षोभके साथ केवल एक ही बात बार बार याद पड़ने लगी, कमललता जो गई फिर लौटकर नहीं आई। ठाकुरजी की सन्ध्या आरती यथाविधि आरम्भ हुई उसका मधुर कण्ठ बार बार कानों में आने लगा, और घूम फिर कर केवल यही बात याद पड़ने लगी कि उसी समय से कमललता ने मेरी कुछ भी खोज खबर नहीं ली। और वह मौंहों वाला आदमी? क्या उसके अभियोग में कुछ भी सचाई नहीं है?

और भी एक बात है। गौहर कहाँ है? उसने भी तो आज मेरी खोज नहीं ली। सोचा था कि कुछ दिन यहीं बिताऊँगा, कम से कम पूंटू के विवाह के दिन तक—किन्तु ऐसा न हो सकेगा। शायद कल ही कलकत्ता के लिए रवाना हो जाऊँ।

धीरे धीरे आरती और कीर्तन समाप्त हो गया। कलवाली वही वैष्णवी आकर आज भी बड़े यत्न से प्रसाद रख गई, किन्तु जिसके लिए राह देख रहा था, उसके दर्शन नहीं मिले। बाहर लोगों की बातचीत और आने जाने के पैरों की आहट भी क्रमशः शान्त हो चली। यह जान कर कि उसके आने की कोई सम्भावना अब नहीं रह गई भोजन किया और हाथ मुंह धोकर दीया बुझाकर सो गया।

शायद उस समय बहुत रात थी कानों में शब्द सुनाई पड़ा, "नये गोसाईं?"

जागकर उठ बैठा। अन्धकार में कमरे में खड़ी थी कमललता। धीरे धीरे वह बोली, "आई नहीं इस लिए शायद मन ही मन बहुत दुखी हो रहे हो, न गोसाईं?"

मैंने कहा "हाँ हुआ तो हूँ।"

वैष्णवी थोड़ी देर तक चुप रही, इसके बाद बोली "जंगल में वह आदमी तुमसे क्या कह रहा था?"

"तुमने देखा था क्या?"

"हाँ।"

"कह रहा था कि तुम्हारा पति है अर्थात् तुम लोगों के सामाजिक आचार के अनुसार कंठी की बदली होने से तुम उसकी पत्नी हो गई हो।"

"तुमने विश्वास किया?"

"नहीं, नहीं किया।"

फिर क्षण भरके लिए मौन रहकर वैष्णवी ने कहा, "उसने मेरे स्वभाव चरित्र के बारे में कुछ भी इशारा नहीं किया?"

"किया है।"

"मेरी जाति का?"

"हाँ, उसका भी।"

वैष्णवी ने कुछ ठहर कर कहा, "सुनोगे मेरे बचपन का इतिहास? किन्तु, शायद तुम घृणा करने लगोगे।"

मैंने कहा, "तो रहने दो, मैं नहीं सुनना चाहता।"

"क्यों?"

मैं बोला, "उससे क्या लाभ है कमललता? तुम मुझे बहुत अच्छी लगी हो। किन्तु, कल मैं चला जाऊँगा, शायद फिर कभी हम लोगों की मुलाकात भी न होगी। निरर्थक मेरे इस अच्छा लगने को नष्ट करने से क्या फल होगा, बताओ तो?"

इस बार वैष्णवी बड़ी देर तक चुप रही। अन्धकार में चुपचाप खड़ी यह क्या कर रही है, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। पूछा, "क्या सोच रही हो?"

"सोच रही हूँ कि कल तुम्हें जाने न दूँगी?"

"तो फिर कब जाने दोगी?"

"जाने कभी न दूँगा। किन्तु बहुत रात हो गई, सो रहो मसहरी अच्छी तरह लगी हुई है न?"

"क्या मालूम शायद लगी हुई है।"

वैष्णवी ने हंसकर कहा "शायद लगी है? वाह खूब कहा।" यह कह कर उसने पास आकर अन्धकार में ही हाथ बढ़ाकर, बिछौने के चारो ओर की परीक्षा करके कहा "सो रहो गोसाईं, मैं जाती हूँ। यह कह कर वह पैर दबाये बाहर चली गई, और बाहर से बहुत सावधानी से दरवाजा बन्द कर दिया।

७

वैष्णवी ने मुझसे आज बार बार इस बात की शपथ करा ली कि उसका पूर्व विवरण सुनकर मैं घृणा नहीं करूँगा।

मैंने कहा — "मैं सुनना नहीं चाहता, किन्तु सुनकर भी घृणा न करूँगा।

वैष्णवी ने प्रश्न किया, "किन्तु क्यों नहीं करोगे। वह बात सुनकर तो स्त्री-पुरुष सभ घृणा करते हैं।"

मैं बोला 'मैं नहीं जानता कि तुम क्या कहोगी किन्तु तो भी अन्दाज लगा सकता हूँ। यह जानता हूँ कि उसे सुनकर औरतें ही औरतों को सबसे अधिक घृणा करने लगती हैं, और उसका कारण भी जानता हूँ किन्तु तुमको वह मैं बतलाना नहीं चाहता। पुरुष भी करते हैं किन्तु अनेक बार वह छल होता है और अनेक बार आत्मवंचना। तुम जो कुछ कहोगी उससे भी बहुत अधिक खराब बातें मैंने स्वयं तुम लोगों के मुँह से सुनी हैं और आंखों से भी देखी हैं। किन्तु तो भी मुझे किसी के प्रति घृणा नहीं होती।"

"क्यों नहीं होती !"

"शायद यह मेरा स्वभाव है। किन्तु कल ही तो तुमसे मैंने कहा था कि मुझे जरूरत नहीं है। सुनने के लिए मैं जरा भी उत्सुक नहीं हूँ। इसके अलावा कौन कहां का है, यह सब कहानी मुझसे न कहोगी तो क्या होगा ?"

वैष्णवी बड़ी देरतक चुप रहकर कुछ सोचती रही, इसके बाद अचानक पूछ बैठी, "अच्छा गोसाईं, तुम पूर्व जन्म, अगले जन्म, इन सब बातों पर विश्वास करते हो ?"

"नहीं।"

"नहीं क्यों ? तुम क्या सोचते हो कि सचमुच ही ये बातें नहीं हैं ?"

"सोचने के लिए मुझे और बहुत सी बातें हैं इन सब बातों पर सोचने के लिए शायद मुझे समय नहीं मिलता।"

वैष्णवी ने फिर क्षणभर मौन रहकर कहा, 'एक घटना की बात तुमसे कहूंगी, क्या विश्वास करोगे ? ठाकुरजी की तरफ मुँह करके कह रही हूं, तुमसे झूठ नहीं कहूंगी।"

मैंने हंसकर कहा, "करूँगा कमललता, करूँगा। ठाकुरजी की शपथ न करके कहने से भी विश्वास करूँगा।'

वैष्णवी ने कहा, 'तो कहती हूं। एक दिन गौहर गोसाईं के मुँह से सुना कि उसकी पाठशाला के एक मित्र उसके घरपर अचानक आ गये हैं। मैंने सोचा कि जो आदमी एक दिन भी हमारे यहाँ आये बिना नहीं रह सकता वह अपने बचपन के मित्र के साथ छः सात दिन कैसे बिमार पड़ा रहा। फिर सोचा कि यह कैसा ब्राह्मण मित्र है जो अनायास ही मुसलमान के घर पड़ा रहा। किसी से भी नहीं डरा। उसका क्या कहीं भी कोई नहीं है। पूछने पर गौहर गोसाईं ने भी ठीक यही बात कही। बोला कि संसार में उसका अपना कोई नहीं है इसलिए उसे भय भी नहीं है। चिन्ता भी नहीं है। मन ही मन सोचा कि ऐसा ही होगा। पूछा, 'गोसाईं, तुम्हारे मित्र का क्या नाम है? नाम सुनकर मानो मैं चौंक उठी। जानते हो गोसाईं वह नाम मुझे नहीं लेना चाहिए।'

हँसकर बोला, "जानता हूं। तुम्हारे मुँह से ही सुना है।"

वैष्णवी ने कहा "मैंने पूछा कि तुम्हारा मित्र देखने में कैसा है? उम्र कितनी है? गोसाईं ने उत्तर में कितनी बातें कहीं. उनका कुछ तो मेरे कानों में गया। किन्तु हृदय में धुक धुक करने लगा। तुम सोचोगे कि ऐसा आदमी तो नहीं देखा, जो नाम सुनते ही पागल हो जाय। किन्तु केवल नाम सुनकर ही औरतें पागल हो जाती हैं गोसाईं,—यह सच है।"

मैंने कहा "इसके बाद?"

वैष्णवी ने कहा, 'इसके बाद मैं स्वयं भी हँसने लगी. किन्तु और भूल न सकी, सब कामकाजों में केवल एक ही बात याद आती रहती है कि तुम कब आओगे। तुमको अपनी आँखों से कब देख सकूँगी।"

सुनकर चुप हो रहा, किन्तु उसके मुँह की ओर देखकर फिर हँस न सका।

वैष्णवी ने कहा, "अभी तो कल ही शाम को तुम आये हो किन्तु आज मुझसे अधिक इस संसार में तुमको कोई प्यार नहीं करता। यदि पूर्वजन्म सत्य न होता तो ऐसी असम्भव घटना एक ही दिन में घट सकती थी?"

थोड़ी देरतक ठहर कर वह बोली, "मैं जानती हूं कि तुम रहने नहीं आये हो और रहोगे भी नहीं। जितनी ही प्रार्थना क्यों न करूँ, दो एक दिन बाद तुम

चले ही जाओगे। किन्तु इस व्यथा को मैं कितने दिनोंतक संभालूँगी केवल यही सोचती रहती हूं।'' यह कहकर उसने सहसा आँचल से आँखें पोंछ डालीं।

मैं चुप हो रहा। इतने थोड़े समय में इतनी स्पष्ट और प्राञ्जल भाषा में रमणी के प्रणय निवेदन को कहानी इसके पहले कभी किसी पुस्तक में भी नहीं पढ़ी थी और किसीके मुंह से भी नहीं सुनी थी. और यह अभिनय भी नहीं है, यह तो अपनी आँखों से ही देख रहा हूं। कमललता देखने में अच्छी है निरक्षर मूर्ख भी नहीं है, उसकी बातचीत से उसको गानों से उसके आदरयत्न और उसकी अतिथि सेवा की आन्तरिकता के कारण वह मुझे अच्छी लगी है और उस अच्छे लगने को प्रशंसा और रसिकता की अत्युक्ति से फैलाव करने में मैंने स्वयं कृपणता भी नहीं की है किन्तु देखते-देखते और माधुर्य के अकुंठित आत्म प्रकाश से समूचा मन ऐसी तिक्तता से परिपूर्ण हो जायगा, यह बात क्या मैं क्षणभर पहले भी जानता था। मानो मैं हतबुद्धि हो गया। केवल लज्जा से ही सारा शरीर रोमांचित हो गया, ऐसी बात नहीं है. वरन् एक प्रकार की अनजान विपत्ति की आशंका से हृदय में कहीं भी, शान्ति और स्वस्ति नहीं रही। नहीं जानता कि किस किस अशुभ लग्न में काशी से यात्रा की थी कि एक पूंट्र के जाल से छूटकर फिर एक दूसरी पूंट्र के जाल में जा फँसा। इधर उम्र तो यौवनकी सीमा पार कर रही है ऐसे समय में. अयाचित नारी प्रेम की ऐसी बाढ़ आ गई है कि, कहाँ भागकर आत्मरक्षा करूँ सोच कर स्थिर न कर सका। मुझे ऐसी धारणा भी कभी नहीं थी कि किसी युवती रमणी की प्रणय भिक्षा भी पुरुष के लिए इतनी अरुचिकर हो सकती है। सोचने लगा. अकस्मात् मेरा मूल्य इतना कैसे बढ़ गया? आज राजलक्ष्मी का प्रयोजन भी मुझमें शेष नहीं होना चाहता। यही मीमांसा हुई है कि वह अपनी वज्रमुष्टि को जरा भी ढीला करके मुझे निष्कृति नहीं देगी। किन्तु यहाँ अब न रहना चाहिए। साधु संग सिर पर पड़ा रहे, निश्चय कर लिया कि कल ही यह स्थान छोड़ दूंगा।

वैष्णवी एकाएक चकित हो उठी—''अरे वाह! तुम्हारे लिए तो मैंने चाय मँगाई है, गासईं।'

'कहती क्या हो? कहाँ मिली?''

''आदमी को शहर भेजा था। जाऊँ, तैयार करके लाऊँ, देखो, कहीं भाग मत जाना।''

"नहीं, किन्तु चाय बनाना जानती हो तो ?"

वैष्णवी ने जवाब नहीं दिया, केवल सिर हिलाकर हँसती हुई चली गई।

उसके चले जाने पर उस तरफ देखा तो मन में न मालूम कैसी एक चोट सी लगी। चाय पीना आश्रम की व्यवस्था में नहीं है, शायद मनाही है। तो भी उसे यह खबर मिल गई कि वह चीज मुझे पसन्द है, और शहर में आदमी भेजकर उसने मँगवा भी ली है। उसके अतीत जीवन का इतिहास नहीं जानता, वर्तमान का भी नहीं, केवल आभास मात्र मिला है कि यह अच्छा नहीं है, निन्दनीय है, सुनने पर लोगों को घृणा होती है। तथापि उस कहानी को उसने मुझसे छिपाना नहीं चाहा, सुनाने के लिए बार बार जिद करके तंग करती रही है, केवल मैं ही सुनने को राजी नहीं हुआ। मुझे कुतूहल नहीं है, क्योंकि प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन उसका है। अकेले बैठकर उस प्रयोजन के बारे में सोचने लगा तो मुझे स्पष्ट दिखाई पड़ा कि मुझे बताये बिना उसके अन्तर की ग्लानि नहीं मिट रही है, मनमें वह किसी तरह भी बल नहीं पा रही है।

सुना है कि मेरे नाम, श्रीकान्त का उच्चारण कमललता को नहीं करना चाहिए। नहीं जानता कि कौन यह उसका परम पूज्य गुरुजन है, और वह कब इस लोक से बिदा होकर चला गया है। दैवात् हमारे नामों की यह जो एकता है, इसी ने ही शायद इस विपत्ति की सृष्टि की है और तभी से ही उसने कल्पना से गत जन्म के स्वप्न सागर में डुबकी लगाकर संसार की सभी यथार्थताओं को तिलांजलि दे दी है।

तो भी ऐसा मालूम होता है कि इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं है। इसकी आराधना में आकण्ठ मग्न रहकर भी उसकी एकान्त नारी प्रकृति आज भी शायद इसका तत्व नहीं पा सकी है। वह असहाय अतृप्त प्रवृत्ति इस निरवच्छिन्न भाव विलास के उपकरणों का संग्रह करने में शायद आज भी क्लान्त है, दुविधा से पीड़ित है। उसका वह पथभ्रष्ट विभ्रान्त मन अपनी गैरजानकारी में ही न मालूम कहाँ अवलम्ब खोजने में मर रहा है, वैष्णवी उसका पता नहीं जानती, इसी कारण आज वह चौंककर बार बार अपने विगत जीवन के रुद्ध द्वारपर हाथ रोपकर अपराध की सान्त्वना माँग रही है। उसकी बातें सुनकर समझ सकता हूँ कि, मेरे नाम 'श्रीकान्त' को ही पाथेय बनाकर आज वह अपनी नाव का डांड़ खेना चाहती है।

वैष्णवी चाय लेकर मेरे पास आई। सब ही नयी व्यवस्था है। पीकर बहुत ही आनन्दित हुआ। मनुष्य का मन कितनी आसानी से बदल जाता है, मानो अब उसके विरुद्ध कोई शिकायत ही नहीं है।

मैंने पूछा, "कमललता, क्या तुम कलवार हो?"

कमललता ने हंसकर कहा, "नहीं, सोनार बनियाँ। किन्तु तुम लोगों को तो इन सबका भेद भाव नहीं है, वे दोनों एक ही हैं।"

मैंने कहा, "कमसे कम मेरे लिए तो ऐसी ही बात है। दोनों ही एक क्यों, सभी एक मान लिये जायँ तो भी कोई हानि नहीं है।"

वैष्णवी ने कहा 'ऐसा ही तो मालूम होता है। तुमने तो गौहर की मां के हाथ का भी खाया है।"

मैंने कहा, "तुम उन्हें नही जानती। गौहर बाप की तरह नहीं हुआ है। अपनी मां का स्वभाव उसे मिला है। इतना शान्त आत्मविभोर, भलाआदमी, क्या तुमने कभी देखा है। उसकी मां इसी तरह की थीं। एक बार बचपन में गौहर के पिता के साथ उनका जो झगड़ा हुआ था, वह मुझे याद है। शायद उन्होंने छिपे तौर पर किसी को बहुत से रुपये दे दिये थे, इसमे ही झगड़ा खड़ा हुआ। गौहर के पिता बड़े खराब मिजाज के आदमी थे हम तो डर कर भाग गये। कुछ घंटे के बाद धीरे धीरे लौट कर देखा कि गौहर की मां चुपचाप बैठी हैं। गौहर के पिता के बारे में पूछने पर पहले तो उन्होंने कोई बात नहीं की। किन्तु हमारे मुंहकी ओर देखते रहकर अचानक वे एक दम हंसकर लोट पड़ीं। आंखों से कई बून्द जल लुढ़क कर नीचे गिर पड़ा। ऐसी ही उनकी आदत थी।

वैष्णवी ने प्रश्न किया, "इसमें हंसी की कौन सी बात हुई?"

मैंने कहा, "हम लोगों ने भी तो यही सोचा। किन्तु जब हंसी रुक गई तो वे अपनी साड़ी से आंखें पोंछकर बोलीं' "मैं कैसी बेवकूफ औरत हूँ बेटा! वे तो मजे से नहा खाकर खर्राटे लेकर सो रहे हैं, और मैं बिना खाये पिये उपवास करके क्रोध से जल भून रही हूँ! क्या जरूरत है बताओ तो?" और यह कहने के साथ ही उनका सारा क्रोध और अभिमान धुल पूंछकर साफ हो गया। औरतों का यह कितना बड़ा गुण है, यह बात भुक्तभोगी के अलावा और कोई भी नहीं जानता।"

वैष्णवी ने पूछा, "तुम क्या भुक्तभोगी हो गोसाईं?"

मैं जरा घबड़ा उठा। मैंने यह नहीं सोचा था कि, यह प्रश्न उसको छोड़कर मेरे ही सिरपर आ पड़ेगा। बोला, "क्या सब स्वयं ही भोगना पड़ता है, कमललता, दूसरों का देख सुनकर भी तो सीखा जाता है। क्या उस भौंहोंवाले आदमी से तुमने कुछ भी नहीं सीखा ?"

वैष्णवी बोली, "किन्तु वह तो मेरे लिए पराया नहीं है।"

मेरे मुंह से फिर दूसरा कोई प्रश्न नहीं निकला। एक दम निस्तब्ध हो गया।

वैष्णवी स्वयं भी कुछ देर तक चुप रही, इसके बाद हाथ जोड़कर बोली, "तुमसे बिनती करती हूँ गोसाईं, एक बार मेरी पहली बातें सुन लो।"

"बहुत अच्छा, कहो।"

किन्तु जब कहने चली तो देखा कि कहना सहज काम नहीं है। मेरी ही तरह मुंह झुकाये उसे भी बहुत देर तक चुप रहना पड़ा। किन्तु उसने हार नहीं मानी, अन्तर्द्वन्द्व में विजयी होकर, जब उसने एक बार मुँह ऊपर उठाकर देखा, तब मुझे भी ऐसा मालूम हुआ कि उसके स्वाभाविक सुश्री चेहरे पर मानो एक तरह की विशेष चमक आ गई है। बोली, "अहंकार मर कर भी नहीं मरता गोसाईं। हमारे बड़े गोसाईं कहते हैं कि यह मानो भूसी की आग है जो बुझकर भी नहीं बुझती, राख हटाते ही दिखाई पड़ती है कि धक धक जल रही है। किन्तु इसी लिए फूँक देकर भी तो उसे बढ़ा नहीं सकती। नहीं तो मेरा इस पथ में आना ही व्यर्थ हो जायगा। सुनो। किन्तु औरत ही तो हूँ. शायद सभी बातें खोलकर न भी कह सकूँ।"

मेरे संकोच की सीमा नहीं रही। अन्तिम बारके लिए बिनती करके कहा, "औरतों के पैर फिसलने का विवरण सुनने में मुझे आग्रह नहीं है उत्सुकता नहीं है और ये सब बातें सुनना मुझे कभी अच्छा भी नहीं लगता कमललता। मैं यह नहीं जानता कि तुम लोगों की वैष्णवसाधना में अहंकार नष्ट करने का कौनसा मार्ग महाजनों ने निर्देश कर रखा है. किन्तु अपने गुप्त पापों को अनावृत करने का स्पर्धित विनय ही यदि तुम लोगों के प्रायश्चित्त का विधान हो, तो ये सब कहानियाँ जिनको अत्यन्त रुचिकर मालूम होती हों, ऐसे बहुत से लोगों की मुलाकात तुमसे हो जायगी। कमललता, मुझे माफ करो। इसके अलावा शायद मैं कल ही चला जाऊँगा। शायद जीवन में फिर कभी हम लोगों की मुलाकात भी नहीं होगी।"

वैष्णवी ने कहा, "तुमसे तो मैंने पहले ही कह दिया है गोसाईं, प्रयोजन तुम्हारा नहीं है, मेरा है। किन्तु क्या तुम सचमुच ही यही कहना चाहते हो कि कलके बाद फिर हमारी मुलाकात नहीं होगी? नहीं, कभी ऐसा नहीं हो सकता। मेरा मन कहता है कि फिर मुलाकात होगी,—मैं यही आशा लेकर रहूँगी। किन्तु क्या सचमुच ही मेरे बारे में कुछ भी जानने को तुम्हारी इच्छा नहीं होती। क्या चिर कालतक केवल एक सन्देह और अनुमान ही लेकर रहोगे?"

प्रश्न किया, "आज वनमें जिस मनुष्य के साथ मेरी मुलाकात हुई थी, जिसको तुम आश्रम में घुसने नहीं देती, जिसके उपद्रव से तुम भागना चाहती हो, वह क्या वास्तव में तुम्हारा कोई नहीं है? बिलकुल ही पराया है?"

"किस भय से भाग रही हूँ, यह क्या तुम समझ गये गोसाईं?"

"हाँ, ऐसा ही तो मालूम होता है किन्तु वह कौन है?"

"वह कौन है? वह मेरे इह और परलोक की नरक-यंत्रणा है। इसी लिए तो दिनरात रो रोकर ठाकुर जी से कहती हूँ कि प्रभो, मैं तुम्हारी दासी हूँ, मनुष्य के प्रति मेरे मनमें जो इतनी घृणा है, उसे मिटा दो, जिससे मैं फिर आराम से सांस लेकर जी सकूँ। नहीं तो मेरी सारी साधना व्यर्थ हो जायगी।

उसकी आँखों की दृष्टि में मानो आत्मग्लानि फूट उठी। मैं चुप हो रहा।

वैष्णवी ने कहा, "फिर भी, उससे बढ़कर मेरा अपना कोई नहीं था, संसार में शायद इतना अधिक प्यार किसी ने किसी को भी न किया होगा।"

उसकी बातें सुनकर आश्चर्य की सीमा नहीं रही, और इस सुरूपा रमणी की तुलना में उस प्रेम पात्र की कुत्सित और भद्दी मूर्ति स्मरण करके मेरा मन भी बहुत ही छोटा हो गया।

बुद्धिमती वैष्णवी मेरे मुँह की तरफ देखकर मेरा मनोभाव समझ गई, बोली, "गोसाईं, यह तो केवल उसका बाहर का परिचय है, उसके भीतर का परिचय सुनो।"

"कहो।"

वैष्णवी कहने लगी, "मेरे और भी दो छोटे भाई हैं, किन्तु मांबाप की मैं ही इकलौती बेटी हूँ। हम लोगों का मकान सिलहट जिले में है। किन्तु बाबूजी व्यापारी आदमी थे। उनका कारबार कलकत्ते में था, इस लिए बचपन से ही

मेरा लालन पालन कलकत्ते में हुआ। मां गृहस्थी के साथ गांव वाले मकान पर ही रहती थीं। पूजा की छुट्टी में यदि कभी मैं गांवपर जाती तो एक महीने से ज्यादा नहीं रह सकती। वहाँ मुझे अच्छा भी नहीं लगता था। कलकत्ते में ही मेरा विवाह हुआ। सत्रह वर्ष की उम्र में कलकत्ते में ही मैंने उन्हें खो दिया। उनके नाम के ही कारण गोसाईं, तुम्हारा नाम गौहर गोसाईं के मुंह से सुनकर मैं चौंक उठी। इसी लिए नये गोसाईं के नाम से पुकारती हूँ, वह नाम मुंह से उच्चारण नहीं कर सकती।"

मैंने कहा, 'यह तो मैं समझ गया। इसके बाद ?"

वैष्णवी ने कहा, "जिसके साथ आज तुम्हारी मुलाकात हुई है, उसका नाम मन्मथ है, वह हम लोगों का मुनीम था।" यह कह कर वह क्षण भर के लिए मौन रही, फिर बोली, "जिस समय मेरी उम्र इक्कीस वर्ष की हुई, तब उस समय मैं गर्भवती हो गई।"

वैष्णवी कहने लगी, "मन्मथ का एक पितृहीन भतीजा हम लोगों के ही मकान में रहता था, पिता जी उसे कालेज में पढ़ाते थे। उम्र में वह मुझसे कुछ छोटा था, वह मुझे इतना अधिक प्यार करता था कि उस प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। उसे बुलाकर मैंने कहा, यतीन, मैंने कभी तुमसे कुछ भी आजतक नहीं माँगा, मेरी इस विपत्ति में अन्तिम बार के लिए कुछ मदद करो। मुझे एक रुपये का जहर खरीदकर ला दो।"

पहले तो वह मेरी बात समझ न सका, किन्तु जब समझ गया तो उसका चेहरा मुर्दे की भांति फीका पड़ गया। मैंने कहा "देर करने से काम न चलेगा, भाई, तुम्हें अभी खरीदकर ला देना होगा। इसके अलावा मेरे लिए और दूसरा रास्ता नहीं है।

सुनकर यतीन के रोने की क्या बात कहूं। वह मुझे देवता समझता था और दीदी कहकर पुकारता था। उसको कितना आघात लगा, कितनी व्यथा उसे मिली उसकी आँखों का पानी खतम होना ही नहीं चाहता था। बोला, "ऊषा दीदी, आतमहत्या की भांति महापाप और कोई नहीं है। एक अन्याय के कन्धेपर तुम एक और दूसरा अन्याय लादकर रास्ता खोजना चाहती हो ? किन्तु लज्जा से बचने का यही उपाय यदि तुमने स्थिर कर लिया हो दीदो, तो मैं कभी तुम्हारी

सहायता न करूँगा। इसके अतिरिक्त तुम जो ही आदेश मुझे दोगी, मैं स्वच्छन्दता-पूर्वक उसका पालन करूँगा।

इसीके कारण मैं मर न सकी।

क्रमश. पिता जी के कानोंतक यह बात पहुँच गई। वे जिस तरह निष्ठावान् वैष्णव थे. वैसे ही शान्त और निरीह प्रकृति के मनुष्य थे। मुझसे उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, किन्तु दु:ख और लज्जा से दो-तीन दिनतक बिस्तर छोड़कर उठ न सके। इसके बाद गुरुदेव के परामर्श से मुझे साथ लेकर नवद्वीप चले गये। बात निश्चित हुई कि मन्मथ और मैं दीक्षा लेकर वैष्णव हो जायँ. और तब फूलों की माला और तुलसी की माला अदल बदल करके नई विधि से हम दोनों का विवाह हो जायगा। मैं यह नहीं जानती थी कि ऐसा करने से पाप का प्रायश्चित्त हो जायगा या नहीं, किन्तु जो शिशु गर्भ में आया है, उसकी हत्या माँ होकर नहीं करनी पड़ेगी, इसी भरोसा से ही मानो मेरी आधी वेदना मिट गई। उद्योग आयोजन चलने लगा। दीक्षा कहो या भेष कहो, यह भी हम लोगों का पूरा किया गया। मेरा नया नामकरण हुआ कमललता। किन्तु तबतक भी मैं यह बात नहीं जानती थी कि बाबू जी ने दस हजार रुपये देने का वचन देकर मन्मथ को इस काम के लिए राजी किया था। किन्तु एकाएक. न मालूम किस कारण से विवाह का दिन कई दिनों के लिए टाल दिया गया। शायद एक सप्ताह के लिए। मन्मथ बहुत कम दिखाई पड़ता था। नवद्वीप के मकान में मैं अकेली ही रहती थी। इसी तरह कई दिन बीत गये, इसके बाद फिर शुभ दिन आ गया। स्नान करके पवित्र होकर, शान्त मन से ठाकुर जी की प्रसादी माला हाथ में लिये प्रतीक्षा में बैठी रही।

उदास चेहरे से बाबू जी एक बार घूमकर देख गये, किन्तु नवीन वैष्णव के भेष में जब मन्मथ को देखा, अचानक मेरे समूचे मन के भीतर मानों बिजली चमक उठी। वह आनन्द की थी या व्यथा की, शायद दोनों की ही थी, किन्तु इच्छा हुई कि उठकर उसके पैरों की धूलि माथेपर लगा लूँ। किन्तु लज्जा के कारण ऐसा नहीं हो सका।

कलकत्ते की हमारी पुरानी दासी न मालूम क्या क्या बहुत सी चीजें ले आई,

नसीने मेरा लालन-पालन किया था, उसके ही मुँह से मैंने दिन बढ़ जाने का कारण सुना।"

कितनी पुरानी बात है, तो भी गला भारी हो गया और उसकी आँखों में पानी भर आया। वैष्णवी मुँह फेर कर आँसू पोंछने लगी।

पाँच-छः मिनट के बाद मैंने पूछा, "उसने क्या कारण बताया?"

वैष्णवी ने कहा, "उसने बताया कि मन्मथ अचानक दस हजार के बदले बीस हजार माँग बैठा। मैं कुछ भी नहीं जानती थी, चौंककर पूछा कि क्या मन्मथ रुपयों के बदले राजी हुआ है? और बाबू जी भी क्या उसे बीस हजार रुपये देना चाहते हैं? दासी ने कहा, उपाय क्या है दीदी रानी? मामला भी तो आसान नहीं है। सब बातें प्रकट हो जाने पर समाज, जाति और कुलमान—सभी चले जायेंगे। मन्मथ ने असली बात अन्त में प्रकट कर दी। बोला कि इसके लिए वह तो उत्तरदायी नहीं है, उत्तरदायी है उसका भतीजा यतीन। अतः यदि बिना दोष के उसे जाति नष्ट करनी ही है तो, बीस हजार से कम में यह कर्म नहीं कर सकता। इसके अलावा, दूसरे के लड़के का पितृत्व स्वीकार कर लेना, यह भी तो कम कठिन नहीं है।

यतीन अपने कमरे में बैठकर पढ़ रहा था, उसे बुलाकर बातें सुनाई गईं। सुनकर पहले तो वह हतबुद्धि होकर खड़ा रह गया, इसके बाद बोला, झूठी बात है। चाचा मन्मथ गरज उठा, "पाजी नीच, नमक हराम! जो व्यक्ति तुझे खाना, कपड़ा देकर, कालेज में पढ़ाकर आदमी बना रहा है, उसीका तू ने सर्वनाश कर दिया! कैसे काले सांप को मैं मालिक के घर में लाया था! सोचा था कि माँ-बाप हीन लड़का आदमी बनेगा। छी छी" यह कहकर वह छाती और सिर पर पटापट थप्पड़ जमाने लगा। बोला, "यह बात ऊषा ने अपने मुँह से कही है और तुम कहते हो नहीं!"

यतीन चौंक उठा और बोला, "क्या ऊषा दीदी ने खुद मेरा नाम लेकर कहा है? किन्तु वे तो कभी झूठ नहीं बोलतीं, इतना बड़ा झूठा अपवाद तो कभी उनके मुँह से बाहर नहीं निकल सकता।"

मन्मथ एक बार फिर गरज उठा—"फिर वही बात! फिर भी इनकार करेगा पाजी, शैतान। अपने मालिक से तो पूछ, वे क्या कहते हैं। वे क्या कहते हैं सुनो!"

"मालिक ने सम्मति प्रकट करके कहा, 'हाँ'।

यतीन ने पूछा, "दीदी ने खुद मेरा नाम लिया है?"

मालिक ने फिर सिर हिलाकर कहा, 'हाँ'।

"पिता जी को वह देवता तुल्य मानता था। इसके बाद उसने फिर प्रतिवाद नहीं किया। स्तब्ध होकर कुछ देरतक खड़े रहकर धीरे धीरे चला गया। क्या सोचा, यह वह ही जाने।

रात को किसीने उसकी खोज नहीं की। सबेरे ही किसीने आकर खबर दी, सब लोग देखने को दौड़ पड़े, जाकर देखा कि हमारे टूटे अस्तबल के एक कोने में यतीन गले में रस्सी बांधे लटक रहा है।

वैष्णवी ने कहा, "शास्त्रों में भतीजे की आत्महत्या के लिए चाचा के लिए शौच का विधि है या नहीं, गोसाईं, शायद डुबकी लगाने से शुद्धि हो जाती हो, जैसा भी विधान क्यों न हो, शुभ दिन कुछ दिनों के लिए और टल गया। इसके बाद गंगा स्नान करके शुद्ध होकर, मन्मथ गोसाईं माला तिलक धारण करके इस पराधीनता के पाप मोचन का शुभ संकल्प लेकर नवद्वीप में आकर हाजिर हो गये।"

एक मुहूर्त के लिए मौन रहकर वैष्णवी ने फिर कहा, "उस दिन ठाकुर जी की प्रसादी माला ठाकुर जी के ही चरणकमलों में ही अर्पित कर आई। मन्मथ की अपवित्रता दूर हो गई, किन्तु पापिष्ठा ऊषा का आशौच इस जीवन में दूर नहीं हुआ नये गोसाईं।"

मैंने कहा, "इसके बाद?"

वैष्णवी ने मुँह फेर लिया था, जवाब नहीं दिया। समझ गया कि इस बार उसे सँभलने में समय लगेगा। बड़ी देरतक हम दोनों ही चुपचाप बैठे रहे।

इसका शेष अंश सुनने का आग्रह प्रबल हो उठा। प्रश्न करना उचित है या नहीं, यही सोचने लगा। वैष्णवी ने आर्द्र मृदुकण्ठ से खुद ही कहा, "देखो गोसाईं, संसार में पाप नाम की चीज इतनी भयंकर क्यों है?"

मैंने कहा, "अपने विश्वास के अनुसार एक तरह से जानता हूं, किन्तु हो सकता है कि तुम्हारी धारणा के साथ वह मेल न खाय।"

उसने प्रत्युत्तर में कहा, "नहीं जानती कि तुम्हारा विश्वास क्या है, किन्तु उस दिन से मैंने इसे अपनी समझ के अनुसार समझ लिया है गोसाईं। तुम गर्व के

साथ कितने लोगों को कहते सुनोगे कि कुछ भी नहीं होता। वे कितने ही लोगों का उदाहरण देकर अपनी बात प्रमाणित करना चाहेंगे। किन्तु इसकी तो कोई जरूरत नहीं है इसका प्रमाण मन्मथ है और प्रमाण हूँ मैं खुद आज तक भी हम लोगों का कुछ भी नहीं हुआ। यदि कुछ होता, तो मैं इसे इतना भयंकर नहीं कहती। किन्तु ऐसा तो नहीं है। इसका दण्ड भोगते हैं निरपराध और निर्दोष लोग। यतीन को आत्महत्या का बड़ा डर था किन्तु उसीसे वह अपनी दीदी के अपराध का प्रायश्चित्त कर गया। बताओ तो गोसाईं, इससे और अधिक भयंकर निष्ठुर संसार में और क्या है? किन्तु ऐसा ही होता है, इसी तरह शायद भगवान अपनी सृष्टि की रक्षा करते हैं।"

इस विषय को लेकर बहस करने से कुछ लाभ नहीं है। उसकी युक्ति और भाषा कोई भी प्राञ्जल नहीं है, तथापि यही सोचा कि उसकी दुष्कृति शोकाच्छन्न स्मृति ने शायद इसी मार्ग से अपने पाप पुण्य की उपलब्धि आर्जन की है और सान्त्वना प्राप्त की है।

मैंने पूछा, "कमललता, इसके बाद क्या हुआ?"

सुनकर वह सहसा मानो व्याकुल हो उठी, सच बताओ गोसाईं, इसके बाद भी मेरी बातें सुनने की तुम्हें इच्छा होती है?"

"सच ही कह रहा हूं होती है।"

वैष्णवी बोली, "मेरा भाग्य है कि इस जन्म में फिर तुमसे मुलाकात हो गई। यह कहकर वह कुछ क्षणतक चुप रहकर मेरी तरफ देखती रही, फिर बोली, "कोई चार दिनों के बाद एक मरा हुआ लड़का पैदा हुआ, उसे गंगा जी में विसर्जित करके, स्नान करके घर लौट आई। बाबू जी ने रोकर कहा,—मैं तो अब नहीं रह सकता बेटी। मैंने कहा, नहीं बाबू जी अब आप मत रहो, घर चले जाओ। बहुत दुःख दिया, तुम मेरे लिए सोच मत करो।"

बाबू जी ने कहा, "बीच-बीच में खबर भेजोगी न बेटी?"

मैंने कहा, "नहीं बाबू जी, मेरी खबर लेने की अब आप चेष्टा मत कीजियेगा।"

"किन्तु, तुम्हारी माँ तो अब भी जीवित है, ऊषा?"

मैंने कहा, "मैं मरूँगी नहीं, बाबू जी, किन्तु मेरी सती लक्ष्मी माँ से कह देना कि ऊषा मर गई। माँ को इससे दुःख तो होगा, किन्तु यह जानकर कि

लड़की अभी जीवित है. उनको और भी ज्यादा दुःख होगा।" आँखों के आँसू पोंछकर बाबू जी कलकत्ता चले गये।

मैं चुप बैठा रहा। कमललता कहने लगी, "पास में रुपया था, मकान का किराया चुकाकर मैं भी घर से निकल पड़ी। साथी मिल गये, वे लोग वृन्दावन धाम जा रहे थे, मैंने भी उनका साथ पकड़ लिया।"

वैष्णवी ने कुछ रुककर कहा, "इसके बाद कितने तीर्थ, कितने रास्ते और कितने पेड़ों के नीचे कितने दिन कट गये।"

मैंने कहा, "यह तो जानता हूँ, किन्तु कितने सैकड़ों की संख्या में बाबाजी लोगों की कितनी ही सैकड़ों आखों की दृष्टि का विवरण तो तुमने बताया ही नहीं कमललता?"

वैष्णवी हँस पड़ी, बोली, "बाबाजी लोगों की दृष्टि अतिशय निर्मल है, उनके सम्बन्ध में अश्रद्धा की बातें नहीं करनी चाहिए गोसाईं।"

मैंने कहा, "नहीं, नहीं, अश्रद्धा नहीं। अतिशय श्रद्धा के साथ ही सबकी कहानी सुनना चाहता हूँ कमललता?"

इस बार वह हँसी तो नहीं, किन्तु दबी हुई हँसी छिपा भी न सकी। बोली, "जो बाबाजी प्यार करते हैं, उनसे सभी बातें खोलकर नहीं कही जातीं, हमारे वैष्णव शास्त्र में निषेध है।"

मैंने कहा, "तब तो रहने दो। सब बातों की जरूरत नहीं है, किन्तु एक बात बताओ। गोसाईंजी द्वारिकादास को कहाँ से जुटा लिया?"

कमललता ने संकोच से जीभ काटकर और कपाल पर हाथ रखकर कहा, "मजाक नहीं करना चाहिए. वे तो मेरे गुरुदेव हैं गोसाईं।"

"गुरुदेव? तुमने उनसे ही दीक्षा ली थी?"

"नहीं, दीक्षा तो नहीं ली है, किन्तु वे उनकी तरह पूजनीय हैं।"

"किन्तु इतनी जो वैष्णवियाँ, सेवादासियाँ या और क्या कहलाती हैं—"

कमललता ने फिर जीभ काटकर कहा, "वे सब मेरी ही तरह उनकी शिष्या हैं। उनका भी उन्होंने ही उद्धार किया है।"

मैंने कहा, "अवश्य ही किया है। किन्तु परकीया साधना, या कुछ इसी तरह की साधना पद्धति तुम लोगों की है—उसमें तो कोई दोष नहीं है—"

वैष्णवी ने मुझे रोककर कहा, "तुम लोगों ने दूर रहकर केवल हमारा हँसी मजाक ही उड़ाया है, निकट आकर कभी कुछ देखा तो है नहीं, इसी लिए सहज में ही व्यंग कर सकते हो। हम लोगों के बड़े गोसाईं जो संन्यासी हैं। उनका उपहास करने से अपराध होता है नये गोसाईं, ऐसी बात फिर कभी मुँहसे मत निकालना।"

उसकी बातों और गम्भीरता से मैं कुछ अप्रतिभ सा हो गया। वैष्णवी ने यह लक्ष्य करके मुसकुराते हुए कहा, 'दो दिन हम लोगों के पास रहो न गोसाईं। केवल बड़े गोसाईंजी के लिए ही नहीं कह रही हूँ, मुझे तो तुम प्यार करते हो, और कभी यदि मुलाकात न भी हो तो कम से कम यह तो देख जाओ कि कमललता सचमुच क्या लेकर संसार में रह रही है। यतीन को मैं आज भी नहीं भूली हूँ, दो दिन रहो, मैं कह रही हूं कि तुम यथार्थ में खुश होंगे।"

मैं चुप हो रहा। ऐसी बात नहीं है कि इन लोगों के सम्बन्ध में मुझे कुछ भी जानकारी नहीं है। यथार्थ वैष्णव की लड़की टगर की बात भी याद पड़ गयी, किन्तु मजाक करने की ओर प्रवृत्ति नहीं रही। यतीन के प्रायश्चित्त की घटना सभी आलोचनाओं के बीच रह रहकर मानों मेरे चित्तको विचलित कर रही थी।

वैष्णवी ने अचानक प्रश्न किया, 'अच्छा गोसाईं, इस उम्र में सचमुच ही क्या किसीको तुमने प्यार नहीं किया?'

"तुम्हारा क्या खयाल है कमललता।"

"मुझे खयाल होता है कि, नहीं। असल में तुम्हारा मन वैरागी का मन है, उदासीन का मन है। तितली की तरह तुम कभी किसी का बन्धन न मानोगे।"

मैंने हँसकर कहा, "तितली की उपमा तो अच्छी नहीं हुई कमललता। यह तो सुनने में बहुत कुछ गाली जैसी लग रही है। मेरा प्रेम-पात्र, यदि सचमुच ही कहीं कोई हो तो उसके कानों में यह बात पहुँचने से अनर्थ हो जायगा।

वैष्णवी हँसने लगी, बोली, 'डरने की कोई बात नहीं है गोसाईं, यदि सचमुच ही कोई हो, तो उसे मेरी बातों पर विश्वास न होगा, और तुम्हारी मधु मिश्रित चातुरी को भी वह सारे जीवन में न पकड़ सकेगी।"

मैंने कहा, "तो फिर उसे दुःख किस बात का? हो न चातुरी. किन्तु उसके निकट तो वही सच होकर रहेगी।"

वैष्णवी ने सिर हिलाकर कहा, "ऐसा नहीं होता गोसाईं, झूठ कभी सच की

जगह लेकर नहीं रह सकता। वे भले ही न समझ सकें, उनके लिए कारण भले ही स्पष्ट न हों, तो भी उनका अन्तर निरन्तर अश्रुमुखी बना रहता है। मिथ्या का काण्ड तो देख ही रही हूँ। इसी तरह इस रास्तेपर कितने लोग आये, यह रास्ता जिनके लिए सत्य नहीं है, उनकी सारी साधना ही जल की धारा के मार्ग की सूखी बालू की तरह सर्वदा अलग ही रही है, कभी जमकर एकत्रित न हो सकी है।"

जरा रुककर वह मानो अचानक मन ही मन बोल उठी, "वे रस की खबर तो पाते नहीं, इसी लिए प्राणहीन निर्जीव मूर्ति की निरर्थक सेवा करते-करते उनका प्राण दो दिनों में ही हाँफ उठता है, सोचते हैं कि यह किस मोह के अन्धकार में अपने को दिन रात ठगते हुए मारे जा रहे हैं। ऐसे लोगों को देखकर ही तुमलोग हम लोगों का उपहास करना सीखते हो,—किन्तु मैं यह क्या व्यर्थ की बातें कहती चली जा रही हूँ गोसाईं, इन सब असम्बद्ध प्रलाप की बातों की एक बात भी तुम न समझोगे गोसाईं। किन्तु यदि तुम्हारी ऐसी कोई हो, तो तुम उसे भूल जाओगे, किन्तु वह तुमको न भूल सकेगी, और उसकी आँखों की जलधारा भी कभी न सूखेगी।"

मैंने स्वीकार किया कि उसके वक्तव्य का प्रथम अंश मैंने नहीं समझा, किन्तु अन्तिम अंश के प्रतिवाद में कहा "तुम क्या मुझसे यही बात कहना चाहती हो कमललता, कि मुझको प्यार करने का नाम ही है दुःख पाना।"

"दुःख की बात तो मैंने नहीं कही गोसाईं, कही है आखों के जल की बात।"

"किन्तु कमललता, ये दोनों तो एक ही हैं, केवल शब्दों के हेरफेर हैं।"

वैष्णवी ने कहा, "नहीं गोसाईं, ये दोनों एक नहीं हैं, न तो शब्दों का हेरफेर है और न तो भावों का ही। औरतें इससे न तो डरती ही हैं और न तो इससे बचना ही चाहती हैं, किन्तु तुम कैसे समझोगे?"

"यदि कुछ भी न समझूँगा तो मुझसे कहती ही क्यों हो?"

"न कहकर भी तो नहीं रह सकती जी। प्रेम की वास्तविकता को लेकर जब पुरुषों का दल तुम लोग बड़ाई करने लगते हो तब हम समझ सकती हैं कि हमारी जाति ही अलग है। तुम लोगों के और हम लोगों के प्यार की प्रकृति ही भिन्न है। तुम लोग चाहते हो उल्लास और हम लोग चाहती हैं शान्ति। जानते

हो गोसाईं, कि प्रेम के नशे से हम भीतर ही भीतर डरती रहती हैं। उसकी उन्मत्तता से हमारे हृदय की धड़कन नहीं रुकती।"

मैं न मालूम क्या प्रश्न करना चाहता था, किन्तु उसने ध्यान ही नहीं दिया, भावावेश में कहने लगी, "वह हमारा सत्य भी नहीं है, हमारा अपना भी नहीं है। उसकी दौड़ धूप की चंचलता जिस दिन रुकती है, उसी दिन हम केवल निःश्वास छोड़कर आराम पाती हैं। अजी नये गोसाईं, निर्भयता पाने की अपेक्षा प्रेम की बड़ी प्राप्ति स्त्रियों के लिए और कुछ नहीं है। किन्तु वही चीज तो तुम लोगों से कभी कोई नहीं पाती।"

मैंने पूछा, "क्या निश्चित रूप से जानती हो कि नहीं पाती?"

वैष्णवी ने कहा, "निश्चित रूप से जानती हूं। इसी लिए तो तुम्हारी बड़ाई मुझसे सही नहीं जाती।"

आश्चर्य में पड़ गया। बोला, "बड़ाई तो तुम्हारे सामने कभी नहीं की कमललता?"

उसने कहा, "जान बूझकर नहीं की, किन्तु तुम्हारा वह उदासीन वैरागी मन,— जगत में उससे बढ़कर अधिक अहंकारी और कुछ है क्या?"

"किन्तु इन्हीं दो दिनों में मुझे तुमने इतना कैसे जान लिया?"

"इस लिए जान गई कि तुमको मैंने प्यार किया है।"

सुनकर मन ही मन कहा, "तुम्हारे दुःख और आँखों के जल का प्रभेद इतनी देर के बाद समझ सका हूँ कमललता! मालूम होता है कि अविश्राम रूप से पूजा और रस की आराधना का परिणाम ऐसा ही होता है।"

मैंने पूछा, "क्या यह सच है कि तुमने प्यार किया है कमललता?"

"हाँ, सच है।"

किन्तु तुम्हारा जप-तप, तुम्हारा कीर्तन, रात दिन की ठाकुर सेवा—इन सब का क्या होगा बताओ तो?"

वैष्णवी ने कहा "तब तो ये सब मेरे लिए और भी सत्य और भी सार्थक हो उठेंगे। चलो न गोसाईं, सब कुछ छोड़-छाड़कर दोनों रास्तेपर निकल पड़ें?"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "यह नहीं होगा कमललता, कल मैं चला जाऊँगा, किन्तु जाने के पहले गौहर के बारे में जान लेने की इच्छा हो रही है।"

वैष्णवी ने सांस खींचकर केवल कहा, "गौहर के बारे में? नहीं, उसे सुनने की तुम्हें जरूरत नहीं। किन्तु क्या सचमुच ही कल चले जाओगे?"

"हाँ, सचमुच ही कल चला जाऊँगा।"

क्षणभर के लिए स्तब्ध रहकर वैष्णवी बोली, "किन्तु इस आश्रम में फिर जब तुम कभी आओगे गोसाईं, तो कमललता को फिर न खोज पाओगे।"

८

इस विषय में सन्देह नहीं था कि अब यहाँ एक क्षण भी रहना उचित नहीं। किन्तु उसी समय मानो कोई आड़ में खड़ा होकर आँखें बन्द करके इशारे से मना करता है और कहता है, 'जाओगे क्यों?' छः सात दिन यहाँ रहने की बात सोचकर ही तो आये थे, रहो न, कष्ट तो कुछ नहीं है।

रात को बिछौने पर लेटकर सोच रहा था कि ये कौन हैं जो एक ही शरीर में रहकर, एक ही समय में ठीक उलटी सम्मति देते हैं? किसकी बात अधिक सत्य है? कौन अधिक अपना है? विवेक, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति—इसी तरह के न मालूम कितने नाम हैं; इनकी न मालूम कितनी दार्शनिक व्याख्याएँ हैं, किन्तु निःसंशय सत्य को आज भी कौन प्रतिष्ठित कर सका है? जिसको अच्छा समझता हूं, इधर आकर वहीं पर कदम बढ़ाने में रुकावट क्यों डालता है। अपने ही अन्दर के इस विरोध, इस द्वन्द्व का शेष क्यों नहीं होता? मन कहता है कि मेरा चला जाना ही कल्याणकारक है, तो फिर दूसरे ही क्षण उस मन की दोनों आँखों में जल किस लिए भर उठता है। बुद्धि, विवेक, प्रवृत्ति, मन–इन सब बातों की सृष्टि करके सत्य की सान्त्वना कहाँ रह जाती है?

फिर भी जाना ही पड़ेगा पीछे हटने से काम नहीं चलेगा। और कल ही।

यही सोचने लगा कि इस जाने के काम को कैसे सम्पन्न करूँ। लड़कपन का एक रास्ता जानता हूँ—वह है गायब हो जाना। विदा की वाणी नहीं, लौट आने की बनावटी मीठी बातें नहीं, कारण का प्रदर्शन नहीं; प्रयोजन का, कर्तव्य का विस्तृत विवरण नहीं;—केवल मैं था और अब मैं नहीं हूँ, इस सत्य घटना के आविष्कार का भार उन लोगों पर चुपचाप छोड़ देना, जो पीछे रह गये हैं, इतना ही बस।

निश्चय कर लिया कि, सोना नहीं होगा. ठाकुरजी की मंगल आरती शुरू होने के पहले ही अन्धकार में शरीर ढंककर प्रस्थान करूँगा। किन्तु एक दिक्कत यह है कि पूँटू के दहेज का रुपया छोटे बैग के साथ कमललता के पास है। किन्तु उसे रहने दो। कलकत्ता से. या बर्मा से चिट्ठी लिख दूंगा, उससे यह काम यह भी होगा कि मुझे उन्हें न लौटाने के समय तक कमललता को यहाँ ही रहना पड़ेगा। पथ विपथ पर जाने का अवसर नहीं मिलेगा। इधर जो कुछ रुपये मेरे कुरते की की जेब में पड़े हैं, कलकत्ता तक पहुँचने के लिए उतने ही काफी हैं।

बड़ी रात तक इसी तरह समय बीत गया। और चूँकि बार बार इस बात का संकल्प कर लिया था कि सोऊँगा ही नहीं, शायद इसी कारण न मालूम किस समय सो गया। कितनी देरतक सोया रहा, यह नहीं जानता, किन्तु अचानक ऐसा मालूम हुआ मानो सपने में गाना सुन रहा हूं। इसबार मैंने सोचा कि रात का मामला शायद अब तक समाप्त नहीं हुआ है, फिर ऐसा खयाल हुआ मानो प्रभातकाल की मंगल आरती अभी शुरू हुई है, कांसे के घण्टे का दुःसह निनाद इसमें नहीं है। असम्पूर्ण अपरितृप्त निद्रा टूटकर भी नहीं टूटती, आँखें खोलकर देख भी नहीं सकता, किन्तु कानों में प्रभाती के सुर में मधुर कंठ का प्रिय धीमा आह्वान पहुँचा—जागो जागो राधा रानी पंछी बन बोले। कब तक सोवत हो साँवलिया के कोले। गोसाईं जी, और कितनी देरतक सोओगे, उठो?"

बिछौने पर उठ बैठा। मसहरी खुली है, पूरब का दरवाजा खुला है सामने की आम्रशाखाओं में पुष्पित लवंग मञ्जरी के कई बड़े बड़े गुच्छे नीचे तक झूल रहे हैं, उनके ही खाली स्थानों में से दिखाई पड़ा कि आकाश में कुछ जगहों में हलके लाल रंग का आभास पड़ा है, अँधेरी रात में सुदूर ग्रामों के अन्त में आग लग जाने की भाँति है, मन में कहीं मानो कुछ व्यथा होने लगी! कुछ चमगीदड़ शायद उड़कर अपने वास स्थानों को लौट रहे थे। उनके पाँखों की फड़फड़ाहट की स्पष्ट आवाज

एक एक करके कानों में आने लगी। समझ में आया कि और जो कुछ भी हो, रात खत्म हो रही है। यह नीलकण्ठों, बुलबुलों और श्यामा पक्षियों का देश है। मानो यह उन लोगां की राजधानी कलकत्ता शहर है। और वह विशाल बकुलवृक्ष उनके लेन-देन और कामकाज का बड़ा बाजार है, जहाँ दिन के समय की भीड़ देखकर अवाक् हो जाना पड़ता है। तरह-तरह के चेहरों, तरह-तरह की भाषाओं, तरह-तरह के रंग-विरंगे पोशाक परिच्छदों का विचित्र समावेश है। रात को अखाड़े के चारों ओर के बन जंगल में डाल-डालपर उनके अगणित अड्डे हैं। नींद खुल जाने की आहट कुछ पाई गई। रंग-ढंग से मालूम हुआ मानों वे आँख-मुँह जल से धोकर तैयारी कर रहे हैं। इस बार समस्त दिनव्यापी नाच गान का महोत्सव शुरू होगा। ये सभी लखनऊ के उस्ताद हैं, थकते भी नहीं, कसरत भी बन्द नहीं करते। भीतर वैष्णव दल का कीर्तन शायद कभी बन्द भी हो जाय, बाहर उस बला की गुञ्जाइश नहीं है। यहाँ पर छोटे-बड़े, भले-बुरे का विचार नहीं चलता। इच्छा और समय रहे या न रहे, तुम्हें गाना तो सुनना ही पड़ेगा। इस देश की शायद ऐसी ही व्यवस्था है। याद पड़ गया कि कल सारी दोपहरी में पीछे की बंसवारी में दो पपीहों की ऊँचे गले की पुकार की अविश्रान्त होड़ से मेरी दिवा-निद्रा में काफी बिघ्न पड़ा था, और सम्भवतः मेरी ही तरह विक्षुब्ध हुआ कोई जलकाक नदी के कलमी दल पर बैठकर, और भी कठोर कण्ठ से बार-बार उनका तिरस्कार करके भी उन्हें चुप नहीं कर सका था। भाग्य अच्छा है कि इस देश में मोर नहीं मिलते, नहीं तो उनके इस उत्सव के गानों के अड्डेपर आ पहुँचने से तो मनुष्य यहाँ टिक भी नहीं सकता। सो जो भी हो, दिन का उपद्रव अब भी शुरू नहीं हुआ था, शायद और भी थोड़ा निर्विघ्न सो सकता था। किन्तु इसी समय गतरात्रि का सङ्कल्प याद आ गया। किन्तु अब शरीर ढंककर खिसक जाने का भी मौका नहीं रहा। पहरेदारों की सतर्कता से मतलब बिगड़ गया। नाराज होकर मैं बोल उठा, 'मैं राधा भी नहीं हूँ, मेरे बिछौने पर श्याम भी नहीं हैं, आधी रात को नींद तोड़कर जगाने की भला क्या जरूरत थी, बताओ तो ?',

'वैष्णवी ने कहा, "रात कहाँ है गोसाईं, तुम्हारी तो आज प्रातःकाल की गाड़ी से कलकत्ता जाने की बात है। मुँह हाथ धोकर आ जाओ, मैं चाय तैयार

करके लाती हूँ। किन्तु स्नान मत करना। आदत नहीं है, बीमारी पकड़ सकती है।"

मैंने कहा, "हाँ, पकड़ सकती है। सबेरे की गाड़ी से जब इच्छा होगी मैं चला जाऊँगा किन्तु बताओ तो, इसमें तुम्हारा इतना उत्साह क्यों है?"

उसने कहा, "और किसीके उठने के पहले मैं जो तुमको बड़े रास्ते तक पहुँचा आना चाहती हूं गोसाईं।" उसका मुँह साफ नहीं दिखाई पड़ा, किन्तु उसके बिखरे हुए बालों की तरफ देखने से कमरे के इतने कम प्रकाश में भी समझ में यह बात आ गई, कि वे भीगे हैं, वैष्णवी स्नान करके तैयार हो आई है।

मैंने पूछा, "मुझे पहुँचाकर फिर आश्रम में ही लौट आओगी तो?"

वैष्णवी ने कहा, "हाँ।"

रुपये की उस छोटी सी थैली को बिछौने पर रखकर उसने कहा, "यह लो अपना बैग। इसे रास्ते में सावधानी से रखना। रुपयों को एक बार देख लो।"

एकाएक मेरे मुँह से कोई बात नहीं निकली, इसके बाद मैंने कहा, "कमललता, तुम्हारा इस रास्ते पर आना मिथ्या है। एक दिन तुम्हारा नाम था ऊषा, आज भी तुम वही ऊषा हो, जरा भी नहीं बदल सकी हो।"

"क्यों बताओ तो?"

"तुम बताओ तो तुमने मुझे रुपये गिन लेने को क्यों कहा? गिन सकता हूँ, यह क्या तुम सच समझती हो। जो लोग सोचते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं, उन्हें पाखण्डी कहते हैं। जाने के पहले मैं बड़े गोसाईं जी के यहाँ यह नालिश कर जाऊँगा कि अखाड़े के खाते से तुम्हारा नाम काट दें। तुम वैष्णव दल के लिए कलङ्क हो।"

वह चुप रही। मैं भी क्षणभर तक मौन रहकर बोला, "आज सवेरे जाने की मेरी इच्छा नहीं है।"

"नहीं है? तब तो थोड़ी देर तक और सो लो। उठने पर मुझे खबर देना, क्यों?"

"किन्तु, तुम अभी क्या करोगी?"

"मुझे काम है। फूल चुनने जाऊँगी।"

"इस अन्धकार में? डर नहीं लगता?"

"नहीं, डर किस बात का ? सबेरे की पूजा के फूल मैं ही चुनकर लाती हूं, नहीं तो उन लोगों को बड़ा कष्ट होता है।"

'उन लोगों' का अर्थ है दूसरी बैष्णवियाँ। यहाँ दो दिन ठहरकर यह लक्ष्य कर रहा था कि सबकी आड़ में रह कर मठ का समस्त गुरुभार ही कमललता अकेली वहन करती है। उसकी प्रभुता सभी व्यवस्थाओं पर है, सबके ही ऊपर। किन्तु स्नेह से, सौजन्य से और सर्वोपरि सविनय कर्मकुशलता से यह प्रभुत्व ऐसी सहज शृंखलामें प्रवाहमान है कि कहीं भी ईर्षा-विद्वेषका जरा भी मैल नहीं जमने पाता। ऐसी आश्रम-लक्ष्मी आज उत्कण्ठ व्याकुलता के साथ जाऊँ, जाऊँ कर रही है। यह कितनी बड़ी दुर्घटना है। कितनी बड़ी निरुपाय दुर्गति में इतने निश्चिन्त नरनारी स्खलित होकर गिर पड़ेंगे, यह बात असन्दिग्ध रूप से उपलब्ध करके मुझे भी क्लेश का अनुभव हुआ। इस मठ में केवल दो दिन से हूँ, किन्तु न मालूम किस तरह का एक आकर्षण अनुभव कर रहा हूँ। ऐसा ही मानो मेरा मनोभाव हो गया है कि इसकी आन्तरिक शुभाकांक्षा चाहे बिना मैं रह न सकूंगा। सोचा, लोग झूठ ही कहते हैं कि सबको मिलाकर आश्रम है। यहाँ सभी समान हैं। किन्तु यह मानो आँखो के सामने ही देखने लगा कि एक के अभाव में केन्द्रभ्रष्ट उपग्रह की भाँति समस्त आयतन ही दिशा विदिशाओं में विच्छिन्न-विक्षिप्त होकर गिर सकता है। मैंने कहा, "अब मैं नहीं सोऊँगा कमललता। चलो, तुम्हारे साथ चलकर फूल चुन लाऊँ।"

वैष्णवी ने कहा, "तुमने स्नान नहीं किया है, कपड़े नहीं बदले हैं। तुम्हारे छुए हुए फूलों से पूजा कैसे होगी।"

मैंने कहा, "फूल मत तोड़ने देना, डाल झुकाकर पकड़ने तो दोगी। इससे भी तो तुम्हारी सहायता होगी।"

वैष्णवी ने कहा, "डाल झुकाने की जरूरत नहीं पड़ती, पेड़ तो छोटे छोटे ही हैं, मैं खुद ही कर लेती हूं।"

मैंने कहा, "कम से कम साथ रहकर सुख दुःख की दो चार बातें तो कर सकूँगा ? इससे भी तुम्हारा परिश्रम कुछ कम होगा।"

इस बार वैष्णवी हँस पड़ी। बोली, "एकाएक मेरे लिए इतना दरद हो गया गोसाईं, अच्छा चलो। मैं डाली लेकर आ रही हूँ, तब तक तुम हाथ मुँह धोकर

कपड़े बदल लो।"

आश्रम के बाहर थोड़ी दूर पर फूल का बगीचा है। घने छायादार आम के बन के भीतर से रास्ता है। केवल अन्धकार के कारण नहीं, ढेर के ढेर सूखे पत्तों के जमा हो जाने से पथ की रेखा विलुप्त हो गई है। वैष्णवी आगे-आगे और मैं पीछे पीछे चला. तो भी डर लगने लगा कि कहीं साँप की गरदन पर पैर न पड़ जाय। मैंने कहा, "कमललता, रास्ता तो नहीं भूलोगी?"

वैष्णवी बोली, "नहीं, कम से कम आज तो तुम्हारे लिए रास्ता पहिचान कर चलना पड़ेगा।"

"कमललता, मेरा एक अनुरोध रखोगी?"

"कैसा अनुरोध।"

"यहाँ से और कहीं तुम मत जाना।"

"जाने से तुम्हारा क्या नुकसान होगा?"

जवाब न दे सका, अतः चुप रह गया।

वैष्णवी ने कहा,—"मुरारी ठाकुर का एक गान है—'हे सखी, अपने घर लौट जाओ जिसने जीते हुए भी मर कर अपने को खो दिया है, उसे तुम अब क्या समझाती हो।' गोसाईं, तुम आज शामको कलकत्ता चले जाओगे, और अब शायद तुम एक पहर से ज्यादा समय ठहर न सकोगे, क्यों?"

मैंने कहा, "क्या मालूम, पहले सबेरा तो हो जाने दो।"

वैष्णवी ने जवाब नहीं दिया। कुछ देर बाद गुनगुना कर गाने लगी—

चण्डीदास कहे सुनो विनोदिनी सुख दुःख दोनो भाई।
सुख के लिए जो करें प्रेम, दुःख ही ता ढिग जाई॥

उसके रुक जाने पर मैंने कहा, "इसके बाद?"

"इसके बाद और नहीं जानती।"

मैंने कहा, "तो और कुछ गाओ।"

वैष्णवी ने उसी तरह मधुर कण्ठ में गाया—

चण्डीदास-वाणी सुनो विनोदिनी, प्रेम की बात न भावै।
प्रेम के कारण प्राण गँवावै प्रेमहि सो जन पावै॥

इस बार भी उसके रुकने पर मैंने कहा, "इसके बाद?"

वैष्णवी बोली "इसके बाद और कुछ नहीं है, यहीं शेष है।"

अवश्य ही शेष है। हम दोनों ही चुप हो रहे। बहुत इच्छा होने लगी कि द्रुतपदों से उसके और पास जाकर कुछ और बात कह कर इस अन्धकारमय रास्ते में उसका हाथ पकड़ कर चलूँ। यह जानता हूँ कि वह नाराज न होगी, बाधा भी न डालेगी। किन्तु किसी तरह भी पैर आगे नहीं बढ़े, मुंह से भी कोई बात न निकली, जैसे चल रहा था, वैसे ही धीरे धीरे चुपचाप जंगल के बाहर आ पहुँचा।

रास्ते के किनारे घेरे से घिरा हुआ आश्रम का फूलों का बगीचा है। वही बगीचा ठाकुर जी की दैनिक पूजा के लिए फूल जुटा देता है। खुली हुई जगह में अन्धकार अब नहीं रह गया है, किन्तु प्रकाश भी बहुत नहीं हुआ है। तथापि दिखाई पड़ा कि असंख्य खिले हुए मल्लिका फूलों से समूचा बगीचा मानो सफेद हो गया है। सामने के झड़े पत्ते वाले मुण्डे चम्पा पेड़ में फूल नहीं हैं, किन्तु उसके पास ही कहीं शायद कुछ रजनीगन्धा के फूल असमय में ही फूल रहे हैं, जिनकी मधुर गन्ध से उस त्रुटि की पूर्ति हो गई है। और सबसे अच्छा लग रहा है बीच का हिस्सा। निशा के अन्त में इस धुँधले प्रकाश में भी एक दूसरे से शाखा प्रशाखाओं में भिड़े हुए लगभग पाँच छः स्थानों में स्थल पद्म (गुलाब) के झाड़ पहचाने जाते हैं। इनमें इतने अधिक फूल हैं कि गिने नहीं जा सकते, वे सभी मानो विकसित सहस्रों लाल आँखों से बगीचे के चारा तरफ देख रहे हैं।

मैं कभी इतना सबेरे शय्या छोड़कर नहीं उठता। यह समय तो सदा निद्राच्छन्न जड़ता में कट जाता है। आज कितना अच्छा लगा, यह बता नहीं सकता। पूरब के रक्तिम दिगन्त में ज्योतिर्मय का आभास पा रहा हूँ, उसकी निःशब्द महिमा से सारा आकाश शान्त हो रहा है। वह है लताओं और पत्तों से, शोभा और सौरभ से फूलों से परिव्याप्त सामने का उपवन,—सभी मिलकर ऐसा मालूम हुआ कि मानो यह रात्रि की वाक्यहीन विदा की अश्रुरुद्ध भाषा हो। करुणा ममता और अयाचित दाक्षिण्य से मेरा समस्त अन्तर निमेषमात्र में परिपूर्ण हो उठा। सहसा बोल उठा, "कमललता जीवन में तुम अनेक दुःख अनेक व्यथा पा चुकी हो, प्रार्थना करता हूँ कि इसबार तुम सुखी होओ।"

"वैष्णवी डाली को फूल की डाली में लटका कर फाटक का दरवाजा खोल

रही थी कि उसने आश्चर्य से घूमकर देखा और कहा, "अचानक तुम्हें क्या हो गया गोसाईं ?"

अपनी बात अपने कानों में भी न मालूम कैसी बेढंगी सी खटक रही थी। उसके विस्मययुक्त प्रश्न से मन ही मन भारी अप्रतिभ हो उठा। मुँह से कोई भी बात नहीं निकली। लज्जा ढंकनेवाली एक अर्थहीन हंसी की चेष्टा भी ठीक तरह सफल नहीं हुई, अन्त में चुप हो रहा।

वैष्णवी ने भीतर प्रवेश किया। मैं भी उसके साथ गया। फूल तोड़ना शुरू करके उसने खुद ही कहा, "मैं सुख में ही हूँ गोसाईं। जिनके पादपद्मों में अपने को अर्पित कर दिया है, वे कभी इस दासी को न छोड़ेंगे।"

सन्देह हुआ कि उसकी बात का अर्थ साफ नहीं है, किन्तु यह कहने का साहस भी नहीं हुआ कि साफ कह दो। वह मृदु-गुञ्जन करती हुई गाने लगी—

श्याम मणिमाला गले नित ही पहनूँगी।
कानों मे श्याम के ही यशकुण्डल धारूँगी॥
उनके ही अनुराग रंगे वसन पहिन घूमूँगी।
योगिन वेश में मैं तो अब दर-दर भटकूँगी॥
कहे यदुनाथ दास........

गीत रोक देना पड़ा। मैंने कहा, "यदुनाथ दास को रहने दो। उधर झलरी की आवाज सुन रही हो ? क्या लौटोगी नहीं ?"

उसने मेरी ओर देखकर मृदुहास्य से फिर शुरू कर दिया—

धरम करम भले ही जाय, नहीं डर है कुछ भी मुझको।
कहीं इस फेर में पड़कर खो न दूँ निज प्रीतम को॥

अच्छा नये गोसाईं, जानते हो कि बहुत से भले आदमी औरतों का गाना सुनना नहीं चाहते, उनको बहुत बुरा लगता है ?"

मैंने कहा, "जानता हूँ, किन्तु मैं इस तरह के भले वर्गों में नहीं हूं।"

"तो बाधा देकर मुझे रोक क्यों दिया ?"

"उधर शायद आरती शुरू हो गई है, तुम्हारे न रहने से तो उसमें कमी रह जायगी।"

"यह झूठी छलना है गोसाईं।"

"खलना क्यों होगी ?"

"क्यों होगी, यह तो तुमही जानते हो। किन्तु यह बात तुमसे किसने कही ? मेरे न रहने से ठाकुरजी की सेवा में कमी हो सकती है, इस पर क्या तुम विश्वास करते हो ?"

"करता हूँ ! मुझसे किसी ने नहीं कहा कमललता, मैंने अपनी ही आँखों से देखा है।"

उसने और कुछ भी नहीं कहा, न मालूम किस तरह के अन्यमनस्क भाव से वह मेरे मुँह की तरफ ताकती रही। इसके बाद फूल चुनने लगी। डलिया भर उठने पर बोली, "हो गया, अब नहीं।"

"गुलाब नहीं चुन लिये ?"

"नहीं, उन्हें हम नहीं चुनतीं, यहाँ से ही भगवान को निवेदन कर देती हैं। चलो, अब चलो।"

उजाला हो गया है, किन्तु यह मठ गाँव के एकान्त में है। इधर ज्यादा कोई नहीं आता। इसलिए यह पथ तब भी जनहीन था, अब भी वैसा ही है। चलते चलते एक बार फिर वही प्रश्न किया, "तुम क्या सचमुच ही यहाँ से चली जाओगी ?"

"बार बार यह बात पूछने से तुमको क्या मिलेगा, गोसाईं ?"

इस बार भी मैं जवाब न दे सका। केवल अपने आपसे पूछा, सचमुच बार बार यह बात क्यों जानना चाहता हूँ। जान लेने से मेरा क्या लाभ है ?

❀ ❀ ❀ ❀

मठ में लौटने पर देखा कि इस बीच सभी जागकर प्रतिदिन के प्रातःकृत्य में लग गये हैं। उस समय झलरी की आवाज से घबड़ाकर झूठमूठ ही वैष्णवी को उकता दिया था। मालूम हुआ कि वह मंगल आरती नहीं थी, केवल ठाकुरजी की नींद तोड़ने का बाजा था। यह उन्हें ही अच्छा लगता है।

हम दोनों को बहुतों ने गौर से देखा। किन्तु किसी के भी देखने में कौतूहल नहीं था। केवल कम उम्र होने के कारण पद्मा जरा मुसकुरा उठी और फिर मुँह झुका लिया। वह ठाकुरजी की माला गूँथती है। डाली को उसी के पास रखकर कमललता ने सस्नेह कौतुक से झिड़ककर कहा, "हँसी क्यों जल मुँही ?"

उसने किन्तु मुँह ऊपर नहीं उठाया। कमललता ने ठाकुरजी के कमरे में प्रवेश किया, मैं भी अपने कमरे में चला गया।

स्नान और आहार यथाशक्ति और यथासमय सम्पन्न हुआ। शामकी गाड़ी से मेरे जाने की बात थी! वैष्णवी को खोजने गया तो देखा कि वह ठाकुरजी के कमरे में है। ठाकुरजीको सजा रही है। मुझे देखते ही बोली, 'नये गोसाईं, यदि आ गये तो कुछ मेरी सहायता करो न भाई। पद्मा सिर दर्द से पड़ी हुई है, लक्ष्मी सरस्वती दोनों बहिनों को एकाएक ज्वर आ गया है— क्या होनेवाला है, कुछ भी समझ में नहीं आता। बासन्ती रंग के इन दो कपड़ों में जरा चुनट डाल देना गोसाईं।"

अतएव ठाकुरजी के कपड़ों में चुनट डालने के लिए बैठ गया। उस दिन जाना न हो सका। दूसरे दिन भी नहीं, और उसके बाद वाले दिन भी नहीं। बड़े तड़के वैष्णवी के फूल तोड़ने का मैं साथी बन गया। प्रभात में, मध्याह्न में, सन्ध्या को, कुछ न कुछ काम वह मुझसे करा ही लेती है। इसी तरह मानो दिन सपने में बीतने लगे। सेवा में सहृदयता में, आनन्द में, आराधना में, फूलों में, गन्ध में, कीर्तन में और पक्षियों के गान में कहीं भी कोई भी नहीं है। फिर भी सन्दिग्ध मन बीच-बीच में जागरुक होकर भर्त्सना कर उठता है कि क्या यह बच्चों का खिलवाड़ है। बाहर के सभी सम्बन्ध छिन्न करके कुछ निर्जीव मूर्तियों को लेकर यह कैसी व्यस्तता है? इतनी बड़ी आत्म वंचनामें मनुष्य कैसे बच सकता है। किन्तु तो भी अच्छा लगता है, जाने की इच्छा करते हुए भी कदम नहीं बढ़ा सकता। इस तरफ मलेरिया की शिकायत कम है, तो भी बहुतेरे इस समय ज्वर के शिकार होते चले जा रहे हैं। गौहर केवल एक दिन आया था, फिर नहीं आया। उसका भी पता लगाने का समय मुझे नहीं मिल सका—यही मेरे लिए अच्छा हुआ!

अचानक मन का भीतरी भाग भय धिक्कार से परिपूर्ण हो उठा। मैं यह क्या कर रहा हूं। क्या संसर्ग दोष के कारण एक दिन सत्य समझ कर इन्हीं बातों पर विश्वास जम जायगा? निश्चय कर लिया, कि जो कुछ भी क्यों न हो जाय, यह स्थान छोड़कर मुझे कल भाग ही जाना पड़ेगा।

प्रति रात्रि के अवसान में वैष्णवी मुझे आकर जगा जाती है। प्रभाती के सुर में वैष्णव कवियों के नींद तोड़ने वाले गीत शुरू होते हैं। भक्ति और प्रेम का वह कैसा सकरुण आवेदन रहता है। एकाएक मैं हिलता डुलता नहीं कान लगा कर

सुनता रहता हूँ। आखों के कोने में आँसू भर कर गिरने को उद्यत होना चाहते हैं। मसहरी खोलकर वह दरवाजों और खिड़कियों को खोल देती है, उस समय मैं रंज होकर बैठ जाता हूँ और हाथ मुँह धोकर कपड़े बदल कर उसके साथ चल देता हूं।

कुछ दिनों की आदत से आज स्वयं नींद टूट गई। कमरा अन्धेरा था। एक बार ऐसा खयाल हुआ कि अभी रात नहीं बीती है। किन्तु फिर सन्देह उत्पन्न हो गया। बिस्तर छोड़कर बाहर आया, देखा कि रात कहाँ है, सबेरा हो चला है। कुछ खबर देने के लिए कमललता आकर सामने खड़ी हो गई। इस तरह बिना स्नान किये और बिना तैयार चेहरा उसका मैंने कभी नहीं देखा था।

डरकर पूछा, "क्या तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है?"

उसने मलिन हँसी हँसकर कहा, "आज तुम जीत गये गोसाईं।"

"किस तरह, बताओ तो?"

"आज तबीयत उतनी अच्छी नहीं है, ठीक समय पर जाग नहीं सकी।

"तो आज फूल चुनने के लिए कौन गया?"

आंगन के एक छोरपर एक अधमरे तगर वृक्ष पर कुछ फूल थे, उन्हें ही दिखा कर उसने कहा, "इस समय का काम किसी तरह इन्हीं फूलों से चल जायगा।"

"किन्तु ठाकुरजी के गले की माला का क्या होगा?"

"आज उनको माला न पहना सकूँगी।

सुनते ही मन न मालूम कैसा उदास-सा हो उठा,—उन्हीं निर्जीव मूर्तियों के लिए ही— मैंने कहा, "स्नान करके मैं चुन लाऊँ।"

"जा सकते हो, किन्तु इतना सवेरे नहाने न पाओगे। बीमार पड़ जाओगे।"

मैंने पूछा, "बड़े गोसाईजी क्यों नहीं दिखाई पड़ते?"

वैष्णवी ने कहा, "वे तो यहाँ नहीं हैं, परसों नवद्वीप चले गये, अपने गुरुदेव के दर्शन के लिए।

"कब लौटेंगे?"

"यह तो नहीं जानती गोसाईं।"

इतने दिनों तक मठ में रहने पर भी गोसाईं द्वारिकादास के साथ घनिष्ठता नहीं

हुई थी। ऐसा कुछ मेरी त्रुटियों के कारण और कुछ उनके उदासीन स्वभाव के कारण हुआ। वैष्णवी के मुँह से सुनकर और अपनी आँखों से देख कर मैंने यह मालूम किया है कि इस मनुष्य में कपट नहीं हैं, अनाचार नहीं है और प्रभुता करने का कोई झोंक भी नहीं है। वैष्णव धर्मग्रन्थों को लेकर उनका अधिकांश समय निर्जन कमरे में ही बीत जाता है। इनके धर्म-मत में मेरा विश्वास नहीं है, किन्तु इस मनुष्य की बातें इतनी नम्र हैं देखने की भंगी इतनी स्वच्छ और गम्भीर है विश्वास और निष्ठा में दिन रात इतना निमग्न रहा करते हैं कि उनको मत और उनके मार्ग के विरुद्ध कुछ भी आलोचना करने में केवल संकोच ही नहीं होता बल्कि दु:ख भी होता है। यह बात आप ही आप समझ में आती है कि इस स्थान पर तर्क करते जाना एकदम निष्फल है। एक दिन मामूली थोड़ी सी युक्ति का प्रसंग छेड़ देने पर वे हंसते हुए चेहरे से इस तरह चुपचाप ताकने लगे कि लज्जा से मेरे भी मुँह में कोई बात शेष न रह गई। उसके बाद से मैं यथाशक्ति उनसे बचता आया हूं। तो भी एक बात का कौतूहल था। इच्छा था कि यहाँ से जाने के पहले उनसे यह पूछ लूँगा कि इतनी स्त्रियों से घिरे रहकर, निरवच्छिन्न रस के अनुशीलन में निमग्न रहते हुए भी चित्त की शान्ति और शरीर की निर्मलता अक्षुण्ण रखने का रहस्य कैसा है। किन्तु शायद इसबार की यात्रा में वह अवसर नहीं मिला। मन ही मन कहा कि यदि फिर कभी यहाँ आना होगा तो उस समय देखा जायगा।

वैष्णव मठों में भी साधारणत: विग्रह मूर्ति को ब्राह्मण के अतिरिक्त और कोई छू नहीं सकता. किन्तु इस आश्रम में ऐसा नियम नहीं था। ठाकुर जो का एक वैष्णव पुजारी बाहर रहता है, वह आकर आज भी विधिपूर्वक पूजा करके चला गया। किन्तु ठाकुर जी की सेवा का भार आज बहुत अंशों में मेरे ऊपर आ पड़ा। वैष्णवी दिखा देती है, और मैं सब करत जाता हूँ, किन्तु रह-रहकर समूचा हृदय तिक्त हो उठता है। यह कैसा पागलपन मेरे सिर पर सवार हो चला है। आज का भी प्रस्थान रुका रह गया। शायद अपने आपको मैंने यह कहकर समझा दिया कि इतने दिनों से यहाँ रहता हूँ, अब इस विपत्ति में इनको छोड़कर कैसे जाऊँ? संसार में कृतज्ञता नाम की भी तो कोई चीज है।

और भी दो दिन बीत गये। किन्तु अब नहीं। कमललता स्वस्थ हो उठी है,

पद्मा और लक्ष्मी सरस्वती दोनों बहिनें भी अच्छी हो चली हैं। द्वारिकादास कल रात को लौट आये हैं। मैं शाम को बिदा होने के लिए उनके पास गया। गोसाईं जी ने कहा, "आज जाओगे गोसाईं? फिर कब आओगे?"

'यह तो नहीं जानता गोसाईं।'

"किन्तु कमलला तो रोते-रोते अधमरी हो जायगी।"

यह जानकर मन ही मन अत्यन्त विरक्त हो उठा कि हम लोगों की बातें इनके भी कानोंतक पहुँच चुकी है, बोला, "वह रोने लगेगी किस लिए?"

गोसाईं जी ने जरा हंसकर कहा, "शायद तुम नहीं जानते?"

"नहीं।"

"उसका स्वभाव ही ऐसा है। किसीके चले जाने से वह मानो शोक से अधमरी हो उठती है।"

यह बात और भी खराब लगी। बोला, "जिसका स्वभाव ही शोक करने का है, वह शोक करेगी ही। मैं उसको कैसे रोक सकूँगा। किन्तु यह कहकर ही उनकी आँखों की तरफ देखकर गरदन फेरकर देखा कि वह मेरे पीछे खड़ी है।

द्वारिकादास ने कुण्ठित स्वर में कहा, "इसके ऊपर क्रोध मत करो गोसाईं, सुनता हूँ कि ये लोग तुम्हारा आदर न कर सकीं बीमार पड़कर तुमसे बहुत काम कराया है, बहुत कष्ट दिया है। मेरे पास आकर कल वह स्वयं ही बहुत दुःख प्रकट कर रही थीं। इसके अलावा वैष्णव वैरागियों के पास आदर यत्न करने का साधन ही क्या है? किन्तु यदि फिर कभी तुमको इधर आना पड़े तो भिखारियों को दर्शन दे जाना। दोगे तो गोसाईं?"

गरदन हिलाकर बाहर चला आया, कमललता वहाँ पर उसी तरह खड़ी रही। किन्तु अकस्मात् यह क्या हो गया! बिदा होने के पहले, कितनी क्या क्या बातें कहने, कितनी क्या-क्या बातें सुनने का विचार था, सभी नष्ट हो गये। चित्त की दुर्बलता की ग्लानि धीरे धीरे संचित हो रही है, इसका अनुभव मैं कर रहा था, किन्तु यह तो मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि उकताया हुआ असहिष्णु मन इस तरह की अशोभनीय रूढ़ता में अपनी मर्यादा नष्ट कर देगा।

नवीन आकर हाजिर हो गया। वह गौहर की खोज में आया है। कल से वह

अब तक भी घर नहीं लौटा है। मैं आश्चर्य में पड़ गया। पूछा "यह क्या नवीन. वह तो यहाँ भी अब नहीं आता।'

नवीन विशेष विचलित नहीं हुआ, बोला, "मालूम होता है शायद वह किसी वन-जंगल में घूम रहा है, नहाना खाना बन्द कर दिया है — अब तो इस बार साँप से काटे जाने की खबर सुनाई पड़े तो निश्चिन्त हो जाया जाय।

"उसको पता लगाना तो जरूरी है नवीन ?"

'जरूरत तो जानता हूँ, किन्तु कहाँ खोज करूँ। वन-जंगल में घुम फिरकर अपना प्राण तो और नहीं दे सकता बाबू। किन्तु वे कहाँ हैं ? एक बार पूछकर जाना चाहता हूँ।"

' वे कौन ?"

"वही कमललता।"

"किन्तु वह कैसे जानती होगी नवीन ?"

'वे नहीं जानतीं ? सब जानती हैं।"

और बहस न करके उत्तेजित नवीन को मठ के बाहर ले आया। बोला, "सच-सुच ही कमललता कुछ भी नहीं जानती नवीन। खुद बीमार पड़कर वह तीन-चार दिन तक मठ से बाहर कहीं भी नहीं जा सकी।

नवीन ने विश्वास नहीं किया। क्रोध करके कहा. "नहीं जानती ? वह सब जानती है। वैष्णवी कुछ मन्तर जानती है, वह क्या नहीं कर सकती ? किन्तु यदि एक बार नवीन के पाले पड़ जाती तो. मैं उसका आँख मुँह मटकाना कीर्तन करना, बाहर निकाल छोड़ती। बाप का इतना रुपया मानो जादू में उड़ा दिया !

उसको शान्त करने के लिए कहा. 'कमललता रुपया लेकर क्या करेगी नवीन। वैष्णवी है, मठ में रहती है, गाना गाकर भीख माँगती है ठाकुरजी की सेवा करती है, दो वक्त दो मुट्ठी खाने भर को चाहिये। उसे रुपये की भिखारिनी कहना तो मुझे ठीक नहीं मालूम होता नवीन।

नवीन ने कुछ ठण्ढा होकर कहा, "यह तो हम भी जानते हैं कि वह अपने लिए कुछ भी नहीं चाहती। देखने से मानो भले घर की औरत मालूम होती है। उसी तरह का चेहरा है. उसी तरह की बातचीत करती है। बड़े बाबाजी भी लोभी नहीं हैं, किन्तु दल का दल पाल जो रखा है। ठाकुरजी की सेवा के नाम पर

उनके लिए प्रति दिन पूडी कचौड़ी, घी-दूध तो चाहिए। नयन चक्रवर्ती के मुँह से सुना है कि अखाड़े के नाम से बीस बीघा जमीन खरीदी जा चुकी है। कुछ भी नहीं रहेगा बाबू जो कुछ है सब वैरागियों के पेट में ही चला जायगा।"

मैंने कहा, "शायद यह अफवाह सच नहीं है। किन्तु उस तरफ तो तुम्हारे नयन चक्रवर्ती भी ता कम नहीं हैं नवीन।

नवीन ने सहज में ही स्वीकार करके कहा, "यह तो ठीक है। वह ब्राह्मण बड़ा ही चालबाज है। किन्तु किस तरह विश्वास न करूँ बताइये तो। उस दिन व्यर्थ ही में मेरे बच्चों के नाम से दस बीघा जमीन का दानपत्र लिख गया। बहुत मना किया, कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मानता हूँ कि बाप बहुत कुछ रख गये हैं, किन्तु इस तरह उड़ाने से कितने दिन के लिए है बाबू? एक दिन उसने क्या कहा, जानते हैं। कहा कि हम लोग तो फकीरों के वंशधर हैं, कोई भी मेरी फकीरी तो छीनकर नहीं ले सकता। सुनिये इनकी बात!

नवीन चला गया। एक बात पर मेरा ध्यान गया। मैं किस लिए इतने दिनों से मठ में पड़ा हुआ हूं यह बात उसने पूछा भी नहीं। यदि पूछता भी तो मैं क्या कहता, यह मैं नहीं जानता, किन्तु मन ही मन लज्जित हो उठा। उसी से मुझे एक और खबर मिली कि कल कालिदास बाबू के लड़के का बड़ी धूमधाम से विवाह हो गया है। सत्ताईस तारीख की बात मुझे याद नहीं थी।

नवीन की बातों पर मन ही मन सोच विचार करते-करते अचानक बिजली की गति की तरह मन में एक सन्देह उत्पन्न हो गया, वैष्णवी किस लिए जाना चाहती है? उस भौंहोंवाले कुरूप मनुष्य के कण्ठी अदल-बदल करने के पतित्व के बखेड़े से, कदापि नहीं। यह गौहर? यहाँ मेरे रहने के सम्बन्ध में, इसीलिए शायद उस दिन वैष्णवी ने कौतुक के साथ कहा था, 'मैं पकड़ रखूँ तो वह रञ्ज न होगा गोसाईं। रञ्ज होनेवाला आदमी वह नहीं है, किन्तु वह अब आता क्यों नहीं? शायद मन ही मन उसने क्या सोच लिया है। संसार में गौहर की आसक्ति नहीं है, अपना कहने का भी कोई नहीं रहा। रुपये पैसे जमीन जोयदाद मानो उड़ा देने से ही वह बच जायगा। यदि उसने प्यार भी किया होगा तो, वह मुँह खोलकर कहेगा भी नहीं, कहीं ऐसा न हो कि कहीं कोई अपराध स्पर्श न कर दे। वैष्णवी यह जानती है। उस अनतिक्रम्य बाधा से चिर-निरुद्ध प्रणय के निष्फल चित्त दाह से इस शान्त

आत्म-विभोर मनुष्य को मुक्ति देने के ही लिए शायद कमललता भागना चाहती है। नवीन चला गया है। बकुल वृक्ष के नीचे की उस टूटी-फूटी बेदी पर अकेला बैठकर सोच रहा हूँ। घड़ी खोलकर देखा कि पाँच बजेवाली गाड़ी पकड़ने में देर करने से अब काम न चलेगा। किन्तु प्रतिदिन न जाने की ही ऐसी आदत पड़ गई थी कि घबड़ाकर उठना ही चाहता था कि आज भी मन पीछे हटने लगा।

मैं वचन दे चुका था कि चाहे जहाँ ही क्यों न रहूं, पूँटू के बहू भात में जाकर भोजन कर आऊँगा। गायब हुए गौहर का पता लगाना मेरा कर्तव्य है। इतने दिनो तक अनावश्यक अनुरोध मैं बहुत मानता आया हूँ, किन्तु आज जब सत्य कारण मौजूद है तब मना करने वाला कोई नहीं है। देखा कि पद्मा आ रही है। पास आकर उसने कहा, "तुमको दीदी एक बार बुला रही है गोसाईं।

फिर लौट आया। प्रांगण में खड़ी होकर वैष्णवी ने कहा, "कलकत्ते के डेरे तक पहुँचने में तुम्हें रात हो जायगी नये गोसाईं। ठाकुरजी का प्रसाद थोड़ा सजाकर रखा है। चलो कमरे में चलो।

प्रतिदिन की भांति यत्न के साथ आयोजन था। मैं बैठ गया। यहाँ खाने के लिए तंग करने की प्रथा नहीं है। जरूरत पड़ने पर माँग लेनी पड़ता है। जूठन छोड़ने का नियम नहीं है।

जाते समय वैष्णवी ने कहा, "नये गोसाईं, फिर आओगे तो ?

"तुम रहोगी तो ?"

"तुम बताओ. कितने दिनों तक मुझे रहना पड़ेगा ?"

"तुम भी बताओ कितने दिनो में मुझे आना पड़ेगा ?"

"नहीं, यह मैं नहीं बताऊँगी।"

"मत बताओ, एक दूसरी बात का जवाब दोगी. बोलो ?'

इस बार वैष्णवी ने जरा हँसकर कहा, "नहीं, मैं तुमसे वह भी नहीं बताऊँगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वही सोच लो गोसाईं। एक दिन खुद ही उसका जवाब पाओगे।"

अनेक बार मुँह से यही बात निकालने की इच्छा हुई—आज तो अब समय नहीं है कमललता, कल जाऊँगा,—किन्तु किसी तरह भी यह बात नहीं कही जा सकी।

मैं चल पड़ा।

पद्मा आकर पास खड़ी हो गई। कमललता की देखादेखी में उसने भी हाथ उठाककर नमस्कार किया। वैष्णवी ने क्रोधित होकर कहा, "हाथ उठाकर नमस्कार कैसा रे जलमुही पैरों की धूलि लेकर प्रणाम कर।"

इस बात से मानों मैं चौंक उठा। उसके मुँह की तरफ ताकने लगा तो देखा कि उसने उस समय दूसरी तरफ मुँह फेर लिया है। और कोई भी बात न कहकर उन लोगों का आश्रम छोड़कर उसी समय बाहर चला आया।

६

आज असमय में कलकत्ता के मकान पर जाने के उद्देश्य से यात्रा करने बाहर आया हूँ। इसके बाद इससे भी बढ़कर दुःखपूर्ण होगा बर्मा का निर्वासन। शायद लौट आने का समय भी न मिलेगा, जरूरत भी न पड़ेगी। हो सकता है कि यही जाना अन्तिम जाना होगा। गिनती करके देखा कि आज दस दिन बाकी हैं। दस दिन जीवन का कितना अंश है? तो भी मन में सन्देह नहीं है कि दस दिन पहले जो मैं यहाँ आया था, और जो मैं आज बिदा होकर जा रहा हूं, ये दोनों एक ही नहीं हैं।

बहुतों को मैंने खेद के साथ यह कहते सुना है कि अमुक मनुष्य जो ऐसा हो सकता है, ऐसा किसने सोचा था। अर्थात् अमुक मनुष्य का जीवन मानो सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण की भांति उसके अनुमान के पञ्चाङ्ग में लिखा निर्मूल हिसाब है। गड़बड़ी केवल अकल्पित नहीं है, वरन् अन्यायपूर्ण भी है। मानों उसकी बुद्धि के हिसाब के बाहर दुनिया में और कुछ भी नहीं है। यह भी नहीं जानते की संसार में केवल विभिन्न मनुष्य ही नहीं हैं, वरन् एक ही मनुष्य कितने विभिन्न मनुष्यों में रूपान्तरित होता है, उसका पता लगाना व्यर्थ है। यहाँ एक निमेष भी तीक्ष्णता और तीव्रता से समस्त जीवन को अतिक्रम कर सकता है।

सीधा रास्ता छोड़कर वन जंगलों के बीच से इस रास्ते से और उस रास्ते से मता हुआ स्टेशन को चल पड़ा था। यह जाना बहुत अंशों में लड़कपन में

स्कूल जाने का साथा, ट्रेन का समय नहीं जानता, इसकी जल्दी भी नहीं है, केवल यही जानता हूं कि वहाँ पहुँचने पर कभी न कभी कोई गाड़ी मिल ही जायगी। चलते चलते अचानक मानो एकबार ऐसा प्रतीत हुआ कि सभी रास्ते परिचित हैं। मानो इस मार्ग से कितनी बार आना जाना होता रहा है। केवल पहले ये सब बड़े बड़े थे, अब न मालूम किस तरह संकरे और छोटे हो गये हैं। किन्तु यह तो है खाँ लोगों का हत्यारा बगीचा! वही तो जरूर है। यह तो मैं अपने ही गाँव के दक्षिणी मुहल्ले के आखिरी छोर से गुजर रहा हूँ। सुनता हूं कि उसने शूल की व्यथा से उस इमली के पेड़ की ऊपरवाली डाली पर गले में रस्सी डालकर लटक कर आत्महत्या कर ली थी। उसने आत्महत्या की थी या नहीं किन्तु प्राय: सभी गावों की भांति यहाँ भी यह अफवाह फैली हुई है। पेड़ रास्ते के ही पास है। लड़कपन में इसपर दृष्टि पड़ते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे, और आँखें बन्द करके हम लोग एक ही दौड़ में उस स्थान को पार कर जाते थे।

पेड़ उसी तरह मौजूद है। उन दिनों मालूम होता था कि इस अपराधी पेड़ की जड़ मानो पहाड़ की भांति है, चोटी मानो आकाश तक पहुँच गई है। आज देखा कि उस बेचारे में गर्व करने की कोई बात नहीं है। और पाँच इमली के पेड़ जैसे होते हैं यह भी वैसा ही है। जनहीन गाँव के एक छोरपर चुपचाप खड़ा है। शैशव में उसने बहुत ही डरवाया था, आज बहुत वर्षों के बाद प्रथम मिलन में मानों उसने मित्र की भांति आँखें मीचकर कुछ मजाक किया,—"कहो मित्रवर, कैसे हो? डर तो नहीं लगता?"

पास जाकर परम स्नेह से एकबार मैंने उसके शरीर पर हाथ फेर दिया, मन ही मन कहा, "अच्छी तरह हूं भाई साहब। डर क्यों लगेगा, तुम तो मेरे बचपन के पड़ोसी हो, मेरे आत्मीय हो।"

सन्ध्या समय का प्रकाश बुझता चला जा रहा था। बिदा लेकर कहा, "सौभाग्य की बात है कि दैवात् मुलाकात हो गई। अब मैं चला मित्रवर।"

पांत के पांत खड़े बगीचों के बाद कुछ खुला मैदान है। अनमना रहने से शायद पार होकर चला जाता। किन्तु एकाएक बहुत दिनों की प्राय: भूली हुई मीठी गन्ध लगी जिससे मैं चौंक उठा, इधर-उधर नाचते ही नजर पर पड़ गई—वाह! यह तो हम लोगों की वही यशोदा वैष्णवी के आउस फूलों की गन्ध है। बचपन में इसी

के लिए मैंने यशोदा की कितनी ही सिफारिशें की थीं। इस श्रेणी के वृक्ष इस तरफ नहीं दिखाई पड़ते। न मालूम उसने कहाँ से लाकर अपने आँगन के एक छोरपर रोप दिया था। टेढ़ीमेढ़ी गांठों से भरा बूढ़े आदमी की भाँति उसका चेहरा है। उस दिन की ही तरह आज भी उसकी एक मात्र सजीव शाखा और ऊपर की कुछ थोड़ी-सी हरी पत्तियों के बीच उसी तरह के कुछ सफेद फूल हैं। उसके नीचे है यशोदा के पति की समाधि। वैष्णव महाराजको हम लोगों ने नहीं देखा है, हमारे जन्म के पहले ही वे गोलोक को रवाना हो चुके थे। उसकी ही छोटी-सी मनिहारी दूकान विधवा चलाती थी। एक दौरी में भर कर यशादा माला घुंघची, आइना, कंधी आलता, तेल का मसाला, काँच की बनी गुडिया टीन की बाँसुरी आदि लिये दोपहरको घर घरघूमकर बेचती थी। उसके पास मछली पकडने का सामान भी था। बहुत ज्यादा कारोबार नहीं, दो एक पैसे डोरी और अंकुश। यही खरीदने के लिए जब तक हम लोग उसके घर जाकर उपद्रव मचाते थे। फूल के पेड़ की सूखी डाली पर मिट्टी से जगह बनाकर यशोदा शामको प्रदीप जलाती थी। फूल के लिए हम लोगों का उपद्रव शुरू होने पर वह समाधि दिखा कर बोल उठाती थी, "नहीं नहीं बच्चा वह मेरे देवता के फूल हैं। तोड़ने से वे रंज हो जायँगे।"

वैष्णवी नहीं है, वह कब मर गई यह मैं नहीं जानता, शायद बहुत ज्यादा दिन नहीं हुए। पर नजर पड़ी पेड के एक तरफ एक और मिट्टी की छोटी-सी वेदी· शायद यशादा की ही समाधि होगी। ज्यादा सम्भव है कि दीर्घकाल की प्रतीक्षा के बाद उसने अपने पति के पास ही अपने लिए थोड़ी-सी जगह बना ली है। स्तूप की खनी हुई मिट्टी अधिकतर उर्बरा हो जाने मे कई पौधे उग गये हैं और वह एकदम ढक गया है, देखभाल करनेवाला कोई नहीं है।

रास्ता छोड़कर शैशव के परिचित उस बूढ़े पेड़ के पास जाकर खड़ा हो गया। देखा कि सन्ध्या को जलाया प्रदीप नीचे गिरा हुआ है और उसी के ऊपर वह सूखी डाली आज भी उसी तरह तेल से डूबकर काली पड़ गई है।

यशोदा का छोटा कमरा अब तक भी एकदम गिर नहीं गया है. हजारों छिद्रों से शतधा जीर्ण फूस का छप्पर दरवाजे को ढककर औंधा पड़ा आज भी प्राणपण से उसकी रक्षा कर रहा है।

बीस पचीस वर्ष पहले की कितनी ही बातें याद पड़ीं। बाँसों के घेरे से साफ-सुथरा बनाया हुआ यशोदा का आँगन, और वही छोटा-सा कमरा। उसकी आज ऐसी हालत हो गई है। किन्तु इससे भी बढ़कर करुण दृश्य तब तक भी देखने को बाकी था। अचानक दिखाई पड़ा कि उसी कमरे के बीच से, टूटे छप्पर के नीचे से होकर एक कंकालसार कुत्ता निकल आया। मेरे पैरों की आहट से चौंककर शायद वह अनधिकार प्रवेश का प्रतिवाद करना चाहता था। किन्तु कण्ठ इतना क्षीण था कि वह उसके मुँह में ही अँटका रह गया।

मैंने कहा, "क्या रे, मैंने कुछ अपराध तो नहीं किया ?"

मेरे मुँह की तरफ देखकर न मालूम क्या सोचकर वह अपनी पूँछ हिलाने लगा।

मैंने कहा, "अब भी तू यहीं है ?"

प्रत्युत्तर में वह केवल अपनी दोनों मलिन आँखें खोल कर अत्यन्त निरुपाय की भाँति मेरे मुँह की तरफ ताकता रह गया।

इसमें सन्देह नहीं कि यह यशोदा का कुत्ता है। फूलदार रंगीन किनारी से सिलाई की हुई गलपट्टी अब भी उसके गले में है। निःसन्तान रमणी का एकान्त स्नेह का धन यह कुत्ता आज भी अकेला इस परित्यक्त कुटिया में क्या खाकर जीवित है, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। मुहल्ले में प्रवेश करके छीन झपट कर खाने का जोर भी इसमें नहीं है, आदत भी नहीं है, और स्वजाति के साथ मेल रखने की शिक्षा भी इसे नहीं मिली है। अनशन और अर्द्धाशन में यहीं पड़ा रहकर यह बेचारा शायद उसी की राह देख रहा है, जो उसको किसी दिन प्यार करती थी। शायद सोचता रहता है कि कहीं न कहीं गई है। एक न एक दिन लौटकर आयेगी ही। मन ही मन कहा, "यही क्या ऐसा है ? इस प्रत्याशा को बिलकुल पोंछ डालना संसार में क्या इतना ही सहज है ?"

जाने के पहले छप्पर की खाली जगह से आकर एक बार भीतर दृष्टि डाल दी। अंधेरे में कुछ भी दिखाई न पड़ा, केवल दीवार पर चिपकी हुई कुछ तसवीरें नजर आ गईं। राजा रानी से लेकर देवी देवताओं तक के चित्र कपड़े के नये थानों में से निकाल निकालकर संग्रह करके यशोदा तसवीरों का शौक मिटाती थी। याद आ गया कि बचपन में इनको मुग्ध दृष्टि से अनेक बार देखा है। वर्षा की

झड़ी से भींगकर, दीवार की मिट्टी से मलिन होकर ये आज तक भी किसी तरह टिकी हुई हैं।

और पड़ी हुई है पास के ही ताखे पर वैसी ही दुर्दशा में वही रंगीन हँड़िया। देखते ही मुझे यह बात याद आ गई कि इसमें उसके आलते के बण्डल रहते थे। और भी इधर उधर क्या क्या पड़ा था, अन्धकार में पता नहीं लगा। वे सभी चीजें मिलकर मानो मुझे प्राणपण से न मालूम किस बात का इशारा करने लगीं, किन्तु उस भाषा की जानकारी मुझे नहीं थी। ऐसा मालूम हुआ कि मानो मकान के एक कोने में किसी मृतशिशु का खिलौना घर है। घर गृहस्थी की तरह तरह की टूटी फूटी चीजों से यत्नपूर्वक सजाये हुए इस छोटी सी गृहस्थी को वह छोड़ गया है। आज उन चीजों का आदर नहीं है प्रयोजन भी नहीं है, आंचल से बार-बार झाड़ने पोंछने की जरूरत खतम हो गई है। पड़ा हुआ है सिर्फ जंजाल, क्योंकि किसी ने उसे मुक्त नहीं किया है।

वह कुत्ता कुछ दूर तक साथ साथ आकर रुक गया। जब तक दिखाई पडा, मैंने देखा कि तब तक वह बेचारा इस ओर टकटकी लगाये खडा देखता रहा। उसके साथ का परिचय यही प्रथम है और अन्तिम भी है। फिर भी वह कुछ आगे बढ़ कर बिदा देने आया है। मैं जा रहा हूं किसी बन्धुहीन· लक्ष्यहीन प्रवासके लिए, और वह लौट जायगा अपने निराले टूटे हुए मकान में। इस संसार में दोनो के ही लिए राह देखते हुए प्रतीक्षा करने वाला कोई भी नहीं है।

बगीचे के अन्त में वह आँखों से ओझल हो गया। किन्तु पाँच ही मिनट के इस अभागे साथी के लिए हृदय का भीतरी भाग हू हू करके रो उठा। ऐसी ही दशा हो गई कि आँखों का आँसू और संभाल न सका।

चलते चलते सोच रहा था कि ऐसा क्यों होता है ! और किसी दिन ये सब देखता तो शायद कुछ विशेष खयाल न आता। किन्तु आज मेरा हृदयाकाश मेघों के भार से भारातुर हो रहा है—इसलिए उन लोगों के दुःख की हवा से सैकड़ों धाराओं में फटकर ये बरस पड़ना चाहते हैं।

स्टेशन पहुंच गया। भाग्य अच्छा था कि उसी समय गाड़ी मिल गई। कलकत्ते के डेरे तक पहुँचने में अधिक रात न होगी। टिकट खरीद कर बैठ गया और

उसने बाँसुरी (सिटी) बजाकर यात्रा शुरू कर दी। स्टेशन के प्रति, उसके मन में मोह नहीं, सजल आँखों से बार बार घूमकर देखने की उसे जरूरत नहीं।

फिर वही बात याद आ गई। मनुष्य के जीवन में दस दिन कितने से हैं। फिर भी कितने बड़े हैं?

कल प्रातःकाल कमललता अकेली ही फूल तोड़ने जायगी और उसके बाद उसकी सारे दिन चलने वाली ठाकुरसेवा शुरू होगी। क्या मालूम, दस दिन के साथी नये गोसाईं को भूलने में उसे कितने दिन लगेंगे।

उस दिन उसने कहा था, 'सुख में ही तो हूँ गोसाईं। जिनके पादपद्मों में अपने को निवेदन कर दिया है, वे कभी दासी को न छोड़ेंगे।'

ऐसा ही हो, ऐसा ही हो जाय।

बचपन से ही मेरे जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। बलपूर्वक किसी तरह की कामना करना भी मैं नहीं जानता, सुख दुःख की धारणा भी मेरी अलग है। तथापि इतना समय कट गया दूसरों का अनुकरण करने, दूसरों के विश्वास पर रहने और दूसरों का हुक्म तामील करने में। इसलिए कोई भी काम मेरे द्वारा अच्छी तरह सम्पन्न नहीं हो पाता। दुबिधा से दुर्बल मेरे सभी संकल्प और उद्योग ही थोड़ी ही दूर चलने के बाद ठोकर खाकर रास्ते में ही टूट जाते हैं। सभी कहने लगते हैं, 'आलसी है, निकम्मा है।' इसीलिए शायद उन निकम्मे वैरागियों के अखाड़े में ही मेरा अन्तरवासी अपरिचित बन्धु अस्पष्ट छाया रूप में मुझे दर्शन दे गया। मैंने बार बार नाराज होकर मुँह फेर लिया और उन्होंने बार बार स्मित हास्य से हाथ हिला हिलाकर न मालूम क्या इशारा किया।

और वह वैष्णवी कमललता। उसका जीवन मानो प्राचीन वैष्णव कविचित्तों के अश्रुजल का गान है। उसके छन्दों में मेल नहीं, व्याकरण में भूले हैं, भाषा में भी अनेक त्रुटियाँ हैं, किन्तु उसका विस्तार तो उस तरफ से नहीं किया जा सकता। वह मानो उन्हीं का दिया हुआ है। जिसके मर्म में प्रवेश करता है उसे ही उसका पता चलता है। वह मानो गोधूलि के आकाश की रंग बिरंगी तसवीर है। उसका नाम नहीं, संज्ञा नहीं,—कला शास्त्र का सूत्र मिलाकर उसका परिचय देना विडम्बना है।

मुझसे कहा था, 'चलो न गोसाईं, यहाँ से चल दें, गान गाते-गाते रास्ते रास्ते में दोनो के दिन कट जायँगे।'

कहने में तो उसे कुछ भी रुकावट नहीं पड़ी, पर मुझे बात खटकी। मेरा नाम उसने 'नये गोसाईं' रखा। बोली 'वह नाम तो मैं मुँह से नहीं निकाल सकती गोसाईं।' उसका विश्वास है कि मैं उसके विगत जीवन का बन्धु हूं। मुझसे उसे डर नहीं, मेरे पास रहकर उसकी साधना में विघ्न नहीं पड सकता। वैरागी द्वारिकादास की वह शिष्या है मालूम नहीं कि उन्होंने किस साधना से सिद्धि लाभ करने का मन्त्र उसे दिया था।

एकाएक राजलक्ष्मी की बात याद आ गई· याद आ गई उसकी वह चिट्ठी। स्नेह और स्वार्थ के मिश्रण से भरी हुई वह कठोर लिखावट। तो भी जानता हूं, इस जीवन के पूर्ण विराम पर वह मेरे लिए शेष हो गई है। शायद यह अच्छा ही हुआ है। किन्तु उस शून्यता को भर देने के लिए कहीं भी कोई है? खिडकी के बाहर अन्धकारको देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा। एक एक करके न मालूम कितनी बातें और कितनी ही घटनाएं याद पड गईं। शिकार के आयोजन में तना हुआ कुँवर साहब का वह तम्बू, वह दलबल, बहुत वर्षों के बाद प्रवास में उस प्रथम साक्षात के दिन की दीप्त काली आँखों में उसकी वह विस्मय-विमुग्ध कैसी दृष्टि! जिसे जानता था कि मर गई है, उसे पहिचान नहीं सका,—उस दिन श्मशान के पथ में उसी की कैसी व्यग्र व्याकुल बिनती थी और अन्त में क्रुद्ध निराशा का वह कैसा तीव्र अभिमान था! रास्ता रोककर कहा था, 'जाना चाहते हो, इसीलिए क्या तुम्हें जाने दूंगी? देखूँ तो, भला चले जाओ तो। इस विदेश में यदि विपत्ति आ जाय तो देखभाल कौन करेगा? वे लोग या मैं।

इस बार उसे पहचान लिया। इसी जोर में ही उसका चिरदिन का सत्य परिचय है। जीवन में यह उससे फिर कभी न छूटा इससे किसी को भी कभी छुटकारा नहीं मिला।

रास्ते के एक छोर पर मरने को बैठा था, नींद टूटने पर आँखें खोल कर देखा कि वह सिरहाने बैठी है। तब सभी चिन्ताएँ उसे सौंपकर आँखें बन्दकर सो गया। वह भार उसका है, मेरा नहीं।

गाँव के मकान पर आकर ज्वर से पीडित हो गया। यहाँ वह नहीं आ सकती,

यहाँ वह मृत है, इससे बढ़कर लज्जा उसको नहीं है, फिर भी जिसको अपने पास पाया वह वही राजलक्ष्मी थी।

चिट्ठी में लिखा है, 'तब तुम्हारी देखभाल कौन करेगा ? पूंटू ? और मैं केवल नौकर के मुँह से खबर लेकर लौट आऊँगी ? इसके बाद भी जीवित रहने के लिए कहते हो क्या ?'

इस प्रश्न का जवाब नही दिया। इसलिए नही कि नहीं जानता, साहस नहीं हुआ इसलिए।

मन ही मन कहा, "क्या केवल रूप में ही ! शासन में, संयम में, सुकठोर आत्म नियन्त्रण में उस प्रखर बुद्धिमती के निकट यह स्निग्ध, सुकोमल आश्रम-वासिनी कमललता कितनी है। किन्तु उस इतनी-सी में ही इस बार मानो मैंने अपने स्वभाव की प्रतिमूर्ति देख ली है। ऐसा मालूम हुआ कि उसके निकट है मेरी मुक्ति, है मर्यादा, है निःश्वास छोड़ने का अवकाश। वह कभी मेरी सारी चिन्ताएँ, सारी भलाई बुराइयाँ अपने हाथों में लेकर राजलक्ष्मी की तरह मुझे आच्छन्न न कर डालेगी।

सोच रहा था कि विदेश में जाकर क्या करूँगा ? नौकरी से मेरा क्या होगा ? नई बात तो है नहीं, उस दिन भी क्या ऐसा पाया था, जिसको फिर से पाने के लिए आज लोभ करना होगा ? केवल कमललता ने ही तो नहीं कहा, द्वारिका गोसाईं ने भी तो एकान्त समादर के साथ आश्रम में रहने के लिए आह्वान किया था। यह क्या बिलकुल ही वंचना है मनुष्य को ठगने के सिवा क्या इस आमन्त्रण में कुछ भी सत्य नहीं है ? अबतक जीवन जिस तरह कटा है, क्या यही इसकी अन्तिम बात है। क्या कुछ भी जानने को बाकी नहीं है। सब जानना ही क्या अब मेरा समाप्त हो गया ? सदा से ही इसकी अश्रद्धा और उपेक्षा ही की है, कहता आया हूँ कि सब असार है, सब भूल है, किन्तु केवल अविश्वास और उपहास को ही मूलधन मान लेने से ही संसार में बड़ी वस्तु कब किसको मिली है ?

गाड़ी आकर हवड़ा स्टेशन पर रुक गई। निश्चय किया कि रातको घर रह कर, जो कुछ चीजें हैं जो कुछ लेनदेन है, सब चुका कर कल फिर आश्रम में लौट जाऊँगा। रही मेरी नौकरी, रह गया मेरा बर्मा जाना।

घर पर पहुँचा तो उस समय रात के दस बज चुके थे। भोजन करने की

जरूरत थी, किन्तु कोई उपाय नहीं था। हाथ मुँह धोकर और कपड़े बदल कर बिछौना झाड़ रहा था. पीछे से सुपरिचित कंठ की आवाज आई, "बाबूजी आ गये ?"

साश्चर्य घूमकर देखा,— 'रतन, कब आया रे ?"

"आया हूँ शाम को। बरामदे में बड़ी अच्छी हवा थी. आलस्य में जरा सो गया था।"

"बहुत अच्छा किया। भोजन तो नहीं किया है न ?"

"जी नहीं।"

"तब तो देख रहा हूँ। तुमने बड़ी मुश्किल में डाल दिया. रतन ?"

रतन ने पूछा, "आपका भोजन ?"

स्वीकार करना पड़ा कि मेरा भी भोजन नहीं हुआ है।

रतन ने खुश होकर कहा, "तब तो अच्छा ही हुआ। आपका प्रसाद पाकर रात बिता सकूँगा।"

मन ही मन कहा, यह नाई बेटा विनय का अवतार है। किसी तरह भी अप्रतिभ नहीं होता। मुँह से कहा, "तब तो आसपास की किसी दूकान पर खोजो, यदि कुछ प्रसाद जुटा कर ला सको। किन्तु शुभागमन किसलिए हुआ। क्या फिर भी कोई चिट्ठी है ?"

रतन ने कहा, "जी नहीं, चिट्ठी लिखने में बड़े झमेले हैं। जो कुछ कहना होगा, वे मुँह से ही कहेंगी।"

"इसका मतलब ? मुझे फिर जाना पड़ेगा क्या ?"

"जी नहीं, माँ स्वयं आई हैं।"

सुनकर बहुत ही घबड़ा गया। इस रात में कहाँ ठहराऊं, क्या बन्दोबस्त करूँ, इसका कुछ भी सोच कर निश्चय न कर सका। किन्तु कुछ तो करना ही चाहिए, पूछा, "जब से आई हैं, तब से क्या घोड़ागाड़ी में ही बैठी हैं ?"

"इतने में हँस कर कहा. "माँ ऐसी ही हैं। नहीं बाबू हम लोगों को आये चार दिन हो गये, इन चार दिनों से दिन रात आपके लिए पहरा दे रहा हूँ। चलिए ?"

"कहा, कितनी दूर ?"

"दूर तो कुछ जरुर है, किन्तु किराये की गाड़ी मैंने ठीक कर रखी है, कोई कष्ट न होगा।"

अतएव, फिर एक बार कपड़े पोशाक पहिनकर, दरवाजे में ताला बन्दकर यात्रा करनी पड़ी। श्याम बाजार की किसी एक गली में एक दोमंजिला मकान है, उसके सामने चहारदीवारी से घिरा एक फूल का बगीचा है, राजलक्ष्मी के बूढ़े दरवान ने दरवाजा खोलते ही मुझे देख लिया। उसके आनन्द की सीमा नहीं रही। गर्दन हिलाकर भारी नमस्कार करके पूछा, "अच्छे हैं बाबू जी ?"

मैंने कहा, "तुलसीदास अच्छा हूँ। तुम अच्छे हो ?"

प्रत्युत्तर में उसने फिर वैसा ही नमस्कार किया। तुलसी मुंगेर जिले का रहने वाला है। जात का कुर्मी है, ब्राह्मण होने के कारण वह बराबर बंगाली रीति से मेरे पैर छूकर प्रणाम करता है।"

हम लोगों की बातचीत की आवाज से शायद एक और हिन्दुस्तानी नौकर की नींद टूट गई। रतन की जबर्दस्त झिड़कियों से वह बेचारा घबड़ा उठा। अकारण ही दूसरों को धमकियाँ देकर रतन इस मकान में अपनी मर्यादा कायम रखता है। उसने कहा, "जब से आये हो, केवल सोते रहते हो और रोटी खाते रहते हो, तम्बाकू तक भी चिलम पर चढ़ा कर नहीं रख सकते ? जाओ जल्दी।"

यह आदमी नया है, डर कर दौड़धूप करने लगा।

ऊपर चढ़ने पर सामने वाला बरामदा पार करने पर एक बड़ा कमरा है, जो गैस के उज्वल प्रकाश से प्रकाशित है—आदि से अन्त तक उसमें कार्पेट बिछा हुआ है, उसके ऊपर फूलदार जाजिम और दो चार तकिये पड़े हैं। पास ही मेरी बहुत दिनों की व्यवहार की हुई अत्यन्त प्रिय गुड़गुड़ी और उससे थोड़ी ही दूर पर मेरे जरी के काम वाले मखमली स्लीपर सावधानी से रखे हुए हैं। ये राजलक्ष्मी के अपने ही हाथों के बुने थे, और मेरे एक जन्म दिन के अवसर पर परिहास में मुझे उपहार में उसी ने दिये थे। पास का कमरा भी खुला हुआ है किन्तु उसमें कोई नहीं है। खुले दरवाजे से एक बार झाँक कर देखा कि एक ओर नई खरीदी हुई खाट पर बिछौना बिछा हुआ है, और दूसरी तरफ वैसी ही नई खूँटी पर केवल मेरे कपड़े टंगे हैं। गंगा माटी जाने से पहले ये सब तैयार हुए थे। इनकी याद भी नहीं थी, और कभी काम में भी नहीं आये।

रतन ने पुकारा, 'माँ।'

'आती हूँ', कह कर राजलक्ष्मी सामने आकर खड़ी हो गई। पैरों की धूलि लेकर प्रणाम करके बोली, "रतन, तम्बाकू तो चढ़ा लाओ बेटा, तुझे भी ये कई दिन मैंने बहुत कष्ट दिया।' कष्ट कुछ भी नहीं हुआ माँ। स्वस्थ शरीर से इन्हें घर लौटा लाया, यही मेरे लिए बहुत है।" यह कहकर वह नीचे उतर गया।

राजलक्ष्मी को नई आँखों से देखा। शरीर में सौन्दर्य नहीं समाता। उस दिन की पियारी की बात याद पड़ गई। केवल कुछ ही वर्षों के दुःख शोक के आंधी-तूफान में नहाकर मानो उसने नया रूप धारण कर लिया है। इन चार दिनों के नये मकान की सुव्यवस्था से चकित नहीं हुआ, क्योंकि उसकी एक वक्त की सुव्यवस्था से पेड़ के नीचे का वासस्थान भी सुन्दर हो उठता है। किन्तु राजलक्ष्मी ने मानो इन कई दिनों में अपने आप को मिटाकर फिर से बना लिया है। पहले वह बहुत गहने पहिनती थी, बीच में सभी खोल दिये मानो संन्यासिनी हो। आज उन्हें पहिन लिये हैं, कुछ थोड़े से ही इने गिने हैं, किन्तु देखने से मालूम हुआ कि वे बहुत ही दामी हैं। फिर भी पहिनने की साड़ी दामी नहीं है, साधारण मिल की साड़ी है, जो आठों पहर घर में पहिनी जाती है। माथे के आँचल की किनारी के नीचे से छोटे छोटे बाल गालों के आसपास झूल रहे हैं, छोटे होने के कारण ही शायद वे उसका आदेश पालन नहीं करते। देख कर अवाक् रह गया।

राजलक्ष्मी ने कहा, "इतना क्या देख रहे हो?"

"तुमको देख रहा हूँ।"

"नई हूँ क्या?"

"ऐसा हो तो मालूम पड़ता है।"

"मुझे कैसा मालूम पड़ता है, क्या जानते हो?"

"नहीं।"

"इच्छा हो रही है कि तम्बाकू लेकर रतन के आने के पहले अपने दोनो हाथ तुम्हारे गले में डाल दूं। डाल दूंगी तो क्या करोगे बताओ तो?" यह कहकर वह हँस पड़ी। बोली, "उठाकर बाहर तो नहीं फेंक दोगे?"

मैं भी हँसी रोक न सका। बोला, "डालकर देख ही लो न। किन्तु इतनी हँसी, भाँग तो नहीं पी ली है?"

सीढ़ियों पर पैरों की आहट सुनाई पड़ी। बुद्धिमान रतन जरा जोर लगा कर ही कदम बढ़ाकर चढ़ रहा था। राजलक्ष्मी ने हँसी दबाकर धीरे धीरे कहा, "रतन को पहले चले जाने दो. इसके बाद तुम्हें बताऊँगी कि भाँग पी ली है या और कुछ पी ली है। किन्तु कहते कहते उसका गला अचानक भारी हो उठा, बोली, "इस अनजान जगह में चार पाँच दिन मुझे अकेली छोड़कर तुम पूँटू का विवाह कराने गये थे? जानते हो कि रातदिन मेरे किस तरह कटे हैं?"

"मैं यह कैसे जान लूँ कि तुम अचानक आ जाओगी?"

"हाँ जी हाँ, अचानक ही तो! तुम सब जानते थे। केवल मुझे परेशान करने के लिए ही चले गये थे।"

रतन ने आकर तम्बाकू दिया और बोला, "बात हो चुकी है मां, बाबू का प्रसाद पाऊँगा। महाराज को खाने लाने के लिए कह दूं? रात के बारह बज गये।"

बारह बजने का नाम सुनकर राजलक्ष्मी घबड़ा गईं,—"महाराज से नहीं होगा बेटा, मैं खुद जाती हूँ। तुम मेरे सोने के कमरे में थोड़ी सी जगह बना दो।"

खाने के लिए बैठने पर मुझे गंगा माटी के अन्तिम दिनों की बात याद आ गई। उस समय यही महाराज (रसोइया) और रतन मेरे खाने पीने की देखभाल करते थे। तब राजलक्ष्मी को मेरी खोज लेने का समय नहीं मिलता था। किन्तु आज इन लोगों से नहीं होगा, रसोई घर में उसे खुद जाना पड़ेगा! किन्तु यही उसका स्वभाव है, वह थी विकृति। समझ गया कि कारण कुछ भी हो, उसने फिर अपने को पा लिया है।

खाना खतम होने पर राजलक्ष्मी ने पूछा "पूँटू का विवाह कैसे हुआ?

मैंने कहा, आँखों से नहीं देखा। कानों ने सुना है कि अच्छी तरह हुआ है।

'आँखों से नहीं देखा? तो इतने इतने दिनों तक कहाँ थे?'

विवाह की सारी घटना खोलकर बता दी। सुनकर उसने क्षण भर के लिए गालों पर हाथ रख कर कहा, "अवाक् बना दिया! आने के पहले पूँटू को कुछ दहेज में देकर नहीं आये?"

'तुम मेरी तरफ से कुछ दे देना।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुम्हारी तरफ से क्यों? अपनी ही तरफ से लड़की को कुछ भेज दूंगी। किन्तु तुम थे कहाँ, यह तो बताया नहीं?"

मैंने कहा "मुरारीपुर के बाबा जी लोगों के अखाड़े की बात याद है ?'

राजलक्ष्मी ने कहा, "है क्यों नहीं। वैष्णावियाँ वहीं से तो मुहल्ले-मुहल्ले में भीख माँगने के लिए आती थीं। बचपन की बातें मुझे खूब याद हैं।"

"वहीं था।"

सुनकर मानो राजलक्ष्मी के शरीर में काँटे चुभ गये,—"उन्हीं वैष्णावियों के अखाड़े में ? अरे मेरी माँ! यह क्या कहते हो जी ? उनके बारे में तो भयंकर गन्दे काण्डों की बातें सुनती हूं। किन्तु यह कहकर ही वह एकाएक उच्च कंठ से हँस पड़ी। अन्त में आंचल से मुँह ढाँक कर बोली, 'तब तो तुम्हारे लिए असाध्य काम कुछ भी नहीं है। आरा में जो मूर्ति देखी है, माथे में जटा, समूचे शरीर में रुद्राक्ष की माला, हाथों में पीतल के कड़े—वह अद्भुत।"

वह बात खतम न कर सकी, हँसते हँसते लोटपोट हो गई। रंज होकर उसे उठाकर बैठा दिया। अन्त में हिचकी लेकर, मुँह में कपड़ा ठूँसने पर जब बड़ी कठिनाई से हँसी रुकी तो बोली, "वैष्णावियों ने तुमसे क्या कहा ? चपटी नाक वाली और टिकुरी पहिनने वाली वहाँ बहुत सी रहतीं हैं, न जी।"

उसी तरह एक और प्रबल हँसी का झोंक आ रहा था, किन्तु उसे सतर्क करके मैंने कहा, "इस बार हँसने पर कड़ा दण्ड दूंगा। कल नौकरों के सामने मुँह न दिखा सकोगी।"

राजलक्ष्मी डरकर हट गई, मुँह से बोली "यह तुम्हारी तरह वीर पुरुषों का काम नहीं है। खुद ही लज्जा से बाहर न निकल सकोगे। संसार में तुमसे बढ़कर भीरु पुरुष कोई है क्या ?"

मैंने कहा, "तुम कुछ भी नहीं जानती लक्ष्मी, तुमने भीरु कहकर अवज्ञा की, किन्तु वहाँ एक वैष्णावी मुझे कहा करती थी अहंकारी—दम्भी!"

"क्यों, उसका क्या किया था ?"

"कुछ भी नहीं। उसने मेरा नाम रखा था 'नये गोसाईं।' वह कहती थी, गोसाईं, तुम्हारे उदासीन वैरागी मन की अपेक्षा दाम्भिक मन पृथ्वी में और दूसरा नहीं है।"

राजलक्ष्मी की हँसी रुक गई, बोली, "क्या कहा उसने ?"

"कहा कि इस तरह के उदासीन वैरागी मन की अपेक्षा अधिक दम्भी व्यक्ति

दुनिया में खोजने पर नहीं मिलेगा। अर्थात् मैं दुर्घर्ष वीर हूं, भीरु बिलकुल ही नहीं हूं।"

राजलक्ष्मी का मुँह गम्भीर हो गया। परिहास की ओर उसने ध्यान ही नहीं दिया। बोली "तुम्हारे उदासीन मन की खबर उस औरत को कैसे मिली?"

मैंने कहा, "वैष्णवियों के प्रति इस तरह की अशिष्ट भाषा अत्यन्त आपत्तिजनक है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह जानती हूं। किन्तु उन्होंने तुम्हारा नाम तो रखा 'नये गोसाईं' और उनका नाम क्या है?"

"कमललता। कोई कोई रंज होकर उसे कमलीलता भी कहते हैं। वे कहते हैं वह जादू जानती है। कहते हैं कि उसका कीर्तन सुनकर मनुष्य पागल हो जाते हैं। वह जो चाहती है वही दे देते हैं।"

"तुमने सुना है?"

"सुना है। बहुत ही अच्छा!"

"उसकी उम्र क्या है?"

"शायद, तुम्हारी ही बराबरी की होगी। कुछ अधिक भी हो सकती है।"

"देखने में कैसी है?"

"अच्छी है। कम से कम खराब तो नहीं कह सकते। चिपटी नाक वाली टिकली पहिने जिन लोगों को तुमने देखा है, उनके दल की नहीं है। भले घर की लड़की है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह तो मैं उसकी बात सुनकर ही समझ गयी। तुम जो कई दिन वहाँ रहे, तुम्हारा आदर यत्न करती थी तो?"

मैंने कहा, "हाँ, मेरी कोई शिकायत नहीं है।"

एकाएक एक साँस खींचकर राजलक्ष्मी बोल उठी, "किया तो करे। जिस साधना से तुमको कोई पा सकता है, उससे तो भगवान भी मिल सकते हैं। वैष्णव वैरागियों का वह काम नहीं है। मैं कहाँ का एक कमललता से क्यों डरने लग? यह कह वह उठकर बाहर चली गई।

मेरे मुँह से भी एक लम्बी सांस निकल पड़ी। शायद मैं कुछ अनमना हो गया था, इस शब्द से होश हो गया। मोटे तकिए को खींचकर चित पड़कर तम्बाकू

पीने लगा। ऊपर कहीं एक छोटी मकड़ी घूम घूम कर जाल बुन रही थी, उज्वल गैस के प्रकाश में उसकी परछाहीं बहुत बड़े जानवर की भाँति धरनों पर दिखाई पड़ रही थी। प्रकाश के व्यवधान में परछाही भी कई गुने परिमाण में शरीर को पार कर जाती है।

राजलक्ष्मी लौट आकर मेरे ही तकिये के एक कोने में केहुनी पर टेक कर झुक कर बैठ गई। मैंने देखा कि उस सिर के बाल भीगे हैं। शायद अभी तुरत आँख मुँह धोकर आई हो।

मैंने पूछा, "लक्ष्मी, हठात् इस तरह कलकत्ता क्यों आई?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "हठात् तो बिलकुल ही नहीं। उस दिन से दिन रात चौबीस घण्टे ही मेरा मन ऐसा होने लगा कि किसी तरह भी टिक न सकी, ऐसी शंका हुई कि कहीं हार्ट फेल न हो जाय, इस जन्म में फिर आँखों सेन देख सकूंगी।' यह कहकर उसने गुड़गुड़ी की नली मेरे मुँह से हटाकर दूर फेंक दी। बोली, 'जरा रुको। धुएँ के जाल से मुँह तक भी नहीं देख पाती, इतना अधिक अनाचार फैला रखा है।

गुड़गुड़ी की नली तो चली गई किन्तु बदले में उसका हाथ मेरी मुट्ठी में रह गया।

मैंने पूछा "आज कल बंकू क्या कहता है?"

राजलक्ष्मी ने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा, 'बहुओं के घर आने पर सभी लड़के जैसा कहते हैं वही।"

'इससे अधिक कुछ भी नहीं?"

"कुछ भी नहीं, यह तो नहीं कहती, किन्तु वह मुझे क्या तकलीफ देगा। दु:ख तो केवल तुम ही दे सकते हो। तुम लोगों के सिवा सच्चा दु:ख औरतों को और कोई नहीं दे सकता।"

'किन्तु मैंने क्या कभी तुमको दु:ख दिया है, लक्ष्मी। राजलक्ष्मी ने बिना जरूरत के ही मेरे कपाल पर हाथ रख कर एक बार पोंछकर कहा, 'कभी नहीं।' वरन् मैंने ही आज तक तुमको दु:ख दिया। अपने सुख के लिए तुमको लोगों की नजरों में गिरा दिया, खिलवाड़ में ही तुम्हारी बेइज्जती होने दी—इसी कारण, उसी की सजा दोनों किनारों से अब उभड़कर उतरा रही है? देख रहे हो तो?

हँसकर कहा, "कहाँ नहीं तो।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तब तो मंत्र पढ़कर किसी ने तुम्हारी दोनों आँखों में परदा डाल दिया है।' थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोली, "इतना पाप करने पर भी संसार में मेरे समान सौभाग्य क्या कभी तुमने देखा है? किन्तु इससे भी तो मेरी आशा नहीं मिटी, कहाँ से आकर जुट गई धर्म की धुन, अपने हाथ की लक्ष्मी को मैंने पैरों से ठुकरा दिया? गंगामाटा से आने पर भी होश नहीं हुआ, काशी से तुमको बिना आदर के बिदा कर दिया।

उसकी दोनों आँखों में आँसू छलछला उठे, मैंने हाथ से पोंछ दिया तो वह बोली, "अपने ही हाथों से विष का वृक्ष रोप रखा, जिसमें फल लग रहा है। खाना नहीं खा सकती सो नहीं सकती। आँखों की नींद सूख गई, आसम्बद्ध न मालूम कितने भय लगते रहते हैं इसका कुछ भी ठिकाना नहीं है, गुरुदेव उस समय भी घर पर ही थे, उन्होंने कोई एक ताबीज हाथ में बाँध दी और बोले, बेटी सबेरे से एक आसन पर बैठ कर तुमको १० हजार इष्ट नाम जपना पड़ेगा। किन्तु कहाँ कर सकी? मन में हू हू जल कर रहा है, पूजा करने के लिए बैठने के साथ आँखों से आँसू लुढ़कने लगता है—ऐसे ही समय में तुम्हारी चिट्ठी आ गई। इतने दिनों में बीमारी पकड़ी गई।

"किसने पकड़ा—गुरुदेव ने? इस बार उन्होंने शायद फिर एक कवच लिख दिया?"

"हाँजी लिख दो दिया। तुम्हारे गले में बाँध देने के लिए कहते गये।"

"एसा ही करो, इससे भी यदि तुम्हारा रोग अच्छा हो जाय तो ठीक है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "उस चिट्ठी को लेकर मेरी दो दिन का समय बीत गया। कैसे से जो बीत गया, यह नहीं जानती। रतन को बुलाकर उसके हाथ चिट्ठी का जवाब भेज दिया। गंगाजी में नहाकर अन्नपूर्णाजी के मन्दिर में खड़ी होकर कहा, माँ, ऐसा करो। जिससे समय रहते चिट्ठी उनके हाथ में पहुँच जाय। मुझे आत्म-हत्या न करनी पड़े।" मेरे मुँह की तरफ देखकर बोली, "मुझे इस तरह क्यों बाँध रखा था बताओ तो?"

एकाएक इस प्रश्न का उत्तर न दे सका। इसके बाद मैंने कहा, "यह तो तुम

महिलाओं के ही लिए सम्भव है। हम तो यह सोच भी नहीं सकते, समझ भी नहीं सकते।

"स्वीकार करते हो?"

"करता हूँ।"

राजलक्ष्मी ने पुनः मुहूर्त भर के लिए मेरी तरफ देखती हुई कहा, "सचमुच विश्वास करते हो? यह हम लोगों के ही लिए सम्भव है। पुरुष सचमुच ही यह नहीं कर सकते।"

कुछ काल तक हम दोनों ही स्तब्ध हो रहे। राजलक्ष्मी ने कहा, "मन्दिर से बाहर आने पर देखा कि हम लोगों के पहले के लछमन साहु खड़ा है। वह मेरे हाथ बनारसी साडी बेचता था। बूढ़ा मुझे बहुत ही प्यार करता था, मुझे बेटी कहकर पुकारता था। आश्चर्य में पड़कर उसने कहा, "बेटी, आप यहाँ?" मैं जानती थी कि कलकत्ते में उसकी दूकान है। मैंने कहा, "साहुजी, मैं कलकत्ता जाऊँगी। मेरे लिए किराये का एक मकान ठीक कर सकते हो!

उसने कहा, "सकता हूं। बंगाली मुहल्लों में अपना ही एक मकान है, सस्ते दाम में खरीदा था। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो वह मकान उसी दाम में तुम्हें दे सकता हूँ।" साहुजी धर्म भीरु मनुष्य था, उस पर मेरा विश्वास था राजी होकर उसे घर पर बुलाकर रुपये दे दिये, उसने रसीद दे दी। छः सात दिनों के बाद ही रतन को साथ लेकर यहाँ चली आई। मन ही मन कहा, माँ अन्नपूर्णा तुमने मुझपर दया की है, नहीं तो ऐसा मौका कभी नहीं मिलता। मैं उनके दर्शन पाऊँगी ही। यहां तो दर्शन पा ही गई।"

मैंने कहा, "किन्तु मुझे शीघ्र ही बर्मा जाना पड़ेगा, लक्ष्मी।"

राजलक्ष्मी ने कहा. "अच्छी बात है, चलो न। वहाँ अभया है, समूचे देश में बुद्धदेव के बड़े बड़े मन्दिर हैं, ये सब देख सकूँगी।"

मैंने कहा. "किन्तु वह तो बहुत ही भ्रष्ट देश है लक्ष्मी, सदाचारी व्यक्तियों का आचार-विचार नहीं रहता। उस देश में तुम जाओगी किस तरह?"

राजलक्ष्मी ने मेरे कानों के ऊपर मुँह रख कर चुपचाप न मालूम क्या बात कह दी जिसे मैं अच्छी तरह समझ न सका। बोला, "जरा और चिल्लाकर कहो तो सुनूँगा।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नहीं।'

इसके बाद निर्जीव की भाँति उसी तरह पड़ी रही। केवल उसका गर्म घनी नि:श्वास, मेरे गले के ऊपर, मेरे गालों पर आकर पड़ने लगा।

१०

"अजी, उठो? कपड़े बदलकर हाथ मुँह धो डालो, रतन चाय लेकर खड़ा है।"

मेरी आहट न पाकर राजलक्ष्मी ने फिर पुकारा, "दिन चढ़ आया, कितना सोते रहोगे।"

करवट बदल कर मैंने भर्राई हुई आवाज में कहा, "सोने कहाँ दिया? अभी तो सोया?'

कान में सुनाई पड़ी आवाज मेज पर चाय की कटोरी एक करके रखता हुआ शायद लज्जा से रतन भाग गया।

राजलक्ष्मी ने कहा, "छि: छि: बेहया हो तुम! लोगों को व्यर्थ ही घबड़ाहट में डाल सकते हो। खुद सारी रात कुम्भकर्ण की भाँति सोते रहे, वरन् मैं ही जगी रह कर बैठी हुई पंखों से हवा झेलती रही कि कहीं गरम से तुम्हारी नींद भी न टूट जाय। फिर मुझसे यही बात? कहती हूँ, उठो, नहीं तो शरीर पर पानी डाल दूंगी।"

उठ कर बैठ गया। दिन न चढ़ने पर भी उस समय सबेरा हो चला था, खिडकियाँ खुली थीं. प्रात:काल उस स्निग्ध प्रकाश में राजलक्ष्मी की क्या ही अपूर्व मूर्ति नजर में पड़ी। उसका स्नान, पूजा आह्निक आदि समाप्त हो गये हैं, गंगाजी के घाट के उड़िया पण्डे का लगाया हुआ श्वेत और लाल चन्दन का तिलक उसके ललाट पर दिखाई पड़ता है। नई रंगीन बनारसी साडी पहिने है, पूरब वाली खिड़की से सुनहली धूप आकर टेढ़ी होकर उसके मुँह के एक बगल पर पड़ गई है,

सलज्ज कौतुक की दबी हुई हँसी उसके ओठों के कोने में है। तो भी बनावटी क्रोध से तनी हुई भौहों के नीके चंचल आँखों की दृष्टि मानो. आवेग से झिलमिला रही है. देखकर आज भी विस्मय की सीमा नहीं रही। एकाएक जरा हँसकर वह बोली, "कलसे इतना क्या देखते रहते हो बताओ तो ?

मैंने कहा. 'तुम्हीं बताओ तो इतना क्या देख रहा हूँ ?'

राजलक्ष्मी ने फिर जरा हंसकर कहा, "शायद देख रहे हो कि इससे पूंटू देखने में अच्छी है या नहीं। कमललता देखने में अच्छी है या नहीं —नहीं ?"

मैंने कहा, 'नहीं। जहाँ तक रूप का सम्बन्ध है उनमें से कोई तुम्हारे पास तक नहीं आ सकतीं, यह बात तो योंही कही जा सकती है। इतना देखने क जरूरत नहीं।"

राजलक्ष्मी ने कहा 'उसे छोड़ो। किन्तु गुणों में ?"

"गुणों में ? इस विषय में अवश्य ही मतभेद की सम्भावना है, यह तो मान ही लेना पड़ेगा।"

"गुणों के बारे में तो सुना है कि कीर्तन कर सकती है।"

"हाँ, बहुत ही अच्छा, चमत्कार।"

"चमत्कार, यह तुमने कैसे समझा ?"

'वाह! क्या यह भी नहीं समझता ? विशुद्ध ताल लय, सुर।"

राजलक्ष्मी ने बाधा देकर पूछा, "हाँ जी ताल किसको कहते हैं ?"

मैंने कहा, "ताल उसे ही कहते हैं, जो बचपन में तुम्हारी पीठ पर पड़ते थे। क्या याद नहीं है ?"

राजलक्ष्मी ने कहा. "नहीं है कैसे! वह तो मुझे खूब याद है। कल झूठ-मूठ ही तुमको भीरु कहकर तुम्हारा असम्मान मात्र ही तो किया है। किन्तु कमललता को केवल तुम्हारे उदासीन मन की ही खबर मिली, तुम्हारे वीरत्व की कहानी शायद उसने नहीं सुनी ?"

"नहीं, आत्मप्रशंसा स्वयं नहीं की जाती। वह तुम ही सुना देना। किन्तु उसका गला सुन्दर है, गान सुन्दर है। इसमें सन्देह नहीं।"

"मुझे भी नहीं है। "यह कहते ही अचानक उसकी दोनों आखें प्रच्छन्न कौतुक से चमक उठीं बोली,—"हाँ जी, तुमको अपना वह गान याद है ? वही जो

पाठशाला की छुट्टी होने पर तुम गाते थे। हम लोग मुग्ध होकर सुनती थीं—वही—'कहाँ गये प्राणाधार बाप दुर्योधन रे ए—ए—"

हंसी दबाने की चेष्टा में उसने मुंह आँचल से दबा लिया, मैं भी हंस पड़ा। राजलक्ष्मी ने कहा, "किन्तु बहुत ही भावुकता का गान है। तुम्हारे मुँह से सुनने पर गाय बछड़ों तक की भी आखों में आँसू भर आता था—मनुष्य तो क्या राख है।

रतन के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। तुरत ही दरवाजा के पास खड़ा होकर वह बोला, "फिर चाय का पानी चढ़ा दिया है मां, तैयार होने में देर न लगेगी।" यह कहकर कमरे में ढुक कर उसने चाय की कटोरी हाथ में उठा ली।

राजलक्ष्मी ने मुझसे कहा, "अब और देर मत करो, उठो। इस बार चाय फेंकी जायगी तो रतन बिगड़ जायगा। वह फजूलखर्ची सह नहीं सकता। क्या कहते हो रतन ?"

रतन जवाब देना जानता है। बोला, "आपको सहन नहीं हो सकता माँ, किन्तु मैं तो बाबू के लिए सब सहता हूँ।" यह कहकर वह कटोरी लेकर चला गया। जब उसे क्रोध आता था तो वह राजलक्ष्मी को आप कहता था, नहीं तो तुम कहकर पुकारता था।

राजलक्ष्मी ने कहा, "रतन सचमुच ही तुमको बहुत प्यार करता है!"

मैंने कहा, "मेरा भी ऐसा ही खयाल है।"

"हाँ। तुम जब काशी से चले आये तो उसने झगड़ा करके मेरा काम छोड़ दिया। मैंने नाराज होकर कहा, 'मैंने जो तेरा इतना काम संभाल दिया रतन, उसका क्या यही प्रतिफल है?' उसने कहा, 'माँ, रतन नमकहराम नहीं है। मैं भी बर्मा जा रहा हूँ। बाबू की सेवा करके तुम्हारा ऋण चुका दूँगा।' तब हाथ पकड़ लिया और अपना अपराध स्वीकार कर उसे शान्त किया।"

थोड़ी देर तक रुक कर कहा, "इसके बाद तुम्हारे विवाह का निमंत्रण पत्र आया।"

बाधा देकर मैंने कहा, "झूठी बात मत बोलो। तुम्हारा मतामत जानने के लिए—"

इस बार उसने भी मुझे बाधा देकर कहा, "हाँ जी हाँ, मालूम है। यदि नाराज होकर लिख देती कि विवाह करलो, तो कर लेते न ?"

"नहीं।"

"नहीं क्या। तुम लोग सब कर सकते हो।"

"नहीं, सभी सब काम नहीं कर सकते।"

"राजलक्ष्मी कहने लगी, "नहीं मालूम रतन ने मनही मन क्या समझा, केवल मैंने देखा कि मेरे मुँह की तरफ देखकर उसकी दोनों आंखें छलछला आई हैं। इसके बाद जब उसे चिट्ठी का जवाब डाक में छोड़ने के लिए दिया तो उसने कहा, 'माँ, इस चिट्ठी को डाक में न छोड़ सकूँगा, मैं खुद अपने ही हाथ लेकर जाऊँगा।' मैंने कहा 'झूठ मूठ कुछ रुपये खर्च कर देने से क्या होगा बेटा ?' रतन ने हठात् आंखे पोंछकर कहा, 'माँ, मैं नहीं जानता कि मुझे क्या हो गया है, किन्तु तुमको देखकर ऐसा मालूम होता है कि मानो पद्मा के तट की जमीन क्षीण हो गई है,—इसका कोई ठिकाना नहीं कि पेड़पत्तों और मकान दरवाजे लेकर वह कब ढाह पड़ेगी। तुम्हारी दया से मुझे भी अब कोई कमी नहीं है मां,—ये रुपये तुम दोगी तो भी मैं न ले सकूँगा, किन्तु यदि विश्वनाथ जी ने मुंह उठाकर देख लिया, तो मेरे गांव की झोंपड़ी में अपनी दासी को थोड़ा सा प्रसाद भेज देना, वह खा जायगी।"

मैंने कहा, "नाई बेटा कितना सयाना है !"

सुनकर राजलक्ष्मी मुँह दबाकर जरा हंस पड़ी। बोली, "किन्तु अब देर मत करो, जाओ।"

दोपहर को जब वह भोजन कराने बैठी तो मैंने कहा "कल तो साधारण साड़ी पहिने हुए थीं, आज सबेरे से बनारसी साड़ी का समारोह क्यों बढ़ाया है बताओ तो ?"

"तुम्हीं बताओ तो क्यों ?"

"मैं नहीं जानता"

"अवश्य जानते हो। इस कपड़े को पहचान सकते हो।"

"पहचान तो सकता हूं। बर्मा से खरीद कर भेज दिया था।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "उसी दिन मैंने सोच लिया था कि अपने जीवन के सबसे महान दिन को इसे पहनूँगी, इसके अलावा और कभी नहीं।"

"इसीलिए आज इसे पहिन लिया है ?"

"हाँ, इसीलिए आज पहिन लिया है।"

हँसकर कहा, "किन्तु वह तो हो गया, अब उतार दो ?"

वह चुप हो रही। मैंने कहा, "खबर मिली है कि तुम अभी तुरत काली-घाट जाओगी।"

राजलक्ष्मी ने आश्चर्य में पड़कर कहा, "अभी ! यह कैसे हो सकता है। तुम्हें खिला पिलाकर सुला चुकने पर ही तो छुट्टी पाऊँगी।"

मैंने कहा, "नहीं, तब भी नहीं मिलेगी। रतन कह रहा था कि तुम्हारा खाना पीना प्राय: बन्द हो गया है, केवल कल थोड़ा सा खाया था, और आज से फिर उपवास आरम्भ हो गया है। क्या जानती हो कि मैंने क्या निश्चय किया है। अब से तुमको कड़े शासन में रखूँगा, अब जो ही खुशी होगी वही तुम न कर सकोगी।"

राजलक्ष्मी ने हँसते हुए मुँह से कहा, "ऐसा हो तो मैं जी जाऊँ महाशय जी, खाऊँगी, पीऊँगी, रहूंगी, किसी झमेले में न पड़ना होगा।"

मैंने कहा, "इसीलिए आज तुम कालीघाट न जा सकोगी।"

राजलक्ष्मी ने हाथ जोड़कर कहा, "तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, केवल आज भर के लिए मुझे छोड़ दो, फिर बाद को पुराने जमाने के नवाब बादशाहों के यहाँ जिस तरह खरीदी हुई लौंडिया रहती थीं, उसी तरह रहूँगी, इससे अधिक तुमसे और कुछ भी न चाहूँगी।"

"बताओ तो इतना विनय क्यों ?"

"विनय तो नहीं है, सत्य है। अपना वजन समझ कर नहीं चली, तुमको मानकर नहीं चली। इसीलिए अपराध के बाद अपराध करते करते साहस बढ़ गया है। अब तुम्हारे ऊपर उस लक्ष्मी का अधिकार नहीं रहा, अपने ही दोष से मैं उसे खो बैठी हूँ।"

मैंने देखा कि उसकी आँखों में आँसू भर आया है। बोली, "केवल आज के दिन के लिए हुक्म दे दो, मैं माँ की आरती देख आऊँ।"

मैंने कहा, "नहीं तो, कल जाना। तुमने तो खुद ही कहा था कि सारी रात जागकर मेरी सेवा करती रही, आज तुम बहुत थक गई हो।"

"नहीं, मुझे कुछ भी थकावट नहीं है। केवल आज ही की बात नहीं है. कितनी ही बीमारियों में मैंने देखा है कि लगातार रातों के बाद रात जागते रहने पर भी, तुम्हारी सेवा में मुझे कोई कष्ट नहीं होता। न मालूम मेरी सभी थकावट को कौन मिटा जाता है। कितने दिनों से देवी देवताओं को भूल गई थी, किसी में भी मन न लगा सकी, मेरे देव, आज मुझे मना मत करो, जाने का हुक्म दे दो।"

"तो चलो, दोनों एक साथ चलें।"

राजलक्ष्मी की दोनों आँखें उल्लास से चमक उठीं। बोली, "अच्छा चलो, किन्तु मन ही मन देवी देवताओं को तुच्छ भाव से नहीं देखोगे न ?"

मैंने कहा, 'शपथ तो नहीं ले सकता, वरन् तुम्हारा रास्ता देखते हुए मैं मन्दिर के दरवाजे पर खड़ा रहूँगा। मेरी तरफ से तुम देवता से वर माँग लेना।"

"बताओ, क्या वर माँगू ?"

अन्न का ग्रास मुँह में डालकर सोचने लगा, पर कोई भी कामना नहीं सूझी। उस बात को स्वीकार करके मैंने पूछा, "तुम्हीं बताओ न लक्ष्मी, मेरे लिए तुम क्या माँगोगी ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "माँगूंगी आयु, माँगूंगी स्वास्थ्य और यह भी माँगूगी कि तुम मेरे प्रति कठोर हो सको, जिससे मुझे अधिक प्रश्रय देकर मेरा फिर सर्वनाश न कर सको। करने को ही तो बैठे थे।

"लक्ष्मी, यह तो हुई तुम्हारे रूठने की बात।'

"रूठने की तो बात ही है। तुम्हारी वह चिट्ठी क्या कभी भूल सकूँगी !"

"मुँह नीचे झुकाये मैं चुप हो रहा।"

उसने अपने हाथ से मेरा मुँह ऊपर उठा कर कहा, "तो इसलिए यह भी मैं सह नहीं सकती। किन्तु तुम कठोर तो हो नहीं सकोगे ! तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा नहीं है. किन्तु यह काम अब से मुझे खुद ही करना पड़ेगा, अवहेला करने से काम नहीं चलेगा।"

मैंने पूछा, "काम क्या है ? और भी निर्जल उपवास ?"

राजलक्ष्मी ने हँसकर कहा, "उपवास से मुझे सजा नहीं मिलती वरन् अहंकार बढ़ जाता है। वह मेरा रास्ता नहीं है।"

"तब तुमने कौन सा रास्ता ठीक किया है ?"

"ठीक नहीं कर सकी हूं, खोज में घूम रही हूँ।"

"अच्छा, तुम्हें क्या यह विश्वास होता है कि मैं सचमुच कभी कठोर हो सकता हूँ।"

"होता है जी, खूब होता है।"

"नहीं, कभी नहीं होता, यह तो तुम झूठ कहती हो।"

राजलक्ष्मी ने हँसकर सिर हिलाकर कहा, "झूठी बात ही सही। किन्तु गोसाईं जी, यही तो मेरे लिए विपत्ति है। किन्तु कमललता ने भी क्या खूब नाम निकाला है! केवल हाँ जी, ओ जी कहते कहते जान जाती थी, अब से मैं भी नये गोसाईं जी कह कर पुकारूँगी।"

"स्वच्छन्दता से।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तब तो किसी समय शायद मुझे कमललता ही गलती से समझ लोगे—इससे भी शान्ति ही पाऊँगी। बताओ ठीक है न ?"

हँसकर कहा, "लक्ष्मी, मरने पर भी स्वभाव कभी नहीं बदलता। बादशाही जमाने की खरीदी हुई लौंडियों की सी बातें हैं? अब तक तो वे तुमको जल्लाद के हाथ सौंप देते!"

सुनकर राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी, बोली, "जल्लाद के हाथ तो मैंने स्वयं ही अपने आपको सौंप दिया है।"

मैंने कहा, "सदा से तुम इतनी दुष्ट रही हो कि तुम्हारे ऊपर शासन करने की शक्ति किसी भी जल्लाद में नहीं है।"

राजलक्ष्मी प्रत्युत्तर में कुछ कहने ही जा रही थी कि एकाएक विद्युत्वेग से उठ खड़ी हुई। 'यह क्या, खाना खा चुके क्या! दूध कहाँ है? मेरे सिर की कसम, देखो, उठ मत जाना।' यह कहते कहते तेजी से कदम बढ़ाये वह बाहर चली गई।

निःश्वास छोड़कर कहा, "कहाँ यह और कहाँ वह कमललता!"

दो मिनट बाद ही वह लौट आई और पत्तल के पास दूध की कटोरी रखकर हाथ में पंखा लिये हवा करने लगी। कहने लगी, अब तक मालूम होता था

कि यह नहीं, शायद मेरे मन में कहीं पाप है। इसीलिए गंगामाटी में मन नहीं लगा, मैं काशी धाम लौट आई। गुरुदेव को बुलाकर, बाल कटवा कर गहने खोल दिये और एकदम तपस्या में जुट गई। सोचा, अब कोई चिन्ता नहीं। स्वर्ग की सोने की सीढ़ी तैयार हो रही है। एक आफत तुम रहे, सो भी बिदा हो चले। किन्तु उस दिन से आँखों का जल तो किसी तरह भी नहीं रुकता। इष्ट मन्त्र सब भूल गई, देवता अन्तर्धान हो गये, हृदय सूख उठा। भय हुआ कि यदि यही धर्म की साधना है तो फिर यह सब क्या हो रहा है। अन्त में क्या पागल हो जाऊँगी ?"

मैंने मुँह उठाकर उसके मुँह की तरफ देखा, कहा, "तपस्या के आरम्भ में देवता लोग भय दिखाया करते हैं। सामने टिके रहने पर सिद्धि प्राप्त होती है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "सिद्धि की मुझे आवश्यकता नहीं है। वह मैं पा चुकी हूं ?"

"कहाँ पा गई ?"

"यहीं। इसी मकान में।"

"विश्वास नहीं होता। प्रमाण दो।"

"तुमको प्रमाण देने जाऊँगी ? मुझे क्या गरज है ?"

"किन्तु क्रीत दासियाँ ऐसी उक्ति नहीं किया करतीं।"

"देखो, रंज मत करो कहती हूँ। इस तरह सौ बार क्रीतदासी-क्रीतदासी कहकर पुकारेगो तो अच्छा न होगा।"

"अच्छा, तुम्हें छोड़ दिया। अब से तुम स्वतंत्र हो गई।"

राजलक्ष्मी पुनः हंसकर बोली, "कितनी स्वतंत्र हूं, इसका अनुभव तो मैं अपनी नस नस में कर रही हूं। कल बातचीत करते करते तुम सो गये तो मैं अपने गले पर से तुम्हारा हाथ हटाकर उठ बैठी। हाथ लगाकर देखा, तुम्हारा माथा भींगा हुआ है। आंचल से पोंछ कर मैं पंखा लेकर बैठ गई। बत्ती के धुँधले प्रकाश को तेज कर दिया, तुम्हारे निद्राभिभूत चेहरे की तरफ देखकर आँखें हटा ही न सकी। इसके पहले यह क्यों नहीं दिखाई पड़ा कि यह इतना सुन्दर है। अब तक क्या अन्धी हो गई थी ? सोचा कि यदि यही पाप है तो पुण्य की मुझे आवश्यकता नहीं है, यदि यह अधर्म है तो यों पड़ी रहे मेरी धर्मचर्चा,—जीवन में यदि यही

मिथ्या है तो ज्ञान न होते ही मैंने किसकी बातों में पड़कर इन्हें वरण किया था ? यह क्या ? पीते क्यों नहीं ? सारा दूध पड़ा रह गया !"

"अब नहीं पी सकता ?"

"तो कुछ फल ले आऊँ ?"

"नहीं, वह भी नहीं ?"

"किन्तु बहुत ही दुबले हो गये हो !"

"यदि हो भी गया हूँ तो वह अनेक दिनों की अवहेलना से। एक दिन में ही संशोधन करना चाहोगी तो मर जाऊँगा।"

वेदना से उसका मुँह पीला पड़ गया, बोली, "अब नहीं होगा। जो सजा मिली है। उसे अब न भूलूँगी। यही मेरा बहुत बड़ा लाभ है।" क्षण भर मौन रहकर धीरे-धीरे कहने लगी, "सबेरा होने पर उठकर चली आई, भाग्य से कुम्भकर्ण की नींद शीघ्र नहीं टूटती, नहीं तो लोभ के वश में पड़कर तुमको जगा ही तो डाला था। इसके बाद दरवान को साथ लेकर गंगाजी में नहाने चली गई—मालूम हुआ मानो माता ने सब ताप धो डाला। घर आकर जब पूजा करने बैठी तब देखा कि केवल अकेले ही नहीं लौट आये हो। साथ ही लौट आया है मेरी पूजा का मंत्र। आ गये हैं मेरे इष्ट देव, गुरु देव—आ गया है। मेरा सावन का मेघ। आज भी मेरी आँखों से जल झरने लगा, किन्तु वह आँसू हृदय को मसोस कर निचोड़ा हुआ आँसू नहीं है, वह तो आनन्द से उमड़े हुए झरना की धारा थी, सब तरफ से भिगोकर विभोर करती हुई चली गई। दो चार फल ले आऊँ ? चाकू लेकर पास बैठकर अपने हाथ से तैयार करके तुम्हें फल खिलाये बहुत दिन हो गये। जाऊँ ? क्या कहते हो ?"

"जाओ।"

राजलक्ष्मी उसी तरह तेजी के साथ चली गई।

फिर एक बार सांस खींच कर मैंने कहा, "यह और वह कमललता !

न मालूम किसने उसके जन्म काल में हजारों नामों में चुनकर इसका राजलक्ष्मी नाम रखा था !

दोनों जिस समय कालीघाट से लौट आये, उस समय रात के नौ बज गये थे।

राजलक्ष्मी स्नान कर, कपड़े बदल कर सहज मनुष्योचित भाव से पास आ बैठी। मैंने कहा, "राक्षसी पोशाक गई, जान बच गई।"

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा, "वह मेरे लिए राज-पोशाक ही है, क्योंकि राजा की दी हुई है। जब मरूँगी, तब वही मुझे पहना देने के लिए कहना।"

"ऐसा ही होगा। किन्तु आज समूचा दिन क्या तुम सपना देखने में ही बिता दोगी? अब कुछ खा लो।"

"खाती हूँ।"

"मैं रतन से कह देता हूँ कि तुम्हारा खाना महाराज के हाथ यहीं भिजवा दे।"

"यहीं? बहुत अच्छा, जैसा हो। तुम्हारे सामने बैठकर मैं खाऊँगी क्यों? कभी खाते देखा है?

"देखा तो नहीं है, किन्तु देखने में क्या अपराध है?

"क्या ऐसा भी होता है? औरतों का राक्षसी खाना तुम लोगों को हम देखने ही क्यों देगी?"

"लक्ष्मी तुम्हारी यह चाल आज नहीं चलेगी। तुमको अकारण ही उपवास में नहीं करने दूँगा। न खाने से, मैं तुम्हारे साथ बातचीत न करूँगा।"

"मत बातचीत करना।"

"मैं भी नहीं खाऊँगा।"

राजलक्ष्मी ने हँसकर कहा, इस बार जीत गये। यह मैं न सह सकूँगी।"

महाराज भोजन दे गया—फल-मूल, मिष्टान्न। नाम मात्र भोजन करके वह बोली, "रतन ने तुमसे शिकायत की है कि मैं खाती नहीं हूं। किन्तु बताओ तो किस तरह खाऊँगी? कलकत्ते आई थी, हारे हुए मुकदमे की अपील करने के लिए। प्रतिदिन रतन तुम्हारे डेरे से लौट आता था। किन्तु भय से कुछ पूछ नहीं सकती थी कि कहीं वह यह न कह दे कि मुलाकात तो हुई थी किन्तु बाबू नहीं आये। जो दुर्व्यवहार किया है, उसपर मेरे पास बोलने के लिए तो कुछ भी नहीं रह गया।"

"बोलने की जरूरत भी नहीं है। उस समय स्वयं डेरे पर हाजिर होकर, काँच पोका जिस तरह तेलचट्टे को पकड़ ले जाता है उसी तरह तुम भी पकड़ ले जाती।"

"तेलचट्टा कौन है ? तुम ?"

"यही तो जानता हूं। ऐसा निरीह जीव संसार में और कौन है ?"

राजलक्ष्मी एक मुहूर्त भर चुप रहकर बोली, "किन्तु तो भी मन ही मन मैं तुमसे जितना डरती हूँ, उतना किसी से भी नहीं डरती।"

"यह तो परिहास है। किन्तु इसका कारण पूछ सकता हूँ ?"

राजलक्ष्मी ने पुनः क्षण भर मेरी तरफ देखकर कहा, "कारण यह है कि मैं तुमको पहिचानती हूँ। मैं जानती हूँ कि औरतों पर तुम्हारी सच्ची आसक्ति इतनी नहीं है, जो कुछ है, वह केवल दिखावटी शिष्टाचार है। संसार में किसी चीज पर तुम्हारा लोभ नहीं है, यथार्थ प्रयोजन भी नहीं है। तुम्हारे नहीं कह देने पर तुम्हें लौटाऊँगी किस तरह ?"

मैंने कहा, "लक्ष्मी, इसमें जरा भूल हो गई है। पृथ्वी की एक वस्तु में मेरा लोभ है, और वह हो तुम। केवल यहीं पर 'नहीं' कहने में बाधा पड़ती है। केवल इसके लिए दुनियाँ की और सभी चीजों को छोड़ सकता हूं, श्रीकान्त की इसी बात को तुम आज तक नहीं जान सकी।"

"हाथ धो आऊँ" कहकर राजलक्ष्मी झटपट उठकर चली गई।

दूसरे दिन, दिन और दिनान्त के सभी काम खतम करके राजलक्ष्मी आकर मेरे पास बैठ गई। बोली, "कमललता की कहानी सुनूँगी, कहो।"

जितना जानता था, सब सुना दिया, केवल अपने सम्बन्ध में कुछ छोड़ दिया, क्योंकि गलतफहमी फैलने की सम्भावना थी।

"आद्यन्त मन लगाकर सुन चुकने पर वह धीरे-धीरे बोली, "यतीन की मृत्यु का ही उस पर सबसे अधिक धक्का लगा है। उसी के दोष से वह मारा गया॥"

"उसका दोष कैसा ?"

"दोष तो है ही। अपना कलंक छिपाने के लिए उसी को तो उसने आत्महत्या की सहायता के लिए बुलाया था। उस दिन यही न स्वीकार न कर सका। किन्तु एक और दिन अपना कलंक छिपाने के लिए उसे भी वही मार्ग सबसे पहले आखों में दिखाई पड़ा। ऐसा ही होता है। इसीलिए पाप की सहायता के लिए किसी मित्र को नहीं बुलाना चाहिए। इससे एक का प्रायश्चित्त दूसरे के गले में पड़ जाता है। वह स्वयं तो बच गई, किन्तु उसका स्नेह का धन मर गया।"

"युक्ति अच्छी तरह समझ में नहीं आई, लक्ष्मी।"

"समझ में कैसे आयेगी? समझा है कमललता ने और तुम्हारी राज-लक्ष्मी ने।"

"ओ!, क्या ऐसी बात है?"

यही तो है। भला बताओ तो हमार ।जीवन कितना सा है, जब हम देखती हैं, तुम्हारी तरफ—"

"किन्तु कल तुमने कहा था कि मेरे मन की सभी कालिख साफ हो गई है, और कोई ग्लानि नहीं है, तो क्या वह झूठ था।"

"झूठ ही तो था। कालिख तो मरने के बाद ही पुछेगी, इसके पहले नहीं, मरने की भी इच्छा की थी, किन्तु तुम्हारे ही कारण न मर सकी।"

"यह तो जानता हूं। किन्तु यदि इसी को लेकर बार बार दुःख दोगी तो मैं इस तरह भाग जाऊँगा कि कहीं पर भी मुझे खोजकर न पाओगी।"

राजलक्ष्मी ने डरकर मेरा हाथ पकड़ लिया, बिलकुल ही छाती के पास खिसक कर चली आई, बोली, "अब ऐसी बात फिर कभी मुँह से मत निकालना। तुम सब कुछ कर सकते हो, तुम्हारी निष्ठुरता कभी बाधा नहीं मानती।"

"तब कह दो कि ऐसी बात फिर न कहोगी?"

"नहीं कहूँगी।"

"बोलो, सोचूँगी भी नहीं।"

"तुम भी बोलो कि मुझे छोड़कर कभी नहीं जाओगे?"

"मैं तो कभी गया नहीं राजलक्ष्मी! जब भी कभी दूर हट गया हूँ तब केवल यही जान कर कि तुमने मुझे नहीं चाहा।"

"वह तुम्हारी लक्ष्मी नहीं, और कोई होगी।"

"उसी किसी और से ही तो आज डरता रहता हूं?"

"नहीं, अब उससे मत डरो, वह राक्षसी मर चुकी है।" यह कहकर उसने मेरे उसी हाथ को जोर से पकड़ लिया और बैठी रह गई।

पाँच छः मिनट तक इसी तरह बैठी रह कर अचानक उसने दूसरी बात छेड़ दी, कहा, "तुम क्या सचमुच बर्मा जाओगे?"

"सचमुच ही जाऊँगा।"

"जाकर क्या करोगे, नौकरी, किन्तु हम लोग तो केवल दो ही प्राणी हैं, हम लोगों की कितनी आवश्यकताएँ ही हैं ?

"जितनी भी हैं, उनका भी तो उपाय करना है।"

"वह भगवान् दे देंगे। किन्तु तुम नौकरी नहीं करने पाओगे, वह तो तुम्हारे स्वभाव को सहन न होगी।"

"न हो सकेगी तो चला आऊँगा।"

'आओगे ही, यह मैं जानती हूं, केवल हठ करके इतनी दूर मुझे खींच ले जाकर कष्ट देना चाहते हो।"

"चाहो तो कष्ट न भी उठा सकती हो।"

राजलक्ष्मी ने एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंककर कहा, "रहने दो, चालाकी मत करो।"

मैंने कहा, "चालाकी नहीं करता, जाने पर सचमुच तुम्हें कष्ट होगा। रसोई तैयार करना, बासन माँजना, घर द्वार साफ करना, बिछौना बिछाना—"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तब दाई और नौकर चाकर क्या करेंगे ?"

"दाई नौकर कहाँ रहेंगे, उनके लिए रुपये कहाँ हैं ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "भले ही न मिलें, किन्तु जितना ही भय क्यों न दिखाओ, मैं तो अवश्य जाऊँगी।"

"चलो, केवल मैं और तुम। काम के बोझ से न पाओगी झगड़ने का अवसर और न पाओगी पूजापाठ और सन्ध्या वन्दना की फुरसत।"

"ऐसा ही होने दो। क्या मैं काम से डरती हूँ ?"

"डरती तो नहीं हो, यह सच है, किन्तु कर भी न सकोगी। दो दिन बाद ही लौटने के लिए आफत मचाने लगोगी।"

"इससे भी किस बात का डर है ? साथ लेकर जाऊँगी, और साथ ही लेकर लौट आऊँगी। छोड़ कर तो न आना पड़ेगा।" यह कहकर वह क्षणभर तक कुछ सोच कर बोल उठी, "यही ठीक है। दास दासी कोई भी न रहेंगे, एक छोटे से घर में केवल तुम और हम रहेंगे, जो खाने को दूंगी वही खाओगे, जो पहनने को दूंगी वही पहनोगे, नहीं, तुम देखना, शायद मैं लौट कर आना भी न चाहूंगी।"

अचानक वह मेरी गोद में अपना सिर रख कर लेट गई, और बहुत देर तक आँखें बन्द करके चुपचाप पड़ी रही।

"क्या सोच रही हो ?"

राजलक्ष्मी आँखें खोलकर जरा हँस उठी, बोली, "हम लोग कब चलेंगे ?"

"इस मकान की कुछ व्यवस्था कर डालो, फिर इसके बाद जिस दिन इच्छा होगी, यात्रा शुरू कर देंगे।"

उसने गरदन हिलाकर सम्मति दी और फिर आँखें बन्द कर लीं।

"फिर क्या सोच रही हो ?"

राजलक्ष्मी ने ताकते हुए कहा, "सोच रही हूं कि एक बार क्या मुरारीपुर न जाओगे ?"

मैंने कहा, "हाँ, विदेश जाने के पहले उनसे एक बार मुलाकात कर लेने का बचन तो दे आया था।"

"तो चलो, कल ही दोनों चलें।"

"तुम भी चलोगी ?"

"क्यों, इसमें डर ही क्या है ? तुमको प्यार करती है कमललता और उसे प्यार करते हैं हमारे गौहर दादा। यह खूब अच्छा हुआ है।"

"यह सब तुमसे किसने कहा ?"

"तुमने कहा है।"

"नहीं, मैंने तो नहीं कहा।"

"हाँ, तुम्ही ने कहा, केवल याद नहीं है कि कब कहा।"

सुनकर संकोच से व्याकुल हो उठा, बोला, "जो कुछ भी हो, वहाँ जाना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"

"क्यों नहीं है ?"

"उस बेचारी को हँसी मजाक करके तुम तंग कर डालोगी।"

राजलक्ष्मी ने भौंहें तान लीं, क्रोधित कण्ठ में बोली, "अब तक तुम्हें मेरा यही परिचय मिला है ? मैं क्या उसे इसलिए लज्जित करूँगी कि वह तुम्हें प्यार करती है ? तुमसे प्रेम करना क्या कोई अपराध है ? मैं भी तो स्त्री हूँ। हो सकता है कि मैं भी उसे प्यार करने लगूँ।"

"कुछ भी तुम्हारे लिए असम्भव नहीं है लक्ष्मी, चलो, चलें।"

"हाँ चलो, कल सबेरे की गाड़ी से ही हम दोनों चल पड़ें। तुम कोई चिन्ता मत करो। इस जीवन में मैं कभी तुम्हें दुःखी न करूँगी।"

इतना कहकर वह एक तरह अनमनी सी हो गई। आँखें बन्द हो गईं, सांस रुक-रुक कर निकलने लगी. सहसा न मालूम कितनी दूर कहाँ चली गई।"

डर कर उसे जरा हिलाकर मैंने पूछा, 'यह क्या?'

राजलक्ष्मी ने आँखें खोलकर देखा, जरा हँसकर, कहा, "कुछ भी तो नहीं।"

आज उसकी यह हँसी भी न मालूम मुझे किस तरह लगी।

—❀—

११

दूसरे दिन मेरी अनिच्छा के कारण जाना नहीं हुआ, किन्तु उसके बाद के दिन फिर यात्रा रोकी न जा सकी, मुरारीपुर के अखाड़े के लिए रवाना होना ही पड़ा। राजलक्ष्मी का वाहन रतन, जिसको बिना कहीं भी उनका कदम आगे नहीं बढ़ता साथ था ही, रसोई घर की दाई लालू की मां भी साथ चली। कुछ जरूरी चीज़ लेकर रतन सबेरे की गाड़ी से रवाना हो चुका है। वह वहाँ स्टेशन पर दो घोड़ा गाड़ियाँ ठीक कर रखेगा। इसके अलावा हमलोगों के साथ जो सामान बांध रखा गया है, वह भी तो कम नहीं है।

मैंने प्रश्न किया, "वहाँ क्या घरबार बसाने जा रही हो?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "क्या दो एक दिन भी न ठहरना पड़ेगा? देश के वन-जंगल, नदी नाले, घाट मैदान क्या तुम अकेले ही देख आओगे? मैं क्या उस देश की लड़की नहीं हूँ? मुझे क्या देखने की इच्छा नहीं होती?"

'मानता हूं कि होती है, किन्तु इतनी चीजें, इतने तरह का खाने पीने का आयोजन—'

राजलक्ष्मी ने कहा, "क्या तुम यही कहना चाहते हो कि देवस्थान पर खाली हाथ चला जाय? और तुमको तो कुछ ढोना नहीं है, तुम्हें चिन्ता किस बात की है?"

कितनी चिन्ता थी यह मैं किससे कहता ? और इसी बात का डर अधिक था कि वह वैष्णववैरागियों का छुआ हुआ देवता का प्रसाद स्वच्छन्दतापूर्वक माथेपर चढ़ा लेगी, किन्तु मुँह में न डालेगी। कौन जानता है कि, वहाँ जाकर किसी भी एक बात के बहाने वह उपवास शुरू कर देगी या रसोई बनाने के लिए बैठ जायगी। केवल एक बात का भरोसा है, राजलक्ष्मी का मन सचमुच ही भद्र मन है। अकारण शरीर पर पड़ कर वह किसीको व्यथा नहीं पहुँचा सकती। यदि इस तरह का कुछ करना भी पड़ेगा तो हँसते हुए मुँह से, हँसी मजाक के साथ इस तरीके से कहेगी कि मुझे और रतन को छोड़कर कोई दूसरा समझ भी न सकेगा।

राजलक्ष्मी के शारीरिक गठन में बाहुल्यभार कभी नहीं हुआ। इसपर भी संयम और उपवास ने मानो उसे लघुता की एक दीप्ति दे दी है। विशेषतः आज उसकी साजसज्जा कुछ विचित्र ही हो गई है। खूब तड़के ही स्नान कर आई है, गंगाजी के घाट पर के उड़िया पण्डे का यत्नपूर्वक लगाया हुआ तिलक उसके ललाट पर है, फल-फूल, लता-पत्रों से विचित्र बनावट वाली कथई रंग की वृन्दावनी साड़ी पहने है, शरीर पर वे ही थोड़े से गहने हैं, मुँह पर स्निग्ध प्रसन्नता है, अपने काम में तल्लीन है।

कल दो लम्बे आईने लगीं दो आलमारियाँ खरीद लाई थी, आज जाने के पहले उनमें झटपट न मालूम क्या क्या सजाकर रख रही है। काम करते रहने के साथ उसके हाथों के कड़े पर बनी घड़ियाल की दोनो आखें बीच-बीच में चमक उठती हैं, हीरे और पन्ने के बने जड़ाऊ हार की विभिन्न वर्णच्छटा किनारी के के व्यवधान के बीच से झलक उठती है। उसके कानों के पास भी एक प्रकार की नीली आभा निकल रही है; मेज पर चाय पीने के लिए बैठकर मैं टकटकी लगाये उसी तरफ देख रहा था। उसमें एक दोष था, घर पर वह ब्लाउज या जाकेट या शेमिज नहीं पहिनती थी। इस कारण कभी जरा भी असावधान होने पर, गले और बाहुओं के बहुत से अंश खुल जाते थे फिर भी यदि इसके लिए उससे कुछ कहा जाता तो वह हंसकर कहती थी, मुझसे यह सब नहीं हो सकता भैया। मैं हूँ देहाती औरत, दिन रात बीबीयाना ठाट मुझे नहीं अच्छा लगता। अर्थात् अधिक कपड़े पहिनना शुचिवायु ग्रस्त लोगों के लिए बहुत ही कष्टकर है। आलमारी के

किवाड़ बन्द करते समय एकाएक आईने में उसकी निगाह मेरे ऊपर पड़ गई। झटपट अपने कपड़े संभाल कर वह उठ खड़ी हुई, नाराज होकर बोली, "फिर भी ताक रहे हो। इस बार, बार बार मुझे इतना क्यों देखते हो बताओ तो?" और यह कहकर ही वह हंस पड़ी।

मैं भी हंसने लगा, बोला, "सोच रहा था कि विधाता को फरमाइश देकर न मालूम किसने तुमको गढ़वाया था।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुमने। नहीं तो सृष्टि से बहिर्भूत ऐसी पसन्दगी और किसकी है? मेरे आने के पाँच छः वर्ष पहले तुम आये थे, और आते समय उन्हें बयाना दे आये थे। शायद याद नहीं है?"

"नहीं, किन्तु तुम कैसे जान गये?"

"चालान करते समय कानों में उन्होंने ही कह दिया था। किन्तु तुम क्या चाय पी चुके? देर करोगे तो आज भी जाना नहीं होगा।"

'नहीं होगा तो क्या हर्ज है?"

"बतलाओ क्यों?"

"वहाँ भीड में शायद तुम्हें खोजने पर न पाऊँगा।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मुझे पाओगे। मैं ही तुमको खोजकर पा जाऊँ तो बड़ी रक्षा होगी।"

मैंने कहा, "यह भी तो ठीक नहीं है।"

उसने हँसकर कहा, "नहीं, ऐसा नहीं होगा। प्यारे, चलो। सुना है कि बड़े गोसाईं का वहाँ एक अलग कमरा है। मैं जाते ही उसका कुण्डा तोड़कर रख दूंगी। कोई भय नहीं है। खोजना न पड़ेगा, दासी को यों ही पा जाओगे।"

"तो चलो।"

जिस समय हम लोग मठ में पहुंचे, उस समय तुरत ही देवता की पूजा समाप्त हुई थी। बिना बुलाये, बिना खबर के इतने प्राणी अकस्मात् जा पहुँचे, किन्तु तो भी वे लोग किस हदतक खुश हुए यह कह नहीं सकता। बड़े गोसाईं आश्रम में नहीं हैं, गुरुदेव को देखने के लिए फिर नवद्वीप गये हैं, किन्तु इसके बीच ही दो वैरागी आकर मेरे ही कमरे में अड्डा जमाकर बैठे हैं।

कमललता, पद्मा, लक्ष्मी, सरस्वती और अन्य भी बहुत सी आकर मेरी

अभ्यर्थना करने लगीं, कमललता ने भर्राई हुई आवाज में कहा, "ऐसी आशा नहीं थी कि तुम इतना शीघ्र आकर फिर हम लोगों को दर्शन दोगे।"

राजलक्ष्मी ने इस तरह बातचीत की मानो कितने दिनों का परिचय है। कहा, "कमललता बहिन, इन कई दिनों से इनके मुँह से केवल तुम्हारी बातों की चर्चा निकलती थी" और भी पहले आना चाहते थे, केवल मेरे ही कारण ऐसा न हो सका। इसमें मेरा ही दोष है।"

कमललता का मुँह क्षण काल के लिए लाल हो उठा, पद्मा झटपट हँस पड़ी किन्तु तुरत ही आँखें फेर लीं।

राजलक्ष्मीकी वेश भूषा और चेहरा देखकर सभी ने समझ लिया है कि वह किसी भद्र परिवार की महिला है। केवल मेरे साथ उसका क्या सम्बन्ध है, यह बात निस्सन्देह कोई भी न जान सका। परिचय के लिए सभी उत्सुक हो उठे। राजलक्ष्मी की आँखों से कुछ भी नहीं छिपता। उसने कहा, "कमललता बहिन, 'मुझे तुम पहिचान नहीं सकी।"

कमललता ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

"वृन्दाबन में कभी नहीं देखा?"

कमललता भी निर्बोध नहीं है, परिहास की बात वह समझ गई, हँसकर बोली,—"याद तो नहीं पड़ रहा है बहिन।"

राकलक्ष्मी ने कहा "याद न पड़ना ही अच्छा है बहिन। मैं इसी देश की लड़की हूँ, कभी धृन्दावन के पास तक भी नहीं गई," यह कहकर ही वह हँस पड़ी। फिर लक्ष्मी, सरस्वती और अन्य सबके चले जाने के बाद मुझे दिखाकर कहा, "हमलाग दोनों ही एक ही गाँव में, एक ही गुरू की पाठशाला में पढ़ते थे। दोनों में ऐसा प्रेम था मानो भाई-बहिन हों। मुहल्ले के रिश्ते से मैं दादा कहकर पुकारती थी और ये मुझे बहिन की तरह कितना अधिक प्यार करते थे। शरीर पर कभी हाथ तक नहीं लगाया।"

मेरी तरफ देखकर बोली, "क्यों जी, जो कुछ कह रही हूँ, सब ठीक है न?"

पद्मा खुश होकर बोली, "इसीलिए तुम दोनों देखने में एक ही तरह हो। दोनों ही लम्बे और पतले हो, केवल तुम गोरी हो और नये गोसाईं काले हैं। तुम लोगों को देखने से ही ऐसा मालूम हो जाता है।"

राजलक्ष्मी ने गम्भीर होकर कहा, "मालूम तो हो ही जायगा, बहिन। हम लोगों के ठीक एक ही प्रकार के हुए बिना काम कैसे चल सकता है ?"

पद्मा, "अरे माँ, देखती हूं कि तुम्हें मेरा भी नाम मालूम है। नये गासाईं ने शायद बता दिया है ?"

"बताया है, इसीलिए तो तुमलोगों को देखने के लिए आई हूं। मैंने कहा, अकेले क्यों जाओगे ? मुझे भी साथ ले चलो। तुमसे तो मुझे कोई डर नहीं है. एक साथ देखकर कोई कलंक भी नहीं लगायगा। यदि कोई कलंक लगावे भी तो क्या होगा, नीलकण्ठ के गले में ही विष लगा रह जायगा, पेट में नहीं जायगा।"

मैं अब चुप न रह सका। औरतों का यह किस तरह का मजाक है, यह वे ही जानें। क्रोधित होकर मैंने कहा, "बताओ, लड़कियों के साथ क्यों झूठ मूठ का मजाक कर रही हो ?"

राजलक्ष्मी ने भलेमानुस की तरह कहा 'सच्चा मजाक क्या है, तुम्ही बता दो न। जो कुछ जानती हूँ, सरल मन से कह रही हूं, तुम नाराज क्यों हो रहे हो ?"

उसकी गम्भीरता देखकर क्रोधित होकर भी मैं हँस पड़ा, "हाँ, सरल मन से कह रही हो ! कमललता संसार में इतनी बड़ी शैतान, वाचाल तुम कहीं खोजकर न पाओगी। इसका कुछ मतलब है, इसकी बातों पर कभी सहज में ही विश्वास मत कर लेना।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "निन्दा क्यों करते हो गोसाईं ? तब तो मेरे सम्बन्ध में तुम्हारे मन में कुछ मतलब है।"

"है ही तो।"

"किन्तु मेरे मन में तो नहीं है। मैं निष्पाप निष्कलंक हूं।"

"हाँ, युधिष्ठिर हो !"

कमललता भी हँस पड़ी, किन्तु यह हँसना उसके बोलने की भंगी देखकर था। शायद वह ठीक कुछ भी समझ न सकी, केवल उलझन में पड़ गई। कारण, उस दिन भी तो मैंने किसी रमणी से अपने सम्बन्ध का आभास नहीं दिया था। और देता भी तो किस तरह ? देने के लिए उस दिन था ही क्या ?

कमललता ने पूछा, "बहिन, तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम राजलक्ष्मी है और ये पहले का अंश छोड़कर, केवल लक्ष्मी कहकर

पुकारते हैं। मैं कहती हूँ 'ऐजी', 'हांजी'। आजकल किन्तु 'नये गोसाईं'' कहकर पुकारने के लिए कहते हैं। कहते हैं कि इससे शान्ति मिलेगी।''

पद्मा ने एकाएक ताली बजाकर कहा, ''मैं समझ गई।''

कमललता ने उसे धमकाया, बोली, ''इस जलमुँहीं की बड़ी बुद्धि है न। बता तो क्या समझ गई?''

''निश्चय समझ गई, बताऊँ?''

''बताने की जरूरत नहीं है, जा,'' यह कहकर उसने स्नेहपूर्वक राजलक्ष्मी का एक हाथ पकड़कर कहा. ''किन्तु बातों ही बातों में देर हो रही है बहिन, धूप में मुँह सूख गया है। जानती हूं कि कुछ खाकर नहीं आई हो, चलो, हाथ पैर धोकर देवता को प्रणाम करो, फिर सभी मिलकर उनका प्रसाद खायेंगे। तुम भी चलो गोसाईं,''—यह कहकर उसका हाथ पकड़कर वह मन्दिर की तरफ खींच ले गई।

इस बार मन ही मन मैंने समझ लिया कि कोई विपत्ति आ गई, क्योंकि अब आ गया प्रसाद ग्रहण करने का बुलावा। खाने पीने और छूआछूत का संस्कार राजलक्ष्मी के जीवन में इस तरह गुँथा हुआ है कि इस सम्बन्ध में सत्यासत्य का प्रश्न ही अवैध है। यह केवल विश्वास नहीं है, यह उसका स्वभाव है। इसे छोड़कर वह जी नहीं सकती। किसी को यह जान लेने का उपाय नहीं है कि जीवन के इस एकान्त प्रयोजन की सहज और सक्रिय सजीवता ने कितनी बार कितने संकटों से उसकी रक्षा की है,—अपने आप तो वह बतायेगी नहीं, जान लेने से भी कुछ लाभ नहीं है। केवल मैं ही जानता हूँ कि एक दिन राजलक्ष्मी को बिना चाहे ही दैवात् पा गया हूँ और आज वह मेरी सभी प्राप्त वस्तुओं से बढ़कर है। किन्तु इस समय उस बात को छोड़ दो।

उसकी जो कुछ भी कठोरता है, वह केवल अपने को ही लेकर है, फिर भी दूसरों पर कुछ भी अत्याचार नहीं है। वह हँसकर कहा करती है, ''भाई, इतना कष्ट उठाने की जरूरत क्या है? आजकल के समय में इतना बचकर चलने से प्राण नहीं बच सकते। वह जानती है कि मैं इन सब बातों को कुछ भी नहीं मानता। केवल उसकी आँखों के सामने कोई भयंकर घटना न घटने से ही वह खुश रहती है। मेरे परोक्ष दुराचार कहानी सुनकर, कभी तो वह अपने दोनों कानों

को बन्द करके अपनी रक्षा करती है, या कभी गाल पर हाथ रखकर अवाक् होकर कहती है, 'मेरे दुर्भाग्य से तुम ऐसे क्यों हो गये। तुम्हारे कारण मेरा सब कुछ चला गया।"

किन्तु आज का मामला तो ठीक इस तरह का नहीं है। इस निर्जन मठ में जो कई प्राणी शान्ति से रहते हैं, वे सभी दीक्षित वैष्णव धर्मावलम्बी हैं। ये लोग जाति भेद नहीं मानते और पूर्वाश्रम की बातों को कभी ये लोग याद भी नहीं करते। इसी से किसी अतिथि के आने पर ये लोग बिना संकोच के ठाकुर जी का प्रसाद श्रद्धा के साथ वितरण करते हैं और आजतक भी किसी ने कभी प्रसाद को अस्वीकार करके इनको अपमानित नहीं किया।

किन्तु यह अप्रीतिकर कार्य हो यदि आज बिना बुलाये आकर, हम लोगों के द्वारा ही घटित हो जाय तो परिताप की सीमा न रहेगी विशेषकर मेरे परिताप की। मैं यह जानता था कि कमललता मुँहसे कुछ न कहेगी, किसीको कुछ कहने भी न देगी,—शायद केवल एक बार मेरी ओर देखकर ही सिर नीचे झुकाकर दूसरी जगहपर हट जायगी। इस मूक अभियोग का क्या उत्तर होगा, खड़ा होकर मैं यही सोच रहा था। ऐसे ही समय में पद्मा ने आकर कहा, "आओ नये गोसाईं, बहिन जी तुम्हें बुला रही हैं। हाथ मुँह धो लिया है?"

"नहीं।"

"तो आओ, मैं पानी देती हूं। प्रसाद दिया जा रहा है।"

"आज क्या प्रसाद बना है?"

"आज देवता को अन्न भोग लगा है।"

मन ही मन मैंने कहा, तब तो यह खबर और भी अच्छी है। पूछा, "प्रसाद किस जगह दिया है?"

पद्मा ने कहा, "देवगृह के बरामदे में। तुम बाबा जी लोगों के साथ बैठोगे और हम औरतें बाद को खायेंगी। आज हम लोगों को स्वयं राजलक्ष्मी दीदी परोसेंगी।"

"वह नहीं खायेगी?"

"नहीं। वह तो हमलोगों की तरह वैष्णवी नहीं है। ब्राह्मण की लड़की है। हम लोगों का छुआ खाने से उसे पाप लगेगा।"

"तुम्हारी कमललता दीदी नाराज नहीं हुई?"

"नाराज क्यों होगी, वरन् हँसने लगी । राजलक्ष्मी दीदी से कहा, "अगले जन्म में हमें दोनों बहनें एक ही मां के पेट से जन्म लेंगी । पहले मैं जन्म लूँगी । और तुम बाद को आओगी । तब दोनों बहनें एक ही पत्तल पर बैठकर माँ के हाथ से खायेंगी । उस समय यदि तुम कहोगी कि जात चली गई तो माँ कान मल देगी ।"

सुनकर खुश होकर सोचा, अब ठीक हुआ । राजलक्ष्मी को कभी बात चीत करने में अपनी बराबरी का कोई नहीं मिला था । मैंने पूछा 'उसने क्या जवाब दिया ?'

पद्मा ने कहा, "राजलक्ष्मी दीदी भी सुनकर हंसने लगी, बोली, 'मां क्यों दी दी, तब बड़ी बहन बनकर तुम ही मेरा कान मल देना । छोटी का दुस्साहस किसी तरह भी मत सहन करना ।"

प्रत्युत्तर सुनकर चुप हो गया, केवल प्रार्थना करता रहा कि कमललता इसके भीतरी अर्थ को न समझ सके ।

जाकर देखा कि मेरी प्रार्थना मंजूर हो गई है । कमललता ने उस बात पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु इस अमेल को न मानकर ही इस बीच दोनों में खूब मेल हो गया है ।

शामकी गाड़ी से बड़े गोसाईं द्वारिका दास लौट आये, उनके साथ और भी कई बाबाजी आये । सर्वांग में छापछोप का परिमाण और वैचित्र्य देखकर इस बात में सन्देह नहीं रहा कि ये लोग भी अवहेला के पात्र नहीं हैं । मुझे देखकर बड़े गोसाईं खुश हुए किन्तु उनके साथियों ने परवा नहीं की । परवा न करने की ही बात है, क्योंकि सुना गया कि इनमें से एक तो सुप्रसिद्ध संकीर्तनाचार्य हैं और एक मृदंग के उस्ताद हैं ।

प्रसाद पाना समाप्त होने पर मैं बाहर निकल पड़ा । वह सूखी नदी और वही बन जंगल । चारो तरफ बांस और बेंत के कुंज हैं, शरीर का चमड़ा बचाना कठिन है । आसन्न सूर्यास्त के समय नदी के किनारे बैठकर कुछ प्रकृति की लीला निरीक्षण करने का संकल्प कर लिया, किन्तु ऐसा मालूम हुआ मानो पास ही कहीं 'अन्धकार माणिक' फूल खिले हैं । उनकी बीभत्स सड़े मांस की सी दुर्गन्ध ने ठहरने नहीं दिया । मन ही मन सोचा कि कबियों के लिए फूल प्रिय वस्तु

है। कोई इन फूलों को उन्हें उपहार में क्यों नहीं दे आता! संध्या के पहले ही लौट आया। जाकर देखा कि समारोह की धूम मची है। ठाकुर और ठाकुर घर की सजावट हो रही है, आरती के बाद कीर्तन की बैठक होगी।

पद्मा ने कहा, "नये गोसाईं, तुम कीर्तन सुनना पसन्द करते हो, आज मनोहर दास बाबा जी का गाना सुनोगे तो अवाक हो जाओगे। क्या ही अच्छा गाते हैं!"

वस्तुतः वैष्णव कवियों की पदावली की भाँति मधुर वस्तु मेरे लिए और कुछ नहीं है। मैंने कहा, "सचमुच ही मुझे बहुत अच्छा लगता है पद्मा। बचपन में यह सुनते ही कि दो चार कोस के अन्दर कहीं भी कीर्तन होनेवाला है, मैं दौड़ जाता था, किसी तरह भी घर में नहीं रह सकता था। समझ में आता या नहीं आता अन्त तक बैठा रह जाता। कमललता, आज तुम नहीं जाओगी?"

कमललता ने कहा, "नहीं गोसाईं, आज नहीं। मेरी तो वैसी शिक्षा नहीं है, उनके सामने जाने में लज्जा मालूम होती है। इसके अतिरिक्त उस बीमारी के समय से गला इतना भारी हो गया है कि अभी तक ठीक नहीं हुआ।"

मैंने कहा, "किन्तु लक्ष्मी तो तुम्हारा गाना सुनने के ही लिए आई है। वह सोचती है कि शायद मैंने तुम्हारे बारे में बढ़ा चढ़ाकर कहा है।"

कमललता ने लज्जा के साथ कहा, "बढा चढ़ाकर तो जरूर कह दिया है गोसाईं।" इसके बाद स्मित हँसी के साथ राजलक्ष्मी से कहा, "तुम कुछ भी खयाल मत करना बहिन, थोड़ा बहुत जो कुछ जानती हूँ, एक दिन सुना दूँगी।"

राजलक्ष्मी ने प्रसन्न मुंह से कहा, "अच्छा दीदी, जिस दिन तुम्हारी इच्छा हो मुझे बुला लेना, मैं स्वयं आकर तुम्हारा गाना सुन जाऊँगी।" मुझसे कहा, "तुम कीर्तन सुनना इतना पसन्द करते हो, यह बात तो तुमने मुझसे कभी नहीं बताई?"

उत्तर दिया, "तुमको क्यों बताता? गंगामाटी में जब बीमारी में बिस्तर पर पड़ा था, सूखे और सूने मैदान की तरफ ताकते ताकते दो पहर का समय कटता था, और दुर्भर सन्ध्या किसी तरह भी अकेले कटना नहीं चाहती थी"—

राजलक्ष्मी ने झटपट मेरे मुंहको अपने हाथ से दबा लिया, बोली, "यदि और कुछ उमादा कह डालोगे तो पैरों पर सिर पटक कर मर जाऊँगी। इसके बाद

स्वयं ही अप्रतिभ होकर हाथ हटाकर बोली, "कमललता दीदी, "अपने बड़े गोसाईं जी से कह आओ तो बहिन, कि आज बाबा जी महाशय के कीर्तन के बाद मैं देवताओं को अपना गाना सुनाऊँगी।"

कमललता ने कहा, "किन्तु बाबा जी बड़े ही आलोचक मिजाज के मनुष्य हैं बहिन !"

राजलक्ष्मी ने कहा, "होने दो, भगवान का नाम तो होगा।" विग्रह मूर्तियों को हाथ से दिखाकर हंसती हुई बोली, "शायद ये लोग खुश होंगे। और बाबाजी लोगों को लिए तो मैं उतना नहीं सोचती बहिन, किन्तु मेरे यह दुर्वासा देवता प्रसन्न हो जायँ तो मैं अपनी रक्षा समझूँ।"

मैंने कहा, "किन्तु होने पर बख्शीश पाओगी !"

राजलक्ष्मी ने सभय कहा, "रक्षा करो गोसाईं, कहीं सबके सामने बख्शीश देने मत आना। तुम्हारे लिए असम्भव कुछ नहीं है।"

सुनकर वैष्णवियाँ हँसने लगीं, पद्मा खुश होते ही ताली बजाने लगती है, बोली, मैं "स—म—झ—ग—ई।"

कमलताने उसकी तरफ सस्नेह देखकर हंसते हुए कहा, "दूर हो जा कलमुंही, चुप रह।" राजलक्ष्मी से बोली—"इसे ले जाओ बहिन, क्या मालूम, कब अचानक क्या कह बैठे।"

देवता की संध्या आरती के बाद कीर्तन की बैठक जम गई। आज बहुत सी बत्तियाँ जलाई गईं। मुरारीपुर का अखाड़ा वैष्णव समाज में नितान्त अप्रसिद्ध नहीं है, विभिन्न स्थानों से कीर्तन करने वाले वैरागियों के दल आ जुटने पर इस तरह का आयोजन प्राय: ही हुआ करता है। मठ में सब तरह के वाद्य-यंत्र मौजूद रहते हैं, देखा कि ये सब हाजिर कर दिये गये हैं। एक तरफ वैष्णवियाँ बैठी हुई हैं, दूसरी तरफ अज्ञातकुलशील अनेक बैरागी मूर्तियाँ हैं। ये तरह तरह की उम्र और चेहरों की हैं। बीच में विख्यात मनोहरदास और उनके मृदंगवादक आसीन हैं। मेरे घरपर हाल में दखल जमानेवाले एक छोकडा बाबाजी हारमोनियम में सुर दे रहे हैं। यह प्रचार हो गया है कि कलकत्ते से सम्भ्रान्त घर की कोई महिला आई हैं, वे ही गाना गायेंगी। वे युवती हैं, वे सुन्दरी हैं, वे धनवान हैं। उनके साथ दासदासी, नौकरचाकर आये हैं, विविध खाद्य सामग्री आई है और

कोई एक नयाँ गोसाई भी आया है, कहते हैं कि शायद वह इसी इलाके का घुमक्कड़ है।

मनोहरदास के कीर्तन की भूमिका और गौरचन्द्रिका (चैतन्य देव की वन्दना) के बीच से किसी समय राजलक्ष्मी आकर कमललता के पास बैठ गई। हठात् बाबाजी महोदय का गला कुछ कांपकर सँभल गया, मृदंग पर थपकी नहीं पड़ गई, यह एक नितान्त दैवलीला ही थी, केवल द्वारिकादास दीवार पर टेक कर जिस तरह आँखें बन्द किये बैठे थे, उसी तरह बैठे रह गये, न मालूम, शायद वे यह जान ही न सके कि कौन आया और कौन नहीं आया।

राजलक्ष्मी एक नीलाम्बरी साड़ी पहिन कर आई है, उसीको महीन जरी की किनारी के साथ, शरीर की नीले रंग की चोली का रंग मिल गया है, बाकी सब वैसा ही है। केवल सबेरे के उड़िया पण्डे के लगाए हुए छाप-छोप इस वक्त बहुत कुछ मिट गये हैं, जो कुछ बाकी हैं, वे मानो आश्विन के छिन्न-भिन्न बादल हैं, कब मिट जायेंगे। वह अत्यन्त शिष्ट और शान्त मनुष्य है, उसने मेरी तरफ कटाक्ष से भी नहीं ताका, मानो पहिचानता ही नहीं। तो भी उसने क्यों अपनी थोड़ी सी हँसी दबा दी, यह वही जानता है, अथवा मेरी भी भूल हो सकती है—असम्भव तो नहीं है।

आज बाबाजी महोदय का गाना जमा नहीं, किन्तु यह उनके अपने दोष से नहीं, लोगों की अधीरता के कारण। द्वारिकादास ने आँखें खोलकर राजलक्ष्मी को बुलाकर कहा, "दीदी, हमारे देवता को अब तुम कुछ निवेदन करके सुनाओ, सुन कर हम लोग भी धन्य हों।"

राजलक्ष्मी उसी तरफ मुँह करके घूमकर बैठ गई। द्वारिकादास ने मृदंग की तरफ अंगुली से इशारा करके पूछा, "इससे कोई बाधा तो नहीं पड़ेगी?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नहीं।"

यह सुनकर केवल वे ही नहीं, मनोहरदास ने भी मन ही मन कुछ आश्चर्य अनुभव किया, क्योंकि साधारण स्त्रियों से शायद उन्होंने इतनी आशा नहीं की थी।

गाना शुरू हुआ। संकोच की जड़ता और अज्ञता की दुविधा कहीं भी नहीं है। निःसंशय कण्ठ अबाध जलस्रोत की तरह बहने लगा। इस विद्या में वह सुशिक्षिता है, यह मैं जानता हूं। यह थी उसकी जीविका, किन्तु बंगाल की

अपनी खास सम्पत्ति संगीत की इस धारा पर भी उसने इतने यत्न के साथ अधिकार कर लिया है, ऐसा मैंने नहीं सोचा था। कौन जानता था कि प्राचीन और आधुनिक वैष्णव कवियों की इतनी विभिन्न पदावलियाँ उसने कण्ठस्थ कर रखी है। केवल सुर-ताल और लय में नहीं, बल्कि वाक्य की विशुद्धता, उच्चारण की स्पष्टता और प्रकाशभंगी की मधुरता से उसने इस सन्ध्या को जिस विस्मय की सृष्टि की, वह कल्पनातीत था। पत्थर के देवता उसके सामने हैं और पीछे बैठे हैं दुर्वासादेव। यह बताना कठिन है कि किसको अधिक प्रसन्न करने के लिए उसकी यह आराधना थी। गंगामाटी के अपराध का थोड़ा सा भी खण्डन इससे हो जाय, यह बात क्या जाने आज उसके मन में थी या नहीं।

वह गा रही थी,—

एक पद पंकज, पंके विभूषित, कंटक जर जर भेल।
तुया दरशन आगे कुछ नाहि जानलु चिरदुख अब दूर गेल॥
तोहारि मुरलि जब श्रवणे प्रवेशल छोडनु गृहसुख आश।
पंथक दुख तृणहुँ करि न गणनु, कहतहि गोविन्ददास॥

बड़े गोसाईं जी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी, वे आनन्द और आवेग की प्रेरणा से उठ खड़े हुए और विग्रह के गले से मल्लिका की माला उतार कर उन्होंने राजलक्ष्मी के गले में पहना दी और कहा, "प्रार्थना करता हूँ, तुम्हारे सब अकल्याण दूर हो जायँ बहिन!"

राजलक्ष्मी ने झुककर उनको नमस्कार किया, फिर उठकर मेरे पास आई, और सबके सामने पैरों की धूलि माथेपर लगा ली, धीरे धीरे कहा, "यह माला रखी है, बख्शीश का डर नहीं दिखाया होता तो यहीं पर तुम्हारे गले में पहना देती।" यह कहकर ही वह तुरत चली गई।

गाने की बैठक समाप्त हो गई। मालूम हुआ मानो आज ही जीवन सार्थक हो गया। उसको अन्धकार के कुछ ओट में बुलाकर कहा, "वह माला रख दो। यहाँ नहीं, घर लौटकर तुम्हारे हाथो से ही पहनूँगा।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यहाँ ठाकुरघर में पहन लेने पर फिर इसे उतार न सकोगे, शायद इसी बात का डर है?"

"नहीं, भय अब नहीं है, वह दूर हो गया है। यदि आज सारी पृथ्वी मेरी होती तो वह भी आज तुम्हें दान कर देता।"

"ओः कितने बड़े दाता हो, किन्तु वह तो तुम्हारी ही रहती जी।"

मैंने कहा, "तुमको आज असंख्य धन्यवाद।"

"क्यों बताओ तो भला ?"

मैंने कहा, "आज मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। रूप, गुण, रस, विद्या, बुद्धि, स्नेह और सौजन्य से परिपूर्ण जो धन मुझे माँगे बिना ही मिल गया है, उसकी तुलना संसार में नहीं है। अपनी अयोग्यता देखकर मुझे लज्जा लगती है लक्ष्मी, सचमुच मैं तुम्हारे प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "इस बार किन्तु सचमुच ही रंज हो जाऊँगी।"

"सो हो जाओ। सोचता हूं कि इस ऐश्वर्य को कहाँ रखूँगा ?"

"क्यों चोरी हो जाने का डर है ?"

"नहीं, ऐसा मनुष्य तो मुझे कोई नहीं दिखाई पड़ता लक्ष्मी। चोरी करके तुमको रखने लायक इतनी बड़ी जगह वह बेचारा कहाँ पावेगा ?"

राजलक्ष्मी ने उत्तर नहीं दिया, मेरा हाथ खींचकर क्षणकाल तक अपनी छाती के पास रख दिया, इसके बाद बोली, "इस तरह आमने-सामने अन्धेरे में हमें खड़े देखकर लोग हँसेंगे ही! किन्तु सोच रही हूँ रात को तुम्हें कहाँ सोने का इन्तजाम करूँ, जगह तो नहीं है।"

"नहीं रहने दो, कहीं भी सो रहने पर रात कट हो जायगी।"

"सो तो कट ही जायगी, किन्तु तबीयत तो अच्छी नहीं है, बीमारी पकड़ सकती है।"

"तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं, वे लोग कुछ न कुछ इन्तजाम करेंगे ही।"

राजलक्ष्मीने चिन्ता के स्वर में कहा, "सब तो देख ही रही हूं, क्या व्यवस्था करेंगे यह मैं नहीं जानती। किन्तु मैं चिन्ता न करूँ और वे करें ? चलो। थोड़ा सा कुछ खाकर सो जाना।"

लोगों की भीड़ के कारण वास्तव में सोने की जगह नहीं थी। उस रात को किसी तरह एक खुले बरामदे में मसहरी टंगाकर मेरे लिए सोने की व्यवस्था हुई।

राजलक्ष्मी कुछ खटपट करने लगी, शायद रात को बीच बीच में आकर देख भी गई, किन्तु मेरी नींद में कोई बाधा नहीं पड़ी।

दूसरे दिन बिछौने से उठने पर देखा कि दोनों बहुत से ढेर के ढेर फूल तोड़ कर लौट आई हैं। कमललता ने आज मेरे बदले में राजलक्ष्मी को ही साथी बना लिया था। वहाँ एकान्त में उन लोगों में क्या बातचीत हुई है यह मैं नहीं जानता, किन्तु आज उन लोगों का मुँह देखकर मुझे बड़ी ही तृप्ति हुई। मानो दोनों कितने दिनों की सखियाँ है, कितने दिनों की आत्मीय है ! कल दोनों एक ही साथ एक ही बिछौने पर सोई थीं, जाति के विचार ने वहाँ किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं लगाया। इस सम्बन्ध में कि एक दूसरे के हाथ का नहीं खाती; कमललता ने मुझसे हंसकर कहा, "तुम इस पर कुछ मत सोचना गोसाईं. हम लोगों का यह बन्दोबस्त हो गया है। अगली बार मैं बड़ी बहिन होकर जन्म लूँगी और इसके दोनों कान अच्छी तरह मल दूँगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "इसके बदले में मैंने भी एक शर्त करा ली है गोसाईं। यदि मैं मर जाऊँ, तो वैष्णवीगिरी से इस्तीफा देकर इसे तुम्हारी सेवा में नियुक्त हो जाना पड़ेगा। मैं अच्छी तरह जानती हूं कि तुम्हारे बिना मैं मुक्ति न पाऊँगी, तब भूत बनकर दीदी की गरदन पर चढ़ बैठूँगी, उसी सिन्दबाद के दैत्य की भाँति कन्धेपर बैठकर, उससे काम कराकर लूँगी तब छोड़ूगी।"

कमललता ने सहास्य कहा, "तुम्हें मरने की जरूरत नहीं है बहिन, तुमको कन्धे पर लेकर मैं हरदम घूम नहीं सकूँगी।"

सबेरे चाय पीकर गौहर की तलाश में बाहर निकल पड़ा। कमललता ने आकर कहा, "ज्यादा देर मत करना गोसाईं, और उसे भी साथ लेते आना। इधर देवता का भोग तैयार करने के लिए एक ब्राह्मण पकड़ लाई हूं। जैसा गन्दा है, वैसा ही आलसी है। राजलक्ष्मी सहायता के लिए उसके साथ गई है।"

मैंने कहा, "यह तो तुमने अच्छा नहीं किया। राजलक्ष्मी का तो खाना हो जायगा किन्तु तुम्हारे देवता उपासे ही रह जायेंगे।"

कमललता ने भय से जीभ काटकर कहा, "ऐसी बात मत कहो गोसाईं, वह कानों से सुन लेगी तो यहाँ फिर जल भी ग्रहण न करेगी।"

हँसकर मैंने कहा, "चौबीस घंटे भी नहीं बीते कमललता, किन्तु तुमने उसको पहिचान लिया है।"

उसने भी हँसकर कहा, "हाँ गोसाईं, पहिचान लिया है। सौ लाख मनुष्यों में खोजने पर भी तुम्हें ऐसा एक भी मनुष्य नहीं मिलेगा। तुम भाग्यवान हो।

गौहर से मुलाकात नहीं हुई, वह घर पर नहीं है। उसकी एक विधवा ममेरी बहिन सुनाम ग्राम में रहती है। नवीन ने बताया कि वहाँ एक नये प्रकारका रोग फैल गया है, बहुत आदमी मर रहे हैं। दरिद्र आत्मीया लड़के बच्चों को लेकर आफत में पड़ गई है, इसीलिए वह चिकित्सा कराने वहाँ गया है। आज दस बारह दिनों से कोई खबर नहीं है. नवीन भय से मरता जा रहा है, किन्तु कोई भी रास्ता उसे नहीं दिखाई पड़ता। हठात् जोरों से चिल्लाकर वह रो उठा और बोला, "शायद मेरे बाबू अब जीवित नहीं हैं, मैं एक मूरख हलवाहा किसान हूँ. कभी गांव से बाहर नहीं गया, वह देश कहाँ है, कहाँ से जाना होता है यह तो मैं नहीं जानता, नहीं तो सारी घर गृहस्थी डूबकर बह जाती तो भी नवीन क्या अब तक घर पर बैठा रहता। चक्रवर्ती महाशय की दिन रात खुशामद करता रहता हूं कि महाराज, दया करो, जमीन बेचकर तुमको सौ रुपया दूँगा, मुझे एक बार ले चलो, किन्तु वह धूर्त ब्राह्मण नहीं हिला। किन्तु मैं यह भी कह देता हूँ बाबू, कि यदि मेरे मालिक की मृत्यु हो जायगी तो चक्रवर्ती को मकान में आग लगाकर मैं जला डालूँगा और इसके बाद उसी आग में जलकर मैं आत्महत्या कर लूँगा। इतने बड़े नमकहराम को मैं जीवित न रखूँगा।"

उसको सान्त्वना देकर मैंने पूछा, "जिले का नाम क्या जानते हो नवीन?"

नवीन ने कहा, "केवल यही सुना है कि वह गांव शायद नदिया जिले के किसी कोने में है। स्टेशन से बैलगाड़ी पर सवार होकर बहुत दूर जाना पड़ता है।" बोला, "चक्रवर्ती जानता है, पर वह ब्राह्मण यह भी बतलाना नहीं चाहता।"

नवीन पुरानी चिट्ठी पत्र आदि संग्रह कर लाया, किन्तु उन सबसे कोई पता नहीं चला। केवल यही खबर मिली कि दो महीने पहले विधवा बेटी की कन्या के विवाह के लिए चक्रवर्ती ने गौहर से दो सौ रुपये वसूल किये थे।

बेवकूफ गौहर के पास बहुत रुपया है, इस कारण असमर्थ गरीब उसे ठगेंगे ही,

इसके लिए क्षोभ करना वृथा है, किन्तु इतनी बड़ी शैतानी भी साधारणतः नहीं दिखाई पड़ती।

नवीन ने कहा, "बाबू का मर जाना ही उसके लिए अच्छा है। एकदम झंझटों से मुक्त हो जायगा। उधार रुपये का एक पैसा भी चुकाना न पड़ेगा।"

यह असम्भव नहीं है।

हम दोनों चक्रवर्ती के घर गये। इतना विनयी, सदालापी, परदुःखकातर भद्र व्यक्ति संसार में दुर्लभ है। किन्तु वृद्ध हो जाने से स्मृतिशक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि उसे किसी भी तरह याद नहीं आया, यहाँ तक कि जिले का नाम तक भी नहीं। बड़ी चेष्टा के बाद एक टाइम टेबुल जुटा लाया और उत्तर तथा पूर्वी बंगाल के सभी रेलवे स्टेशनों के नाम एक-एक करके पढ़ गया। किन्तु स्टेशन का प्रथम अक्षर तक भी वह स्मरण न कर सका। दुःख प्रकट करके बोला, "लोग न मालूम कितनी चीज़ें और रुपया पैसा उधार ले जाते हैं बेटा, याद नहीं रख सकता और वसूल भी नहीं हो पाता। मन ही मन कहता हूं कि सिरपर भगवान हैं वे ही इसका विचार करेंगे।"

नवीन अब अधिक बर्दाश्त न कर सका, गरज उठा, "हाँ, वे ही तुम्हारा विचार करेंगे न करेंगे तो मैं करूँगा।"

चक्रवर्ती ने स्नेहार्द्र मधुर कण्ठ से कहा, "नवीन, झूटमूठ क्यों नाराज होते हो भैया. तीन पन तो बीत गये, एक पन बाकी है, यदि पता बतला सकता तो क्या इतना भी नहीं करता? गौहर क्या मेरे लिए पराया है? वह तो मेरे लड़के की तरह है रे!"

नवीन ने कहा, "यह सब मैं नहीं जानता, तुमको अन्तिम बार के लिए कह रहा हूं कि बाबू के पास मुझे ले चलना है तो चलो, नहीं तो जिस दिन उनकी बुरी खबर मिलेगी, उस दिन तुम रहोगे या मैं ही रहूंगा।"

चक्रवर्ती ने प्रत्युत्तर में ललाट पर हाथ से चोट लगाकर केवल कहा, "भाग्य! नवीन, भाग्य! नहीं तो क्या तुम मुझसे ऐसी बात कहते।"

अतएव फिर हम दोनों लौट आये। मकान के बाहर खड़े होकर मैंने आशा की कि अनुतप्त चक्रवर्ती शायद फिर मुझे बुला ले। किन्तु कोई आहट नहीं मिली।

दरवाजे की आड़ से झांककर देखा कि चक्रवर्ती जली हुई चिलम को फेंककर चित्त एकाग्र करके तम्बाकू चढ़ा रहा है।

गौहर का समाचार पाने का उपाय सोचते सोचते ही मैं अखाड़े में आ पहुँचा, तब प्रायः तीन बज चुके थे। ठाकुरघर के बरामदे में औरतों की भीड़ जमा हो गई थी। बाबा जी लोगों में से कोई भी उपस्थित नहीं था, सम्भवतः बहुत ज्यादा प्रसाद सेवन कर लेने के परिश्रम से निर्जीव होकर कहीं विश्राम कर रहे थे। रात के समय एक बार फिर प्रसाद से लड़ना पड़ेगा. उसके लिए भी बलसंचय करना जरूरी है।

झाँककर देखा कि भीड़ के बीच एक हस्तरेखा का विचार करने वाला पण्डित वैठा हुआ है, पंचांग, पोथी, खड़िया, स्लेट, पेन्सिल आदि गणना के सभी उपकरण उसके पास हैं। मेरे ऊपर सबसे पहले पद्मा की ही नजर पड़ी, वह चिल्ला उठी, "नये गोसाईं आ गये!"

कमललता ने कहा, "उसी समय जान गई कि गौहर गोसाईं तुम्हें यों ही नहीं छोड़ देंगे, उन्होंने क्या खिलाया?"

राजलक्ष्मी ने उसका मुँह दबा दिया,—"रहने दो दीदी, यह मत पूछो।"

कमललता ने उसका हाथ हटाकर कहा, "धूप में मुँह सूख गया है, समूचे मुँह तक की धूलि-बालू सिर पर जमा हो गई है—नहाना धोना हो चुका है तो?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तेल तो छूते ही नहीं, हो चुकने पर भी तो पता नहीं चल सकता दीदी।"

"नवीन ने अवश्य ही सब तरह की चेष्टा की है। किन्तु मैंने स्वीकार नहीं किया, बिना नहाये खाये ही लौट आया हूँ।"

राजलक्ष्मी ने बहुत ही आनन्दित होकर कहा, "ज्योतिषी ने मेरा हाथ देखकर बताया है कि मैं राजरानी होऊँगी।"

"क्या दिया?"

पद्मा ने कह दिया, "पाँच रुपया। राजलक्ष्मी दीदी के आंचल में बँधे थे।"

मैंने हँसकर कहा, "मुझे देती तो मैं उससे भी अच्छा बता सकता।"

ज्योतिषी उड़िया ब्राह्मण है, बहुत अच्छा बंगला बोल सकता है—बंगाली कहा जा सकता है। उसने भी हँसकर कहा, "नहीं महाशय, रुपये के लिए नहीं,

रुपया तो मैं बहुत कमाता हूँ। सचमुच ही ऐसा अच्छा हाथ मैंने दूसरा नहीं देखा है। देखिएगा, मेरा हाथ देखना कभी झूठ न होगा।"

मैंने कहा, "महाराज, बिना हाथ देखे कुछ बता सकते हो ?"

उसने कहा, "सकता हूं। एक फूल का नाम लीजिए।

मैंने कहा, "सेमर का फूल।"

ज्योतिषी ने हँसकर कहा, "सेमर का फूल ही सही। इसी से मैं बता दूंगा कि आप क्या चाहते हैं।" यह कहकर उसने खड़िया से दो मिनट तक हिसाब लगा कर कहा, "आप एक खबर जानना चाहते हैं ?"

"कैसी खबर ?"

वह मेरी ओर देखकर कहने लगा, "नहीं, मामला-मुकदमा नहीं है, आप किसी आदमी की खबर जानना चाहते हैं ?"

"वह खबर क्या है, बता सकते हो महाराज ?"

"सकता हूँ। खबर अच्छी है। दो एक दिन में मालूम कर सकेंगे।"

सुनकर मन ही मन मैं जरा विस्मित हुआ और मेरा मुँह देखकर सबने ही यह अनुमान किया।

राजलक्ष्मी ने खुश होकर कहा "देखा तो ? मैं कहती हूँ कि ये बहुत अच्छी गणना करते हैं, किन्तु तुम लोग किसी बात पर भी विश्वास नहीं करना चाहते, हँसकर उड़ा देते हो।

कमललता ने कहा, "अविश्वास किस बात का ? नये गोसाईं, भाई, अपना हाथ एक बार महाराजको दिखा दो तो ?"

मैंने हाथ पसार दिया तो तुरत ही ज्योतिषी ने उसे अपने हाथ में लेकर दो तीन मिनट तक पर्यवेक्षण किया, हिसाब लगाया, इसके बाद बोला, "महाशय, आपके लिए तो मैं जीवन की बड़ी विपत्ति की रेखा देख रहा हूं।"

"जीवन रेखा की विपत्ति ? कब ?"

"बहुत ही शीघ्र। मरने जीने की हालत है।"

ताककर देखा कि राजलक्ष्मी के मुँह पर रक्त नहीं है, डर से वहाँ सफेदी छा गई है।

मेरा हाथ छोड़ कर ज्योतिषी ने राजलक्ष्मी से कहा 'बेटी, तुम्हारा हाथ एक बार और—"

"नहीं, मेरा हाथ देखना न होगा—देखा जा चुका।"

उसका तीव्र भावान्तर अत्यन्त स्पष्ट था। चतुर ज्योतिषी तुरत ही समझ गया कि हिसाब लगाने में उसकी गलती नहीं हुई है, बोला, "मैं तो दर्पण मात्र हूँ बेटी, जो छाया पड़ेगी, वही मेरे मुँह से निकलेगी,—किन्तु रुष्ट ग्रहको भी शान्त किया जा सकता है, उसके लिए अनुष्ठान की क्रिया है, मामूली दस-बीस रुपये खर्च की बात है।"

"तुम हमारे कलकत्ते के मकान पर आ सकते हो?"

"क्यों नहीं आ सकता बेटी, ले चलने पर चल सकता हूँ।"

"अच्छा।"

मैंने देखा कि ग्रह के कोप के बारे में उसका पूरा विश्वास है. किन्तु उसको प्रसन्न करने के सम्बन्ध में यथेष्ट सन्देह है।

कमललता ने कहा, "चलो गोसाईं, तुम्हारे लिए चाय तैयार कर दूं. चाय पीने का समय हो गया।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मैं तैयार करके ला रही हूँ बहिन, तुम उनके लिए बैठने की जगह जरा ठीक कर दो। रतन से कह दो कि तम्बाकू चढ़ाकर दे जाय। कल से तो उसकी परछाहीं तक नहीं दिखाई पड़ती।"

और सभी ज्योतिषी को लेकर हल्ला-गुल्ला करने लगीं, हम लोग चले आये।

दक्षिण के खुले बरामदे में मेरी रस्सी की खाट है. रतन ने उसे झाड़-पोंछकर साफ कर दिया। तम्बाकू दे गया, हाथ मुँह धोने के लिए पानी दे गया,—कल सबेरे से ही बेचारे को काम करने से फुरसत नहीं मिली है, फिर भी मालकिन कहती हैं कि उसकी परछाहीं तक नहीं दिखाई पड़ती। जीवन का संकट आसन्न है, किन्तु रतन से पूछने पर अवश्य ही वह यही कहता कि, 'जी नहीं', संकट योग आपका नहीं, मेरा है।'

कमललता नीचे बरामदे में बैठकर गौहर का समाचार पूछ रही थी, राजलक्ष्मी चाय लेकर आई, चेहरा बहुत भारी है। सामने के स्टूलपर कटोरी रखकर बोली, "देखो, तुमसे सैकड़ों बार कह चुका कि वनजंगलों में घूमा मत करो, आफत आते

कितनी देर लगती है ? गले में आँचल डालकर तुमसे निवेदन करती हूं कि मेरी बात मान लो ।"

इतने समय तक चाय बनाते हुए राजलक्ष्मी ने शायद यही समझ कर स्थिर किया था । बहुत शीघ्र का अर्थ और क्या हो सकता है ?"

कमललता ने आश्चर्य में पड़कर कहा. "बन जंगल में गोसाईं कब गये थे ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "कब गये, यह क्या मैं देखा करती हूँ दीदी, मुझे क्या दुनिया में और कोई काम नहीं है।"

मैंने कहा, "उसने नहीं देखा है, उसका अनुमान है। ज्योतिषी बेटा अच्छी विपत्ति में डाल गया।"

सुनकर रतन दूसरी तरफ मुँह फेरकर चला गया।

इन सब प्रश्नों का उत्तर देना व्यर्थ है। ककललता ने भी राजलक्ष्मी को पहिचान लिया है, वह भी चुप रही।

चाय की कटोरी अपने हाथ में लेते ही राजलक्ष्मी ने कहा, "दो चार फल और कुछ मिठाई ले आऊँ ?'

मैंने कहा, "नहीं।"

"नहीं क्यों ? नहीं छोड़कर हाँ बोलने की बुद्धि क्या भगवान ने तुमको नहीं दी ?" किन्तु मेरे मुंह की तरफ देखकर एकाएक अत्यन्त उद्विग्न कण्ठ से उसने पूछा, "तुम्हारी दोनों आँखें इतनी लाल क्यों दिखाई पड़ रही हैं। नदी के सड़े पानी में तो नहाकर नहीं आये हो ?"

"नहीं, आज तो नहाया ही नहीं।"

"वहाँ क्या खाया ?"

"कुछ भी नहीं खाया, इच्छा भी नहीं हुई।"

न मालूम क्या सोचकर मेरे पास आकर उसने मेरे कपाल पर हाथ रखा, इसके बाद कुर्ते के भीतर मेरी छाती पर वही हाथ ले जाकर वह बोली, ' जो सोचा था ठीक वही है। कमल दीदी, देखो तो इनका शरीर,—क्या कुछ गरम नहीं मालूम पड़ रहा है ?"

कमललता घबड़ाकर उठकर नहीं आई, बोली, "जरासा गरम हो गया होगा तो क्या हुआ, डर क्या है राजू ?"

वह नामकरण में अत्यन्त पटु है। यह नया नाम मेरे कानों तक भी पहुँचा
राजलक्ष्मी ने कहा, "इसका अर्थ है कि ज्वर आ गया है दीदी।"

कमललता ने कहा, "यदि ऐसा ही हुआ हो तो तुम लोग पानी में तो नहीं आ गई हो ? आई हो हमारे पास, हम लोग ही इसकी व्यवस्था करेंगे बहिन, तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं।"

अपनी इस असंगत व्याकुलता में दूसरे के अविचलित शान्त कण्ठ ने राजलक्ष्मी को प्रकृतिस्थ कर दिया। लज्जित होकर उसने कहा, "अच्छी बात कहती हो दीदी, किन्तु एक तरफ तो यहाँ डाक्टर वैद्य नहीं हैं, इसपर भी यह बार बार देखती आई हूं कि इनको कभी कुछ हो जाता है तो सहज में अच्छा भी नहीं होता, बहुत भोगना पड़ता है, फिर जलमुहाँ ज्योतिषी न मालूम कहाँ से आकर भय दिखा गया।"

"दिखा जाने दो।"

"नहीं बहिन, मैंने देखा है कि इन लोगों की अच्छी बातें तो नहीं फलतीं; किन्तु खराब बातें ठीक निकलती हैं।"

कमललता ने स्मितहास्य से कहा, "डरने को कोई बात नहीं है राजू, इस क्षेत्र में यह बात लागू न होगी। सबेरे से ही गोसाईं जी धूप में घूमते रहे हैं, इस पर भी ठीक समय पर स्नान-भोजन नहीं हुआ, शायद इसीलिए शरीर कुछ गरम हो गया है, कल सबेरे तक नहीं रहेगा।"

लालू की माँ ने आकर कहा, "माँ, रसोई घर में रसोइया ब्राह्मण तुमको बुला रहा है।"

"जाती हूं," कहकर वह कमललता के प्रति कृतज्ञ दृष्टिपात करके चली गई।

मेरे रोग के सम्बन्ध में कमललता की ही बात ठीक निकली। ज्वर ठीक सबेरे हो तो नहीं गया, किन्तु दो एक दिनों में ही मैं स्वस्थ हो गया। किन्तु इस घटना से हम लोगों के भीतर की बातों का पता कमललता को लग गया, और शायद एक व्यक्ति को भी पता लग गया, वे हैं स्वयं हमारे बड़े गोसाईं जी।

जाने के दिन कमललता ने हम लोगों को आड़ में बुला कर पूछा, "गोसाईं, तुम लोगों को अपने ब्याह का वर्ष याद है ?" निकट ही देखा कि एक थाली में ठाकुर जी का प्रसाद, चन्दन और फूल की माला पड़ी है।

प्रश्न का जवाब दिया राजलक्ष्मी ने. बोली, "इनको क्या खाक मालूम है, मैं जानती हूँ।"

कमललता ने हँसते हुए कहा, "यह कैसी बात है कि एक को तो याद है, पर दूसरे को नहीं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "बहुत ही छोटी उम्र की बात है न, इसी लिए। इनको उस समय तक भी पूरा ज्ञान नहीं हुआ था।"

"किन्तु उम्र में तो वे ही बड़े हैं रे राजू?"

"उः, बहुत बड़े हैं! केवल पाँच छः वर्ष ही तो। मेरी अवस्था तब आठ नौ वर्ष की थी, एक दिन गले में माला पहिना कर मैंने मन ही मन कहा, "आज से तुम हो गये मेरे दुलहा! दुलहा! दुलहा!" कहकर मुझे इशारे से दिखाकर कहा, 'किन्तु यह राक्षस उसी क्षण खड़े-खड़े मेरी माला खा गया।'

कमललता ने आश्चर्य में पड़कर पूछा, "फूलों की माला किस तरह खा गये?"

मैंने कहा, "फूलों की माला नहीं थी, पके हुए करोंदों की माला रही, उसे तो जिसको ही दोगी, वही खा जायगा।"

कमललता हँसने लगी। राजलक्ष्मी ने कहा, "किन्तु उसी समय से मेरी दुर्गति शुरू हो गई। इनको मैंने खो दिया। इसके बाद की बातें मत जानना चाहो दीदी,—किन्तु लोग जो सोचते हैं वह बात भी नहीं है दीदी, वे तो न मालूम क्या क्या सोचते रहते हैं। इसके बाद बहुत दिनों तक रोती पीटती, घूमती रही और खोज करती रही। तब एक दिन देवता की दया हुई, जिस तरह खुद ही देकर अचानक एक दिन छीन लिया था, उसी तरह एकाएक उन्होंने एक दिन हाथों हाथ लौटा भी दिया," यह कहकर उसने देवता के उद्देश्य से उनको प्रणाम किया।

कमललता ने कहा "उन्हीं देवता की माला चन्दन के साथ बड़े गोसाईं जी ने भेज दी है, आज लौट जाने के दिन तुम दोनों एक दूसरे को पहना दो।"

राजलक्ष्मी ने हाथ जोड़कर कहा, "इनकी इच्छा इनको ही मालूम है, किन्तु मुझे यह आदेश मत दो। बचपन की मेरी वह माला आज भी आँखें बन्द कर लेने पर इनके किशोर गले में झूलती हुई दिखाई पड़ती है। देवता की दी हुई मेरी वही माला चिरकाल तक बनी रहे दीदी।"

मैंने कहा, "किन्तु वह माला तो मैंने खा डाली थी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, 'हाँ जी, राक्षस,—इस बार मुझे भी समूचा खा जाओ।" यह कहकर उसने हँसते हुए चन्दन की कटोरी में अपनी सभी अँगुलियाँ डुबोकर मेरे ललाट पर छाप लगा दी।

हम सभी द्वारिकादास के कमरे में उनसे मुलाकात करने के लिए गये। वे कोई ग्रन्थ पाठ करने में लगे हुए थे आदर करते हुए बोले, "आओ भाई, बैठो।"

राजलक्ष्मी ने नीचे फर्शपर बैठकर कहा, "बैठने का तो समय नहीं रहा गोसाईं बहुत उपद्रव किया है, इस लिए जाने के पहले नमस्कार करने और क्षमा माँगने के लिए आई हूं।"

गोसाईं ने कहा 'हमलोग वैरागी आदमी हैं, भिक्षा ले सकते हैं, दे नहीं सकते. किन्तु फिर कब उपद्रव करने के लिए आओगी बता दो तो दीदी? आश्रम तो अब अन्धेरा हो जायगा।"

कमललता ने कहा, 'सच है गोसाईं. सचमुच ही मालूम होगा कि शायद आज कहीं भी बत्ती नहीं जलाई गई है, सब अन्धकार पूर्ण हो गया है।"

बड़े गोसाईं ने कहा, "गान. आनन्द और हासपरिहास और कौतुक से इन कई दिनों से ऐसा मालूम हो रहा था मानो हमारे चारो तरफ बिजली की बत्तियाँ जल रही हैं, ऐसा और कभी नहीं देखा।"

मुझसे कहा, "कमललता ने तुम्हारा नाम रखा है नये गोसाईं और मैंने आज उनका नाम रख दिया आनन्दमयी—।"

इस बार उनके उच्छ्वास में मुझे बाधा देनी पड़ी। कहा, "बड़े गोसाईं. बिजली का प्रकाश ही हम लोगों की आँखों ने देखा है, किन्तु जिनके कर्णरन्ध्रों में उसकी कड़कड़ ध्वनि दिनरात पहुँचती रहती है, उनसे तो जरा पूछो। आनन्दमयी के सम्बन्ध में कम से कम रतन का मतामत—"

रतन पीछे खड़ा था, भाग गया।

राजलक्ष्मी ने कहा, "इन लोगों की बातें तुम मत सुनो गोसाईं, ये लोग मुझसे दिनरात ईर्ष्या करते हैं।" मेरी तरफ देखकर कहा, 'इस बार जब आऊँगी तो इस रोगग्रस्त अरसिक आदमी को कमरे में ताला लगाकर बन्द कर आऊँगी, इसकी ज्वाला से मुझे कहीं भी आराम नहीं मिलता!"

बड़े गोसाईं ने कहा, "नहीं सकोगी आनन्दमयी, नहीं सकोगी, छोड़कर नहीं आ सकोगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "अवश्य ही सकूँगी। कभी कभी मुझे ऐसी इच्छा होती है गोसाईं कि, मैं शीघ्र मर जाऊँ।"

बड़े गोसाईं बोले, "यह इच्छा तो वृन्दाबन में एक दिन उनके भीमुँह से प्रकट हुई थी बहिन, किन्तु पूरी न कर सके। हाँ, आनन्दमयी, तुम्हें क्या वह बात याद नहीं है?—सखी, किसको दे जाऊँ भला, कन्हैयालाल की सेवा का हालवे क्या जानें—"

कहते कहते वे मानो अन्यमनस्क हो गये। बोले, "सत्य प्रेम की कितनी बातें हमलोग जानते हैं? केवल छलना में अपने को भुलाये ही तो रहते हैं! किन्तु तुम जान सकी हो बहिन। इसी लिए कहता हूँ कि जिस दिन तुम यह प्रेम श्रीकृष्ण को अर्पण कर दोगी आनन्दमयी—।"

सुनकर राजलक्ष्मी मानो सिहर उठी, घबड़ाकर उनको बीच ही में रोककर बोली, "ऐसा आशीर्वाद मत दो गोसाईं। मेरे भाग्य में ऐसा न घटे। वरन् यह आशीर्वाद दो कि इसी तरह हँसते खेलते इनको सामने रखकर एक दिन मर सकूँ।"

कमललता ने बात सँभालते हुए कहा, "बड़े गोसाईं, तुम्हारे प्रेम की ही बात कह रहे हैं और कुछ नहीं।"

मैंने तो समझ लिया कि अन्य भावों के भावुक द्वारिकादासजी हैं, उनकी विचारधारा सहसा एक और पथ पर चली गई थी, और कुछ नहीं।

राजलक्ष्मी ने सूखे मुँह से कहा, "एक तो यह शरीर फिर एक न एक रोग लगा ही रहता है, एकांगी विचारवाले आदमी हैं, किसी की बात सुनना नहीं चाहते मैं दिनरात कितने भय में पड़ी रहती हूँ दीदी, कि किसको अपनी वह हालत बताऊँ?"

इस बार मैं मन ही मन उद्विग्न हो उठा। जाते समय बातों ही बातों में कहाँ का पानी कहाँ जाकर खड़ा हो जायगा इसका ठिकाना नहीं है। मैं जानता हूं कि मुझे अवहेलना के साथ बिदा करने की जो मर्मान्तक आत्मग्लानि लेकर इस बार राजलक्ष्मी काशी से आई है, सब प्रकार के हास्य परिहास के अन्तराल में भी न मालूम किस तरह के अनजान कठिन दण्ड की जो आशंका उसके मनमें है वह किसी तरह भी नहीं निकल रही है। उसीको शान्त करने के अभिप्राय से मैं हँसकर बोला, "लोगों के सामने तुम मेरे दुबले पतले शरीर की जितनी ही निन्दा क्यों न

करो लक्ष्मी, इस शरीर का विनाश नहीं है। तुम्हारे पहले मरे बिना, मैं मरूँगा नहीं, यह निश्चित है।''

उसने बात खतम भी न करने दी, झट से मेरा हाथ पकड़ कर कहा, "तब मुझे छूकर इन सबके सामने तीन बार शपथ ले लो, कहो कि यह बात कभी झूठी न होगी!'' कहते कहते ही उमड़े हुए आँसू उसकी दोनों आँखों से बह चले।

सभी अवाक् हो रहे। तब लज्जा से उसने मेरा हाथ छोड़कर जोरों से हँसकर कहा, ''उस जलमुँहे ज्योतिषी ने झूठमूठ ही मुझे इतना डरा दिया है कि—''

यह बात भी वह खतम न कर सकी, और मुँह की हँसी तथा लज्जाकी बाधा रहते भी उसकी आँखों का जल उसके गालों पर लुढ़क पड़ा।

एक बार फिर एक एक करके सबसे बिदाई ली गई। बड़े गोसाईं ने वचन दिया कि इस बार कलकत्ता जाने पर वे हमारे यहाँ भी पदार्पण करेंगे और पद्मा ने कभी शहर नहीं देखा है, वह भी साथ ही साथ आयगी।

स्टेशन पर पहुँचते ही सबसे पहले वही जलमुँहा ज्योतिषी दिखाई पड़ा। प्लेट फार्म पर कम्बल बिछाकर बड़े ठाटबाट से बैठा हुआ है, आसपास काफी आदमी भी जमा हो गये हैं।

मैंने पूछा, ''यह भी साथ चलेगा क्या?''

राजलक्ष्मी ने दूसरी ओर देखकर अपनी सलज्ज हँसी छिपा ली, किन्तु सिर हिलाकर बताया कि वह भी साथ चलेगा।

मैंने कहा, ''नहीं, वह नहीं जायगा।''

''किन्तु भलाई नहीं तो बुराई भी तो कुछ नहीं होगी, साथ चलने दो न?''

मैंने कहा, ''नहीं। भलाई बुराई जो कुछ भी हो, वह साथ नहीं चलेगा। उसे जो कुछ देना हो, देकर यहीं से बिदा कर दो, यदि उसमें ग्रह शान्त करने की शक्ति और साधुता हो तो वह तुम्हारी आँखों की ओट में ही करे।''

''तो यही कह देती हूं,'' कहकर उसने उसे बुलाने के लिए रतनको भेजा। उसे क्या दिया, यह मैं नहीं जानता, किन्तु अनेक बार सिर हिलाकर और अनेक आशीर्वाद देकर हँसते हुए ही उसने बिदा ली।

शीघ्र ही ट्रेन आकर हाजिर हुई, हमलेग भी कलकत्ते की ओर चल पड़े।

———

राजलक्ष्मी के प्रश्न के उत्तर में मुझे रुपया मिलने का अपना वृत्तान्त सुनाना पड़ा। "हम लोगों के बर्मा दफ्तर के एक ऊँचे दर्जे के साहब ने घुड़दौड़ के खेल में अपना सर्वस्व खोकर मेरे जमा किये गये रुपये उधार ले लिये थे। उन्होंने खुद ही यह शर्त की थी कि, केवल सूद ही नहीं, वरन् यदि अच्छे दिन कभी आ गये तो मुनाफे का भी आधा देंगे। इस बार कलकत्ता से लौटकर रुपये माँगने पर उन्होंने कर्ज का चौगुना रुपया लौटा दिया। यही मेरी पूँजी है।"

"वह कितनी है ?"

"सात आठ हजार।"

"यह मुझे देनी पड़ेगी।"

"डर से कहा, "यह कैसी बात है ! लक्ष्मी ता दान ही करती हैं वे हाथ भी फैलाती हैं क्या ?"

राजलक्ष्मी ने हँसते हुए कहा, "लक्ष्मी अपव्यय सहन नहीं करतीं। वे संन्यासी फकीरों का विश्वास नहीं करतीं, उनको अयोग्य समझती हैं ! लाओ रुपये।'

"क्या करोगी ?"

"अपने खाने कपड़े की व्यवस्था करूँगी। अब से यही होगा मेरे जीवित रहने का मूल धन।"

'किन्तु इतने ही मूलधन से काम कैसे चलेगा ? तुम्हारे झुण्ड के झुण्ड नौकर नौकरानियों के पन्द्रह दिनों के वेतन भी इससे पूरे न होंगे। इसके अतिरिक्त गुरु पुरोहित हैं, तैंतीस करोड़ देवता हैं, बहुत सी बिधवाओं का भरण-पोषण है, उनका क्या उपाय होगा ?"

उनके लिए चिन्ता नहीं है, उनका मुँह बन्द होगा। मैं अपने ही भरण-पोषण की बात ही सोच रही हूं। समझे ?"

मैंने कहा, "समझ गया। अब से किसी एक छलना में अपने को भुलाये रखना चाहती हो, यही न ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नहीं, सो नहीं। वह सब रुपया दूसरे कामों के लिए रहेगा। किन्तु तुम्हारे सामने हाथ पसार कर जो कुछ लूँगी, अब से वही मेरे

भविष्य की पूँजी होगी। उसीसे अँटने पर खाऊँगी, नहीं तो उपवास करूँगी।"

"तो तुम्हारे भाग्य में यही लिखा है!"

"क्या लिखा है—उपवास?" यह कहकर उसने हँसकर कहा, "तुम सोच रहे हो कि मामूली पूँजी है, किन्तु मामूली को ही किस तरह बढ़ाकर बड़ी पूँजी बनाई जाती है वह विद्या मैं जानती हूँ। एक दिन समझोगे कि मेरे धन के बारे में तुम लोग जो सन्देह करते हो, वह सच नहीं है।"

"यह बात तुमने इतने दिनों से क्यों नहीं कही?"

"इस लिए नहीं कही कि तुम विश्वास नहीं करोगे। मेरा रुपया तुम घृणा-वश छूते नहीं हो, किन्तु तुम्हारी वितृष्णा से मेरी छाती फटी जाती है।"

व्यथित होकर कहा, "अचानक ये सब बातें आज क्यों कह रही हो लक्ष्मी?"

क्षण भर तक मेरे मुँह की तरफ देखकर राजलक्ष्मी ने कहा "यह बात एका-एक आज तुमको खटकेगी किन्तु मेरी तो दिनरात की भावना यही है! तुम क्या सोचते हो कि अधर्मपथ की कमाई से मैं देवीदेवताओं की सेवा करती हूं? उस धन का एक कण भी यदि तुम्हारी चिकित्सा में खर्च करती तो क्या तुम्हें मैं बचा सकती। भगवान् मेरे पास से तुम्हें छीन लेते। इसको सत्य समझ कर तुम कहाँ विश्वास करते हो कि मैं तुम्हारी ही हूं।"

"विश्वास तो करता हूँ।"

"नहीं, नहीं करते।"

उसके प्रतिवाद का तात्पर्य नहीं समझा। वह कहने लगी, "कमललता से तुम्हारा दो दिनों का परिचय है तो भी उसकी सारी कहानी तुमने मन लगा कर सुनी, तुम्हारे निकट उसकी सभी बाधाएँ मिट गईं वह मुक्त हो गई, किन्तु मुझसे कभी एक बात भी नहीं पूछी, कभी नहीं कहा, लक्ष्मी, अपने जीवन की सारी घट-नाएँ खोलकर मुझसे कह दो। क्यों नहीं पूछी? तुम विश्वास नहीं करते मेरे प्रति, और तुम विश्वास नहीं कर सकते हो अपने ऊपर!"

"मैंने कहा, "उससे भी नहीं पूछा, जानना भी नहीं चाहा। उसने खुद ही जबर्दस्ती सुनाई है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तो भी तो सुनी ही है। वह पराई है उसका हाल नहीं सुनना चाहते थे, क्योंकि जरूरत नहीं थी। किन्तु मुझसे भी क्या यही कहोगे?"

"नहीं, यह नहीं कहूँगा। किन्तु तुम क्या कमललता की ही चेली हो, उसने जो कुछ किया, तुम्हें भी वही करना होगा ?"

"इन बातों से मैं भूलूँगी नहीं। तुम्हें मेरी सभी बातें सुननी पड़ेंगी।"

"यह तो बड़ी मुश्किल है. मैं सुनना नहीं चाहता, तो भी सुननी ही पड़ेंगी ?"

"हाँ, सुननी पड़ेंगी। तुम्हारा खयाल है कि सुनने पर शायद मुझे और प्यार न कर सकोगे, शायद मुझे बिदा देनी पड़ेगी।"

"तब तुम्हारे विचार के अनुसार यह क्या तुच्छ बात है ?"

राजलक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, "नहीं, यह नहीं होगा तुम्हें सुनना ही पड़ेगा। तुम पुरुष हो तुम्हारे मन में क्या इतना भी बल नहीं है कि उचित मालूम होने पर मुझे दूर कर सको ?"

इस अक्षमता को अत्यन्त स्पष्टता के साथ कबूल करते हुए कहा, "तुम जिन जोरदार पुरुषों का उल्लेख करके मुझे अपमानित कर रही हो लक्ष्मी, वे वीर पुरुष हैं, नमस्कार करने के योग्य हैं। उनकी पदधूलि की योग्यता भी मुझमें नहीं है। तुमको बिदा देकर मैं एक दिन भी नहीं रह सकूँगा, शायद उसी समय लौटा लाने के लिए दौड़ पड़ूँगा, और यदि तुमने 'नहीं' कह दिया तो मेरी दुर्गति की सीमा न रहेगी। अतएव इन सब भयावह विषय की आलोचना बन्द करो।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुम जानते हो, बचपन में मां ने मुझे एक मैथिल राज-कुमार के हाथ बेच दिया था ?"

"हाँ, और एक राजकुमार के मुँह से ही यह खबर बहुत दिनों के बाद सुनी थी। वह मेरा मित्र था।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "हाँ, वह तुम्हारे मित्र का ही मित्र था। एक दिन क्रोध करके मैंने माँ को बिदा कर दिया और उन्होंने घर लौट कर मेरी मृत्यु की अफवाह फैला दी। यह खबर तो सुनी थी।"

"हाँ, सुनी थी।"

"सुनकर तुमने क्या सोचा था ?"

"सोचा था, "आह ! बेचारी लक्ष्मी मर गई !"

"यही ? और कुछ नहीं ?"

"और यह भी सोचा था कि काशी में मरने से चाहे और कुछ न भी हो; सद्गति तो हो गई। आह!"

राजलक्ष्मी ने रुष्ट होकर कहा, "रहने दो, झूठी आह करके दुःख प्रकट करने की जरूरत नहीं। मैं कसम खाकर कह सकती हूं कि तुमने एक बार भी 'आह' नहीं की थी। कहो भला मुझे छूकर कहो तो?"

मैंने कहा, 'इतने दिन पहले की बात क्या ठीक-ठीक याद रहती है? आह की थी, यही तो याद आ रही है।'

राजलक्ष्मी ने कहा, "रहने दो; कष्ट करके इतनी पुरानी बातें याद करने की जरूरत नहीं, मैं सब जानती हूं।" यह कहकर वह थोड़ी देर तक रुकी रह कर बोली, "और मैं? रो रो कर प्रतिदिन विश्वनाथजी से कहती थी., "भगवन् मेरे भाग्य में तुमने यह क्या कर दिया। तुमको साक्षी बनाकर जिसके गले में माला डाली थी क्या इस जीवन में उससे फिर मुलाकात न होगी? इसी तरह अपवित्रता में ही क्या चिरकाल बिताना पड़ेगा? उन दिनों की बातें याद आते ही आज भी मुझे आत्महत्या करके मर जाने की इच्छा होती है।"

उसके चेहरे की ओर देखकर क्लेश बोध हुआ, किन्तु यह समझ कर कि मेरा निषेध न मानेगी, मैं चुप हो रहा।

इन बातों पर उसने मन ही मन कितने दिनों तक, कितने प्रकार से उलट पलट कर सोच विचार किया है, उसके अपराध भाराकान्त मन ने कितनी मर्मान्तक वेदना सहन की है, फिर भी इस डर से कि पीछे कहीं कुछ करते जाकर कुछ न हो जाय, कुछ प्रकट करने का साहस नहीं किया है। इतने दिनों के बाद अब वह कमललता से यह शक्ति अर्जन कर आई है। अपना प्रच्छन्न कलुष अनावृत करके वैष्णवी ने मुक्ति पा ली है, राजलक्ष्मी भी आज भय और झूठी मर्यादा की जंजीरों को तोड़कर, उसी की तरह सहज होकर खड़ी होना चाहती है, उसके भाग्य में जो कुछ भी क्यों न हो यह विद्या उसको कमललता ने दी है। संसार में एक मात्र इस व्यक्ति के सामने भी इस दर्पिता नारी ने सिर झुकाकर अपने दुःख के समाधान की भिक्षा मांगी है, यह बात बिना किसी संशय के समझकर मुझे अपने मन में एक तरह की भारी तृप्ति मालूम हुई।

कुछ देर तक दोनों ही चुप रहे। राजलक्ष्मी सहसा बोल उठी, "राजपुत्र एका-एक मर गया किन्तु मां ने मुझे फिर बेचने का षडयन्त्र रचा—"

"इस बार किसके हाथ ?"

एक दूसरे राजकुमार के तुम्हारे उन्हीं मित्र रत्न के साथ, जिनके साथ शिकार करने के लिए जाकर—क्या हुआ याद नहीं है ?"

मैंने कहा, "शायद नहीं है। बहुत पुरानी बात है न। किन्तु इसके बाद ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह षडयन्त्र चला नहीं। मैंने कह दिया, 'माँ, तुम घर जाओ।' मां ने कहा, 'हजार रुपये जो ले चुकी हूँ।' मैंने कहा, 'वह रुपया लेकर तुम गांव पर चली जाओ। दलाली का रुपया जैसे होगा, मैं चुका दूंगी। आज रात की गाड़ी से ही यदि तुम बिदा न होगी माँ, तो कल सबेरे ही मैं अपने को बेचकर गंगा माता के पानी में डुबा दूंगी। मां मुझे तो तुम जानती हो, मैं तुमको झूठा डर नहीं दिखा रही हूँ।' माँ बिदा हो गई। उनके ही मुँह से मेरी मृत्यु का समाचार सुनकर, तुमने दुःख प्रकट करते हुए कहा था, आह! बेचारी मर गई ?"

यह कह कर वह खुद ही जरा हँस पड़ी, बोली, "सच होने पर तुम्हारे मुँह से निकली हुई यह 'आह' ही मेरे लिए बहुत थी। किन्तु इस बार सचमुच ही जिस-दिन मरुँगी, उस दिन दो बूँद आसू जरूर गिराना। कहना कि संसार में अनेक वर-वधुओं ने अनेक मालाएँ बदली हैं, उनके प्रेम से संसार पवित्र, परिपूर्ण हो रहा है, किन्तु तुम्हारी कुलटा राजलक्ष्मी ने अपने नौ वर्ष की उम्र में उस किशोर वरको एक मन से जितना प्यार किया है, इस संसार में उतना प्यार कभी किसी ने किसी को नहीं किया। मेरे कानों में उस समय ये बातें कहोगे बताओ तो ? मैं मरकर भी सुन सकूँगी।"

"यह क्या तुम रो रही हो ?"

उसने आखों का जल आंचल से पोंछकर कहा, "तुम क्या सोचते हो कि इस निरुपाय बच्ची पर उसके आत्मीय स्वजनों ने जितना अत्याचार किया है, उसे क्या अन्तर्यामी भगवान नहीं देख सके ? इसका विचार वे नहीं करेंगे ? आँखें बन्द किये रहेंगे ?"

मैंने कहा, "आंखें बन्द करना उचित नहीं है, यही मेरा खयाल है, किन्तु

उनकी बातें तुम लोग ही अधिक जानती हो, मेरे जैसे पाखण्डी का परामर्श वे कभी नहीं लेते।"

राजलक्ष्मी ने कहा, 'केवल मजाक?" किन्तु दूसरे ही क्षण गम्भीर होकर कहा। "अच्छा, लोग कहते हैं कि स्त्रीपुरुष का धर्म एक न होने से काम नहीं चलता, किन्तु धर्म कर्म में तो तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध साँप और नेवले का सा है। फिर भी हम लोगों का कैसे चलता है?"

"चलता है साँप नेवले की ही तरह। इस जमाने में प्राण से मार डालने में बखेड़ा बढ़ता है इस कारण एक व्यक्ति दूसरे को जान से नहीं मारता, मोह छोड़ कर बिदा कर देता है तब जब कि यह आशंका होने लगती है कि उसकी धर्म-साधना में विघ्न पड़ रहा है।"

"उसके बाद क्या होता है?"

हँसकर कहा, "उसके बाद वह खुद ही रोते रोते वापस आता है, नाक रगड़ कर कहता है कि मुझे बहुत सजा मिल चुकी, इस जीवन में इतनी बड़ी भूल फिर न करूँगा! पड़ा रहा मेरा जप तप, गुरुपुरोहित, मुझे क्षमा करो।"

राजलक्ष्मी भी हँसी, बोली, "क्षमा मिल जाती है तो?"

"मिल जाती है। किन्तु तुम्हारी कहानी का क्या हुआ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "कहती हूँ।" क्षण भरतक मेरी तरफ निष्पलक आँखों से देखकर कहा, "माँ गांव पर चली गईं। मुझे एक बूढ़े उस्ताद गाना बजाना सिखाते थे वे बंगाली थे किसी समय संन्यासी थे, किन्तु इस्तीफा देकर फिर संसारी बन गये थे। उनके घर में मुसलमान स्त्री थी, वे मुझे नाच सिखाने आती थीं। उनको मैं बाबा कहकर पुकारती थी, सचमुच ही वे मुझे बहुत प्यार करते थे। रोकर मैंने कहा, "बाबा, तुम मेरी रक्षा करो, यह सब मुझसे अब न होगा। वे गरीब आदमी थे, हठात् साहस न कर सके। मैं कहती थी, मेरे पास जो रुपया है, उससे बहुत दिन तक काम चल जायगा। बाद को जो भाग्य में होगा, वही होगा। किन्तु इस समय तो चलो, भाग चलें। इसके बाद उनके साथ कितने स्थानों में घूमती रही,—इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, जयपुर, मथुरा—अन्त में पटना में आकर आश्रय लिया। आधा रुपया एक महाजन की गद्दी में जमाकर दिया और आधे रुपये से एक मनिहारी और कपड़े की दूकान खोल दी। मकान खरीद कर बंकू

की खोज की और उसे लाकर स्कूल में भर्ती करा दिया और जीविका के लिए जो कुछ करती थी, वह तो तुम अपनी ही आँखों से देख चुके हो।''

उसकी कहानी सुनकर कुछ देरतक स्तब्ध हो रहा, फिर बोला. ''तुम कह रही हो इसी लिए अविश्वास नहीं होता, और कोई होता तो यही समझता कि केवल एक मनगढ़न्त झूठी कहानी सुन रहा हूँ।''

राजलक्ष्मी ने कहा, "शायद मैं झूठ नहीं बोल सकती?"

मैंने कहा, "शायद बोल सकती हो. किन्तु मेरा विश्वास है कि मुझसे आजतक नहीं बोली।"

''यह विश्वास क्यों है?''

'क्यों? तुम्हें भय है कि झूठी छलना से पीछे कहीं कोई देवता रुष्ट न हो जायँ। तुमको सजा देने के लिए कहीं मेरा अकल्याण न कर बैठें।"

''मेरे मन को बात तुमने कैसे जान ली?"

''मेरे मन की भी बात तुम कैसे जान लेती हो?"

"मैं जान लेती हूं, क्योंकि यह मेरी दिनरात की भावना है, किन्तु तुम्हारे लिए तो ऐसी बात नहीं है।

''यदि ऐसी ही हो तो खुश होओगी?''

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा, ''नहीं होऊँगी। मैं तुम्हारी दासी हूं। दासी को इससे ज्यादा मत समझना. यही मैं चाहती हूं।"

उत्तर में मैंने कहा, ''तुम तो उस युग को मनुष्य हो वे ही हजारों वर्ष पहले के तुम्हारे पुराने संस्कार हैं।''

राजलक्ष्मी ने कहा: "मैं ऐसी ही हो सकूँ। सर्वदा ऐसी ही रहूँ।'' यह कहकर वह क्षणभर मेरी तरफ देखकर बोली, ''क्या तुम सोचते हो कि इस युग की औरतों को मैंने नहीं देखा है? बहुतों को देखा है। बरन् तुमने ही नहीं देखा है, अथवा देखा भी है तो बाहर से ही। इनमें से किसी के साथ मुझे बदल दो तो देखूँ कि तुम कैसे रह सकते हो? मुझसे मजाक किया था कि नाक रगड़ कर आई थी, तब तुम दस हाथ दूर से नाक रगड़ो।''

किन्तु जब यह मीमांसा हो ही नहीं सकती, तब झगड़ा करने से लाभ नहीं है।

केवल यही कह सकता हूँ कि इतने लोगों के सम्बन्ध में तुमने अत्यन्त अविचार किया है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यदि अविचार किया हो, तो भी यह कह सकती हूं कि अत्यन्त अविचार नहीं किया। ओ गोसाईं जो, मैं भी बहुत घूम चुकी हूं, बहुत देख चुकी हूँ। तुम लोग जहाँ अन्धे हो. वहाँ भी हमारी दस जोड़ी आँखें खुली हुई हैं।"

"किन्तु जो तुमने देखा है। रंगीन चश्मा लगाकर देखा है। इस लिए सभी गलत देखा है। दसों जोड़ी व्यर्थ हैं।"

राजलक्ष्मी ने हँसते हुए मुँहसे कहा, "क्या कहूं, मेरे हाथपैर बँधे हुए हैं। नहीं तो ऐसा काबू करती कि जन्म भर न भूलते। किन्तु यह बात जाने दो, जब कि उस युग की भाँति मैं तुम्हारी दासी ही होकर रहती हूं, तब तुम्हारी सेवा ही मेरे लिए सब से बड़ा काम होना चाहिए। किन्तु तुमको अपने बारे में मैं जरा भी न सोचने दूँगी। संसार में तुम्हार लिए बहुत काम है, अब से वे ही करने पड़ेंगे। इस अभागिनी के कारण तुम्हारा बहुत समय तथा और भी बहुत कुछ नष्ट हो चुका है, अब मैं और नष्ट न करने दूँगी।"

मैंने कहा "इसी लिए तो मैं जितना शीघ्र हो सका उसी पुरानी नौकरी पर जाकर हाजिर होना चाहता हूँ।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मैं तो तुम्हें नौकरी नहीं करने दूँगी।"

"किन्तु मनिहारी की दूकान भी तो मैं चला न चकूँगा।"

"क्यों न चला सकोगे।"

"पहला कारण यह है, कि चीजों का दाम मुझे याद नहीं रहता, दूसरे दाम लेना और झटपट हिसाब करके बाकी लौटा देना यह तो और भी असम्भव है। दूकान तो उठ ही जायगी, यदि खरीदार के साथ लाठी न चल जाय तो समझना कि जान बची।"

"तो एक कपड़े की दूकान खोल दो।"

"इससे तो अच्छा है कि जंगली शेर भालुओं की एक दूकान खुलवा दो, बल्कि वह चलाना मेरे लिए सहज होगा।"

राजलक्ष्मी हँस पड़ी, बोली, "एकाग्र मन से इतनी आराधना करने पर क्या

अन्त में भगवान् ने मुझे एक ऐसा निकम्मा आदमी दिया, जिसको लेकर संसार में घर गृहस्थी की इतना थोड़ा काम भी नहीं चलाया जा सकता !"

मैंने कहा, "आराधना में त्रुटि थी। इसमें संशोधन करने का समय है, अब भी काम करनेवाला परिश्रमी मनुष्य तुमको मिल सकता है। काफी मजबूत. स्वस्थ, लम्बा चौड़ा जवान, जिसे न कोई हरा सकेगा और न तो ठग ही सकेगा जिसपर काम का भार देकर निश्चिन्त, हाथ में रुपया पैसा देकर निर्भय हुआ जा सकेगा। जिसकी खबरदारी नहीं करनी पड़ेगी, जिसको भीड़ में खो देने की घबड़ाहट नहीं, जिसे सजाकर तृप्ति, खिलाकर आनन्द—जो 'हाँ' के अतिरिक्त 'नहीं' बोलना ही नहीं जानता—।"

राजलक्ष्मी चुपचाप मेरी तरफ देख रही थी अकस्मात् उसके समूचे शरीर में कांटे उग आये। मैंने कहा, "अरे. यह क्या ?"

"नहीं, कुछ नहीं।"

"तो कांप जो उठी !"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मुँहजबानी तुमने जो चित्र अंकित किया, उसका यदि आधा भी सत्य हो जाय तो शायद मैं डरकर ही मर जाऊँगी।"

"किन्तु मेरे जैसे निकम्मे आदमी को लेकर ही तुम क्या करोगी ?"

राजलक्ष्मी ने हँसी दबाकर कहा, "करूँगी और क्या ? भगवान को कोसती रहूँगी और चिरकाल जल भुनकर मरूँगी। इस जन्म में और कुछ तो आँखों से नहीं दिखाई पड़ता।"

"वरन्, इससे अच्छा तो यही होगा कि तुम मुझे मुरारीपुर अखाड़े में भेज क्यों नहीं देती ?"

"उनका ही तुम क्या उपकार करोगे ?"

"उनके फूल चुन लाया करूँगा ठाकुर जी का प्रसाद पाकर जब तक जीवित रहूँगा पड़ा रहूँगा। उसके बाद वे लोग उसी बकुल वृक्ष के नीचे मेरी समाधि बना देंगे। बच्ची पद्मा किसी सन्ध्या को दीया जला जायगी. जिस दिन वह भूल जायगी, उस सन्ध्या को दीया न जलेगा। प्रातःकाल के फूल तोड़कर उसके ही पास से कमललता जब निकलेगी, तो किसी दिन वह एक मुठ्ठी मल्लिका के फूल बिखेर देगी और कभी तो कुन्द के फूल। यदि कभी कोई परिचित रास्ता भूलकर आ

जायगा, तो उसे दिखाकर कहेगी, वहाँ रहते हैं हमारे नये गोसाईं। वही जो जरा ऊँची जगह है, वही जहाँ पर मल्लिका के सूखे और ताजे कुन्द फूलों के साथ मिलकर झरे हुए बकुल फूल छाये हुए हैं—वहीं।"

राजलक्ष्मी की आँखों में आँसू भर आये। पूछा, "और वह परिचित मनुष्य तब क्या करेगा?"

मैंने कहा, "यह मैं नहीं जानता। शायद बहुत रुपया खर्च करके मन्दिर बनवा जाय।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नहीं, ऐसा नहीं होगा। वह बकुल के नीचे से कहीं फिर न जायगा। वृक्ष की प्रत्येक डाली पर पक्षी कलरव करेंगे। गाना गायेंगे, लड़ेंगे. कितने सूखे पत्ते झर पड़ेंगे। सूखी डालें गिर पड़ेंगी. उन सबको साफ करने का काम उसी का रहेगा। सबेरे चुनकर और साफकर, फूलों की माला गूँथेगा, रातको सबके सो जाने पर उनको वैष्णव कवियों के गीत सुनायेगा, फिर समय आने पर कमललता को बुलाकर कहेगा, दीदी, हमें एकत्र करके समाधि देना, कहीं अन्तर न रहने पावे, अलग अलग न पहचाना जाय। और यह लो रुपये, इससे मन्दिर बनवा देना, राधाकृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित कर देना, किन्तु कोई नाम मत लिखना, कोई चिह्न मत रखना। कोई यह न जान सके कि ए कौन हैं और कहाँ से आये।"

मैंने कहा, "लक्ष्मी, तुम्हारी तस्वीर तो हो गई और भी मधुर, और भी सुन्दर।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह तो केवल बातें गूँथ कर बनाई हुई तस्वीर नहीं है गोसाईं, यह सत्य जो है। इसी स्थान पर फर्क भी है। मैं कर सकूँगी, किन्तु तुम न सकोगे। तुम्हारी बातों की अंकित तस्वीर केवल बातें होकर ही रह जायंगी।"

"कैसे जान गये?"

"जानती हूं। तुम स्वयं जितना जानते हो, उससे भी अधिक जानती हूँ। यही तो मेरी पूजा है यही तो मेरा ध्यान है। पूजा शेष करके किसके पैरों में जलाञ्जलि चढ़ाती हूँ? किसके पैरों पर फूल देती हूँ? तुम्हारे ही पैरों पर तो?"

नीचे से महाराज की पुकार आई, "माँ, रतन नहीं है, चाय का पानी तैयार हो गया।"

"आता हूं भैया।" यह कहकर आँखें पोंछती हुई वह उसी समय चली गई।

कुछ देर बाद चाय की कटोरी लिये लौट आने पर उसे मेरे पास रखकर वह बोली, "तुम पुस्तकें पढ़ना इतना पसन्द करते हो, अब से वही क्यों नहीं करते?"

"उससे रुपये तो नहीं आयेंगे?"

"रुपयों से क्या होगा? रुपया तो हम लोगों के पास बहुत है।"

थोड़ी देर तक रुककर कहा, "ऊपर का दक्षिण तरफ वाला कमरा तुम्हारे पढ़ने का कमरा होगा। देवर आनन्द पुस्तकें खरीद लावेंगे, और मैं अपनी रुचि के अनुसार सजाकर रखूंगी। उसके एक बगल में मेरा सोने का कमरा रहेगा और दूसरी तरफ रहेगा मेरा ठाकुर घर। इस जन्म में मेरा यही त्रिभुवन रहा, इसके बाहर मेरी दृष्टि कभी जाये ही नहीं।"

मैंने पूछा, "तुम्हारा रसोईघर? आनन्द तो संन्यासी आदमी है, वहाँ नजर न देने पर तो उसे एक दिन भी न रखा जा सकेगा। 'किन्तु उसका पता कैसे लगा? वह कब आयगा?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "पता दिया है कुशारी महाशय ने, कहा है कि आनन्द बहुत शीघ्र आ जायगा। इसके बाद सब मिलकर गंगामाटी जायेंगे और वहीं कुछ दिन रहेंगे।"

मैंने कहा, "मान लो कि तुम वहाँ चली ही गई; किन्तु उनके पास जाकर इस बार क्या तुम्हें लज्जा न आयेगी?"

राजलक्ष्मी ने कुंठित हास्य से सिर हिलाकर कहा, "किन्तु उनमें से तो कोई भी यह नहीं जानता कि काशी में नाक बाल वगैरह कटवाकर मैंने स्वांग रचा था। मेरे बाल अब बहुत बढ़ गये हैं और नाक भी भली-भांति जुट गई है। दाग तक भी नहीं रह गया है। और मेरे सभी अन्याय, सभी लाज मिटा देने के लिए तुम भी तो मेरे साथ हो!"

कुछ देर तक रुक कर बोली, "खबर मिली है कि वह अभागिनी मालती फिर लौट आई है, साथ लाई है अपने पति को। मैं उसको एक हार गढ़वा दूंगी।"

मैंने कहा, "गढ़वा देना, किन्तु वहाँ जाकर फिर यदि सुनन्दा के पल्ले पड़ जाओ।"

राजलक्ष्मी झटपट बोल उठी, "नहीं जी नहीं, अब वह डर नहीं है। उसका मोह अब दूर हो गया है। बापरे बाप! ऐसी धर्मबुद्धि दे दी कि रातदिन न तो आँखों के आँसू ही रोक सकी, न खा सकी और न तो सो ही सकी। यही बहुत है कि पागल नहीं हो गई।" यह कह कर हँसती हुई वह फिर बोली, "तुम्हारी लक्ष्मी और चाहे जैसी ही क्यों न हो, अस्थिर मनकी तो नहीं है। वह एक बार जिस बात को सच समझ जायगी फिर उससे उसे कोई भी हटा न सकेगा।" थोड़ी देर तक नीरव रहकर वह फिर बोली, 'मेरा सारा मन मानो इस समय आनन्द में डूबा हुआ है। सदा यही मालूम होता रहता है मानो इस जीवन में मुझे सब कुछ मिल गया है, मुझे और अब कुछ नहीं चाहिए। यदि यह भगवान का निर्देश नहीं तो और क्या है बताओ तो? प्रतिदिन पूजा करके ठाकुरजी के चरणों में अपने लिए और कुछ कामना नहीं करती, केवल यही प्रार्थना करती हूँ कि ऐसा आनन्द संसार में सबको मिले। इसी लिए तो देवर आनद को बुला भेजा है कि उसके कामों में अबसे कुछ कुछ सहायता करूँगी।"

मैंने कहा, "करो।"

राजलक्ष्मी न मालूम क्या सोचने लगी, अचानक बोल उठी, "देखो, इस सुनन्दा लड़की की तरह अच्छी, निर्लोभ, इतनी सत्यवादिनी लड़की मैंने दूसरी नहीं देखी है, किन्तु जितने दिनों तक उसकी विद्या की गरमी न जायगी, तब तक वह विद्या किसी काम में नहीं लगेगी।"

"किन्तु सुनन्दा को विद्याका घमंड तो नहीं है?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नहीं, दूसरों की तरह नहीं है, और यह बात तो मैंने कही भी नहीं। वह कितने श्लोक, कितनी शास्त्र कथाएँ, कितने गल्प उपाख्यान जानती है। उसके मुँहसे सुनसुनकर ही तो मेरी यह धारणा हुई थी कि मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ, हमारा सम्बन्ध झूठा है, और ऐसा ही तो विश्वास करना चाहा था—किन्तु भगवान ने मेरी गर्दन पकड़ कर समझा दिया कि इससे बढ़ कर मिथ्या और कुछ नहीं है। इसीसे देख लो कि उसकी विद्या में कहीं भारी भूल है। इसीलिए देखती हूँ कि वह किसी को सुखी नहीं कर सकती, सबको केवल दुःख ही देती है। किन्तु उसकी जेठानी उससे बहुत बड़ी है। सीधीसादी है, लिखना पढ़ना नहीं जानती, किन्तु उसके मनमें दया माया भरी हुई है। कितने दुखी दरिद्र

परिवारों का वह लुक छिपकर प्रतिपालन करती है, यह कोई भी नहीं जानता वही जो जुलाहों के साथ एक तरह की सुव्यवस्था हो गई, वह क्या सुनन्दा के जरिये कभी हो सकती थी ? तेज दिखला कर मकान छोड़ कर चले जाने के कारण ही क्या वह हुई है ? कभी नहीं। वह तो उसकी बड़ी जेठानी ने अपने पति के पैरों पड़कर रो धो कर किया है ! सुनन्दा ने सारी दुनिया के सामने अपने गुरुजन भसुर को चोर कह कर छोटा कर दिया, यही क्या शास्त्रशिक्षा की बड़ी बातें हैं ? उसकी पोथी की विद्या जब तक मनुष्य के सुख दुःख, भलाई बुराई, पापपुण्य और लोभ मोह के साथ सामंजस्य स्थापित न कर सकेगी, तब तक पुस्तकों में पढ़े हुए उसके कर्तव्यज्ञान का फल मनुष्य को अनुचित रूप से दे देगा, अत्याचार करेगा, संसार में किसी का भी कल्याण न करेगा, यह तुमको बताये देती हूँ।"

ये सब बातें सुन कर मैं आश्चर्य में पड़ गया पूछा "यह सब तुमने सीखा किससे ?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "क्या मालूम किससे ? शायद तुमसे ही। तुम कुछ कहते नहीं, कुछ भी चाहते नहीं, किसी पर जोर नहीं डालते हो, इसीलिए तुमसे सीखना तो केवल सीखना नहीं है, वह तो सत्यरूप में पाना है। हठात् एक दिन आश्चर्य में पड़कर सोचना पड़ता है, यह सब आया कहाँ से ? इस बात को छोड़ो, किन्तु इस बार जाकर कुशारी गृहिणी से मित्रता करूँगी, उस बार उनकी अवहेलना करके जो गलती की है, इस बार उसको सुधारूँगी। चलोगे न गंगामाटी ?

"किन्तु बर्मा ? मेरी नौकरी ?"

"फिर नौकरी ? अभी तो कहा कि मैं तुम्हें नौकरी न करने दूंगी।"

"लक्ष्मी, तुम्हारा स्वभाव खूब है। तुम कहती कुछ नहीं, चाहती कुछ नहीं, किसी पर दबाव भी नहीं डालती—विशुद्ध वैष्णव सहनशीलता का नमूना केवल तुम्हारे ही पास मिलता है।"

"इसी लिए क्या जिसका जो ख्याल होगा, उसीका समर्थन करना पड़ेगा संसार में क्या और किसीका सुख दुःख नहीं है ? तुम स्वयं ही सब कुछ हो ?"

"ठीक ही तो कहती हो ! किन्तु अभया ? उसने प्लेगका भय नहीं किया, यदि वह उस दुर्दिन में आश्रय देकर न बचाती तो शायद तुम आज मुझे पाती ही नहीं। आज उन लोगों का क्या हुआ, यह बात क्या बिलकुल ही न सोचोगी ?"

राजलक्ष्मी क्षणभर में करुणा और कृतज्ञता से विगलित होकर बोली, "तो तुम रहो, आनन्द देवर को लेकर मैं बर्मा जाती हूँ, जाकर उनको यहाँ पकड़ लाऊँ। वहाँ उनके लिए कोई न कोई प्रबन्ध हो ही जायगा।"

मैंने कहा, "यह हो सकता है, किन्तु वह बड़ी अभिमानिनी है, मेरे न जाने पर शायद वह न आयेगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा "आयेगी। वह समझेगी कि तुम ही उन लोगों को लेने आये हो। देखना, मेरी बात गलत न होगी।"

"किन्तु मुझे छोड़कर जा तो सकोगी?"

राजलक्ष्मी पहले तो चुप रही. इसके बाद अनिश्चित कण्ठसे धीरे-धीरे बोली "इसी का तो मुझे डर है। शायद न जा सकूँगी। किन्तु इसके पहले चलो न थोड़े दिनों तक चल कर गंगामाटी में रहें?"

"वहाँ क्या तुम्हारा कोई विशेष काम है?"

"थोड़ा सा है। कुशारी महाशय को खबर मिली है कि पास का पोड़ामाटी गाँव वे लोग बेचनेवाले हैं। उसको खरीदने की बात सोच रही हूँ। उस मकान को भी अच्छी तरह तैयार करा दूंगी, जिससे तुम्हें रहने में कोई कष्ट न हो। उस बार देखा था कि कमरे के अभाव में तुम्हें कष्ट होता था।

मैंने कहा, "कमरे के अभाव से कष्ट नहीं होता था, कष्ट तो दूसरे कारण से होता था।"

राजलक्ष्मी ने जान बूझ कर ही इस बात पर ध्यान नहीं दिया, बोली, "मैंने देखा है कि वहाँ तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। तुम्हें शहर में अधिक दिनों तक रखने का मुझे साहस नहीं होता, इसीलिए शीघ्र हटा ले जाना चाहती हूँ।"

"किन्तु इस भंगुर शरीर को लेकर यदि तुम प्रतिदिन इतनी उद्विग्न रहोगी तो मन में शान्ति न पाओगी लक्ष्मी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह उपदेश बहुत काम का है, किन्तु मुझे न देकर यदि जरा स्वयं ही सावधान रहा करो, तो शायद सचमुच थोड़ी सी शान्ति पा सकूँ।"

सुनकर चुप हो रहा। क्योंकि इस विषय में तर्क करना केवल निष्फल ही नहीं, अप्रीतिकर भी होता है। उसका अपना स्वास्थ्य अटूट है, किन्तु जिसको वह सौभाग्य प्राप्त नहीं है, बिना कारण ही जो बीमार पड़ सकता है, यह बात

वह किसी तरह भी न समझेगी। मैंने कहा, "शहर में मैं किसी समय भी रहना नहीं चाहता। उस समय गंगामाटी मुझे अच्छा ही लगा था। यह बात तुम आज भूल गयी हो लक्ष्मी कि मैं वहाँ से अपनी इच्छा से चला भी नहीं आया था।"

"नहीं जी नहीं; भूली नहीं हूं, सारी जिन्दगी नहीं भूलूंगी" यह कह कर वह जरा हँसी। बोली, "उस बार तुम्हें ऐसा लगता था, मानो किसी अनजान जगह में आ गये हो, किन्तु इस बार जाकर देखो कि उसकी आकृति प्रकृति इतनी बदल जायगी कि उसे अपना समझने में तुम्हें जरा भी अड़चन न होगी। और केवल घर बार और रहने की जगह ही नहीं, इस बार जाकर मैं बताऊँगी अपने को और सबसे ज्यादा तोड़-मरोड़ कर नये सिरे से गढ़ूँगी तुमको —अपने नये गोसाईं जी को। जिसे कमललता दीदी फिर मार्ग-कुमार्ग में घूमने वाला साथी कह कर दावा न पेश कर सके।"

मैंने कहा, "शायद यही सब सोच समझकर स्थिर किया है?"

राजलक्ष्मी ने हँसते हुए कहा, "हाँ। तुमको क्या बिना मूल्य इसी तरह लूंगी, उसका ऋण नहीं चुकाऊंगी? और मैं भी जो तुम्हारे जीवन में सचमुच आई थी, जाने के पहले क्या इस आने के चिह्न को न छोड़ जाऊंगी? इस तरह निष्फला चली जाऊँगी? किसी तरह भी मैं यह न होने दूँगी।"

उसके मुंह की ओर देख कर श्रद्धा और स्नेह से अन्तर परिपूर्ण हो उठा। मन ही मन सोचा, हृदय का विनिमय नर नारी की अत्यन्त साधारण घटना है, संसार में नित्य ही घटती रहती है, विराम नहीं विशेषता नहीं, फिर भी यह दान और प्रतिग्रह ही व्यक्ति विशेष के जीवन का अवलम्बन कर, ऐसे विचित्र विस्मय और सौन्दर्य से उद्भासित हो उठता है कि उसकी महिमा युग युग में मनुष्य के मन को अभिषिक्त करके भी समाप्त नहीं होना चाहती। यही अक्षय सम्पत्ति है, यह मनुष्य को वृहत् करती है, शक्तिशाली करती है और अकल्पित कल्याण से नये तौर पर सृष्टि कर देती है।

मैंने पूछा, "तुम बंकू का क्या करोगी?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "वह तो अब मुझे नहीं चाहता। सोचता है कि यह आफत दूर हो जाय तो अच्छा है।"

" किन्तु वह तो तुम्हारा निकट आत्मीय है। उसे तुमने बचपन से ही भरण-पोषण करके आदमी जो बनाया है। "

" यह आदमी बनाने का सम्बन्ध ही रहेगा, और कुछ न मानूंगी। वह मेरा निकट आत्मीय नहीं है। "

" क्यों नहीं है ? अस्वीकार कैसे करोगी ? "

" अस्वीकार करने की इच्छा मुझे भी नहीं थी, " यह कह कर वह क्षणभर तक चुप रहने के बाद बोली, " मेरी सभी बातें तुम भी नहीं जानते। मेरे विवाह की कहानी तुमने सुनी थी ? "

" लोगों के मुंह से सुनी थी। किन्तु उस समय मैं गांव पर नहीं था। "

" हां, नहीं थे। दुःख का ऐसा इतिहास और नहीं है। ऐसी निष्ठुरता भी शायद कहीं नहीं हुई। बाबूजी माँ को कभी नहीं ले गये, मैंने भी कभी उनको नहीं देखा। हम दोनो बहिनें मामा के ही घर पर बड़ी हुईं; बचपन में ज्वर से भोगते भोगते मेरा चेहरा कैसा हो गया था, याद है तो ? "

"याद है।"

तो सुनो, बिना अपराध के उस दण्ड का परिमाण सुन कर तुम्हारे जैसे निष्ठुर मनुष्य को भी दया आ जायगी। ज्वर से भोगती रहती थी किन्तु मृत्यु नहीं आती थी। मामा खुद भी तरह तरह की बीमारियों से शय्यागत हो रहे थे, अचानक खबर मिली दत्त लोगों के यहां जो ब्राह्मण रसोईदार है वह हमारी ही जाति का है, मामा की तरह शुद्ध कुलीन है। उम्र साठ के करीब है। हम दोनों बहिनों को एक ही साथ उसके हाथ सौंपा जायगा। सब ने कहा कि यह मौका खो देने से, कुंवारेपन का नाम न मिट सकेगा। उसने एक सौ रुपये मांगे। मामा ने थोक दर में पचास रुपये कह दिये। एक आसन पर, एक साथ, मिहनत भी कम। वह उतरा पचहत्तर पर, बोला, ' महाशय, दो दो भानजियों को कुलीन के हाथ सौंपेंगे पर एक जोड़ा बकरे का भी दाम न देंगे ? " खूब भोर में रात्रि में लग्न थी, दीदी तो जागी थी, किन्तु पोटली जैसी लाद कर लाई गई और उत्सर्ग कर दी गई। सबेरे से ही बाकी पचीस रुपये के लिये झगड़ा शुरु हो गया। मामा ने कहा, ' अग्निसंस्कार क्रिया उधार ही होने दो' उसने कहा 'इतना बेवकूफ नहीं हूँ, इन सब मामलों में उधार सुधार की बात नहीं चल

सकती, वह कहीं छिपकर लापता हो गया। शायद उसने सोचा कि मामा कहीं से खोज कर रुपया लावेंगे और रुपया देकर काम पूरा करा लेंगे। एक दिन बीत गया, दूसरा बीता. माँ ने रोना धोना शुरू किया. मुहल्ले के लोग हँसने लगे, मामा ने जाकर दत्त लोगों के यहां शिकायत की, किन्तु वर फिर नही आया। उसके गांव में खोज की गई वहां भी वह नही मिला। हमलोगों को देखकर कोई कहता अभागिनी, और कोई कहता कि करमफूटी। लज्जा के मारे दीदी घर से बाहर नहीं निकली। उस घर से छः महीने के बाद उन्हें बाहर किया गया श्मशान के लिए! और छः महीने बाद कलकत्ते के किसी होटल से सामाचार आया कि वर भी वहां खाना पकाते पकाते ज्वर से मर गये। विवाह पूरा नही हुआ।

मैंने कहा, "पचीस रुपये में दुलहा खरीदने से ऐसा ही होता है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "फिर भी उसे तो मेरे हिस्से के पचीस रुपये मिल गये। किन्तु तुमको क्या मिला था। केवल एक करौंदे की माला, वह भी खरीदनी नहीं पड़ी. बन से तोड़ लाई थी।"

मैंने कहा, "जिसका कुछ दाम नहीं रहता, उसे अमूल्य कहते हैं। और कोई आदमी दिखाओ तो जिसको मेरी तरह अमूल्य धन मिला हो?"

"तुम बताओ तो यह क्या तुम्हारे मन की सच्ची बात है?"

"कुछ पता नही चला?"

"नहीं जी नहीं, नहीं चला, सचमुच ही नहीं चला।"

किन्तु कहते कहते ही वह हँस पड़ी, बोली "उस समय पता चलता है जब तुम सोते हो—तुम्हारे मुंह की ओर देख कर। किन्तु इस बात को जाने दो। हम दोनों बहिनो की भांति दण्ड इस देश में सैकड़ों लड़कियों को भोगना पड़ता है और कहीं तो शायद कुत्ते बिल्लियों की भी इतनी दुर्गति करने में मनुष्य का हृदय धड़कने लगता है।" यह कह कर क्षणभर तक देखकर वह बोली, "शायद तुम सोचते हो कि मेरी शिकायतें बढ़ा-चढ़ाकर होती हैं, ऐसे दृष्टान्त भला कितने मिलते हैं? इसके उत्तर में यदि यह कहती कि यह एक हो तो भी सारे देश के लिए कलंक है, तो भी मेरा जबाब काफी हो जाता, किन्तु मैं यह न कहूंगी। मैं कहूंगी कि अनेक होते हैं। चलोगे मेरे साथ उन सब विधवाओं के पास, जिनको मैं

कुछ कुछ सहायता करती हूँ ? वे सभी गवाही देंगी कि उनके हाथ पैर बांधकर उनके ही घर के लोगों ने इसी तरह पानी में फेंक दिया था ।"

मैंने कहा, "शायद इसी कारण उनके उपर इतनी माया है ।"

राजलक्ष्मी ने कहा "तुम्हें भी होती, यदि आंखें खोलकर हमलोगों का दुःख देखते । अब से एक एक करके मैं ही तुमको दिखाऊँगी ।"

"मैं नहीं देखूंगा, आंखें बन्द किये रहूंगा ।"

"नहीं रह सकोगे । मैं अपने काम का भार एक दिन तुम्हारे ही उपर डाल जाऊँगी । सब भूलोगो, किन्तु वह कभी न भूल सकोगे ।" यह कह कर वह कुछ देर तक मौन रह कर अकस्मात् अपनी पहले की कहानी के अनुसरण में बोल उठी, "ऐसा अत्याचार तो होगा ही । जिस देश में लड़की का विवाह न होने पर धर्म जाता है जाति जाती है, शर्म से समाज में मुंह नहीं दिखाया जाता, गंवार, गूंगा, अन्धी, रोगी, किसी की भी रिहाई नहीं, लोग वहां एक को छोड़ कर दूसरे की ही रक्षा करते हैं, इसके अतिरिक्त उस देश में मनुष्य के लिए दूसरा उपाय ही क्या है, बताओ तो ? उस दिन सब मिलकर यदि हम दोनो बहिनों को बलि न दे देते तो दीदी शायद मरती नहीं, और मैं इस जन्म में शायद तुमको नहीं पाती, किन्तु मन में तुम्हीं सर्वदा इसी तरह प्रभु बन कर रहते और, यही क्यों । तुम मुझे छोड़ नहीं पाते, जहां भी क्यों न रहते, चाहे जितने दिन हो जाते, खुद आकर मुझे ले ही जाना पड़ता ।"

कुछ जबाब देने की बात सोच रहा था हठात् नीचे से एक बालक कंठ की पुकार आई, "मौसी ?"

" आश्चर्य में पड़कर मैंने पूछा "यह कौन है ?"

"उस मकान की मझली बहू का लड़का है, " यह कह कर उसने इशारे से पास का मकान दिखा दिया और जबाब दिया," "क्षितीश, ऊपर आ जाओ बेटा ।"

दूसरे ही क्षण एक सोलह सत्रह वर्ष के सुश्री बलिष्ठ किशोर ने कमरे में प्रवेश किया । मुझे देख कर पहले तो वह संकुचित हुआ, फिर नमस्कार करके अपनी मौसी से ही कहा, "मोसी, आप के नाम किन्तु बारह रुपया चन्दा रखा गया है ।"

"रख जाने दो बेटा, किन्तु सावधान होकर तैरना, कोई दुर्घटना न हो ।"

"नहीं, कोई डर नहीं है मौसी।"

राजलक्ष्मी ने आलमारी खोलकर उसके हाथ में रुपये दिये, लड़का तेजी से सीढ़ी पर से उतरते उतरते हठात् खड़ा होकर बोला, "मां ने कह दिया है कि छोटे मामा परसों सबेरे आकर सारा एस्टिमेट बना देंगे।" यह कह कर ही वह लम्बी सांस खींचकर चला गया।

मैंने प्रश्न किया, "किस बात का एस्टिमेट?"

"मकान मरम्मत नहीं करनी होगी? तीसरी मंजिल का जो कमरा उन्होंने आधा बनवा कर अधूरा छोड़ रखा है, उसे क्या पूरा न करना पड़ेगा?"

"यह तो हो जायगा, किन्तु इतने आदमियों को तुमने कैसे पहचान लिया?"

"वाह, ये सब तो पास के ही मुहल्ला के लोग हैं। किन्तु अब नहीं, जाती हूँ। तुम्हारे लिए खाना तैयार करने का समय हो गया। यह कह कर वह उठी और नीचे चली गई।

१३

एक दिन सबेरे ही स्वामी आनन्द आ धमके। रतन को यह बात मालूम नहीं थी कि उनको आने का निमन्त्रण दिया गया है। उदास चेहरे से उसने आकर खबर दी, "बाबू, गंगामाटी का वह साधु आकर हाजिर हुआ है। बलिहारी है खोज खाज कर पता तो लगा ही लिया?"

रतन सब प्रकार के साधु-सज्जनों को सन्देह की दृष्टि से देखता है। राजलक्ष्मी के गुरुदेव को तो वह दोनों आंखों से नहीं देख सकता था। बोला, "देखिए, यह इस बार मां से क्या मतलब प्रकट करता है। रुपये बाहर निकालने के कितने कौशल ये धार्मिक लोग जानते हैं।

हँसकर कहा, "आनन्द बड़े आदमी का लड़का है, डाक्टरी पास है, उसे अपने लिए रुपये की जरुरत नहीं है।"

"हूँ, बड़े आदमी का लड़का है। रुपया रहने पर क्या कोई इस पथ पर चलता है।" यह कह कर अपना सुदृढ़ अभिमत व्यक्त करके चला गया। रतन की असली आपत्ति यहीं पर है, मां का रुपया कोई ले जाय, इसका वह घोर विरोधी है। हां, उसकी अपनी बात अलग है।

वज्रानन्द ने आकर मुझे नमस्कार किया, बोला, "और एक बार आ गया दादा। सब सामाचार अच्छा तो है? दीदी कहां हैं?"

शायद पूजा करने बैठी हैं, निश्चय ही उन्हें कोई खबर नही मिली है।

"तो खुद ही जाकर संवाद दे दूं। पूजा करना भाग थोड़े ही जायगा। जब वे एकबार रसोईघर की तरफ दृष्टिपात करें! पूजा का कमरा किस तरफ है दादा? वह नाई बेटा कहां चला गया, जरा चाय का पानी चढ़ा देता।"

पूजा का कमरा दिखा दिया। आनन्द ने रतन के उद्देश्य से एक हुंकार छोड़कर उस तरफ प्रस्थान किया।

दो मिनट बाद दोनो ही आकर उपस्थित हुए, आनन्द ने कहा, "दीदी, पांच छः रुपये दे दीजिये, चाय पीकर एकबार स्यालदह बाजार घूम आऊँ।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "निकट हो तो एक अच्छा बाजार है आनन्द, उतनी दूर क्यो जाना होगा। रतन को जाने दो न!"

"कौन रतन? उस आदमी का विश्वास नही दीदी, मैं आया हूं इसीलिए शायद छांट छांट कर सड़ी हुई मछलियां खरीद लायेगा," हठात् देखा कि रतन दरबाजे पर खड़ा है, तब जीभ दबा कर कहा, "रतन बुरा न मानना भाई, मैंने सोचा था कि तुम उस मुहल्ले में चले गये हो, पुकारने पर आहट नही मिली थी न।"

राजलक्ष्मी हँसने लगी। मुझ से भी बिना हँसे न रहा गया। रतन ने किन्तु अपनी भौहें नही चढ़ाईं। उसने गम्भीर आवाज में कहा, "मैं बाजार जा रहा हूँ मां, किशन ने चाय का पानी चढ़ा दिया है" यह कह कर वह चला गया।

राजलक्ष्मी ने कहा, "शायद रतन के साथ आनन्द की नही पटती?"

आनन्द ने कहा, "उसे मैं दोष नही दे सकता दीदी। वह आपका हितैषी है। फालतू लोगों को घुसने नही देना चाहता। किन्तु आज उसका साथ कर लेना पड़ेगा, नहीं तो खाना अच्छा नहीं मिलेगा। बहुत दिनों का उपवासी हूँ।"

राजलक्ष्मी ने शीघ्र बरामदे में जाकर कहा, "रतन और कुछ रुपये ले जा भाई, क्योंकि एक बड़ी रुई मछली लानी होगी।" लौट आने पर कहा, "हाथ मुंह धो लो भाई, मैं चाय तैयार कर लाती हूँ।" यह कह कर वह भी नीचे उतर गई।

आनन्द ने कहा, "दादा, एकाएक तलबी क्यों हुई?"

"इसकी कैफियत क्या मुझे देनी है आनन्द ?"

आनन्द ने हँसते हुए कहा, "देखता हूँ कि दादा का अब भी वही भाव है, क्रोध शान्त नहीं हुआ है। फिर कहीं लापता हो जाने का इरादा तो नहीं है ? उस बार गंगामाटी में कितने झमेले में डाल दिया था ? इधर सारे देश के लोगों का निमन्त्रण और उधर मकानमालिक लापता ? बीच में पड़ा मैं,—नया आदमी इधर दौड़ूँ, उधर दौड़ूँ, दीदी पैर फैलाकर रोने लगी, रतन लोगों को भगाने का उद्योग करने लगा, यह कैसी विपत्ति थी ? आप भी खूब भले आदमी हैं।"

मैं भी हँस पड़ा, बोला, "अब इसबार क्रोध दूर हो गया है डरो मत।",

आनन्द ने कहा, "भरोसा तो नहीं है। आपलोगों की तरह निःसंग, एकाकी लोगों से मैं बहुत डरता हूं। आपने अपने को संसार में क्यों जकड़ने दिया, यही मैं प्राय: सोचता रहता हूँ।"

मन ही मन कहा "भाग्य !" मुंह से कहा, "देखता हूँ कि मुझे भूले नहीं हो; बीच बीच में याद करते थे ?"

आनन्द ने कहा, "नहीं दादा, आपको भूलना भी कठिन है, समझना भी कठिन है, मोह दूर करना तो और भी कठिन है विश्वास न हो तो कहिये, दीदी को बुला कर गवाही दे दूं। आपसे केवल दो तीन दिन का ही तो परिचय है, किन्तु उस दिन दीदी के साथ सुर मिला कर मैं भी जा रोने नहीं बैठ गया, सो केवल इसलिए कि वह संन्यासी धर्म के बिलकुल विरुद्ध बात होगी।"

मैंने कहा, "यह शायद दीदी का खातिर। उनके अनुरोध से ही तो इतनी दूर आये हो।"

आनन्द ने कहा, "बिलकुल झूठ नहीं है दादा। उनका अनुरोध तो केवल अनुरोध नहीं है, मानो मां की पुकार है। पैर अपने आप चलना शुरू कर देते हैं। कितने ही घरों में तो आश्रय लेता हूँ किन्तु ठीक ऐसा तो कहीं नहीं देखता। सुना है कि आप भी तो बहुत घूम चुके हैं, कहीं इनकी तरह और किसी को देखा है ?"

मैंने कहा, "अनेक अनेक।"

राजलक्ष्मी ने प्रवेश किया। कमरे में घुसते ही उसने मेरी बात सुन ली थी, चाय की कटोरी आनन्द के पास रख कर मुझ से पूछा, "क्या अनेक जी ?"

शायद आनन्द जरा विपदग्रस्त हो पड़ा, 'मैंने कहा "तुम्हारे गुणों की बातें। उन्होंने सन्देह प्रकट किया था, इसलिए मैंने जोरों के साथ इसका प्रतिवाद किया है।"

आनन्द चाय की कटोरी मुंह में लगा रहा था। हँसी के झोंक से थोड़ी सी चाय जमीन पर गिर पड़ी। राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी।

आनन्द ने कहा, "दादा, आप की उपस्थित बुद्धि अद्भुत है। यह ठीक उलटी बात आँखों की पलकें गिरने के साथ ही आपके दिमाग में कैसे आ गई?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "इसमें आश्चर्य क्या है आनन्द? अपने मनकी बात दबाते दबाते और कहानियाँ गढ़कर सुनाते सुनाते इस विद्या में ये एक दम महा महोपाध्याय हो गये हैं।"

मैंने कहा, "तो तुम मेरा बिश्वास नहीं करती?"

"जरा भी नहीं।"

आनन्द ने हँसकर कहा, "गढ़ गढ़कर कहने की विद्या में आप भी कम नहीं हैं दीदी। तत्काल ही जवाब दे दिया 'जरा भी नहीं।'"

राजलक्ष्मी भी हँस पड़ी, बोली, "जल भुनकर सीखना पड़ा है भाई। किन्तु अब तो तुम देर मत करो, चाय पीकर नहा लो, कल दिन में तुम्हारा भोजन नहीं हुआ, यह मैं अच्छी तरह जानती हूं। इनके मुंह से मेरी सुख्याति सुनने लगोगे तो समूचे दिन में उसका अन्त न होगा।" यह कह कर वह चली गई।

आनन्द ने कहा, "आप दोनों की तरह व्यक्ति संसार में विरल हैं। भगवान ने आश्चर्य जनक जोड़ी बनाकर आप लोगों को दुनिया में भेजा था।"

"उसका नमूना देख लिया तो?"

"नमूना तो उस पहले ही दिन सांइथिया स्टेशन के पेड़ तले ही देखा था। इसके बाद और कोई कभी नजर नहीं आया।"

"आहा, यदि ये बातें उनके सामने ही कहते आनन्द!"

आनन्द काम का आदमी है, कामका उद्यम और शक्ति उसमें विपुल है। उसको पास पाकर राजलक्ष्मी के आनन्द की सीमा नहीं रही। रात दिन खाने की तैया-रियाँ तो प्रायः भय की सीमा तक पहुँच गईं। लगातार दोनों में कितने परामर्श होते रहते हैं, इनकी सब जानकारी मुझे नहीं है, कानों तक केवल यह बात पहुँची है कि

गंगामाटी में एक लड़कों के लिए और एक लड़कियों के लिए स्कूल खोला जायगा। वहाँ काफी गरीब और छोटी जाति के लोगों का वास है, शायद वे ही उपलक्ष्य रखे गये हैं। सुना है चिकित्सा के लिए भी एक व्यवस्था की जायगी। इन सब विषयों में किसी दिन भी मेरी कुछ भी पटुता नहीं रहती। परोपकार की इच्छा तो है, किन्तु शक्ति नहीं है। यह सोचते ही कि कहीं पर कुछ तैयार करके खड़ा करना होगा, मेरा क्लान्त मन 'आज नहीं कल' कहकर दिन टालना चाहता है। अपने नये उदयोग में बीच बीच में आनन्द मुझे घसीटने आता, किन्तु राजलक्ष्मी हँसकर बाधा देकर कहतीं, "उन्हें और मत लपेटो आनन्द, तुम्हारे सभी संकल्प चौपट हो जायँगे।"

सुनने पर प्रतिबाद करना ही पड़ता, मैंने कहा,—"अभी जो उस दिन कहा कि मेरा बहुत काम है और अब मुझे बहुत कुछ करना होगा!"

राजलक्ष्मी ने हाथ जोड़कर कहा, "मेरी गलती हुई है गोसाईं, ऐसी बात फिर कभी मुँह में न लाऊँगी।"

"तब क्या किसी दिन कुछ भी नहीं करूँगा?"

"क्यों नहीं करोगे? केवल बीमार पड़कर मुझे भयग्रस्त करके तुम मुझे अध-मरा न कर डालो तो इससे ही मैं तुम्हारे प्रति चिरकृतज्ञ बनी रहूंगी।"

आनन्द ने कहा 'दीदी, सचमुच ही आप इनको निकम्मा बना डालेंगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मुझे बनाना नहीं पड़ेगा भाई, जिस विधाता ने इनकी सृष्टि की है, उसीने यह व्यवस्था कर रखी है. कहीं पर भी त्रुटि नहीं रखी है।"

आनन्द हँसने लगा। राजलक्ष्मी ने कहा "इसके अलावा एक जलमुँहा ज्योतिषी ऐसा ही भय दिखा गया है कि इनके मकान से बाहर होते ही मेरी छाती धुक् धुक् करने लगती है, जब तक लौट कर नहीं आते, किसी भी काम में मन नहीं लगा सकती।"

"इस बीच फिर भला ज्योतिषी कहाँ से आ गया? उसने क्या कहा?"

मैंने इसका उत्तर दिया, कहा, "मेरा हाथ देखकर उसने कहा कि जीवन में विपत्ति का जबर्दस्त योग है, जीवन-मरण की समस्या है।"

"दी दी, इन सब बातों में आप विश्वास करती हैं?"

मैंने कहा, "हाँ, करती हैं, जरूर करती हैं। तुम्हारी दीदी कहती हैं, क्या

जीवन में विपत्ति योग नामक कोई वस्तु दुनिया में नहीं है ? क्या किसी के जीवन पर कभी आपत्ति नहीं आती ? '

आनन्द ने हँसकर कहा, ''आ सकती है किन्तु हाथ देखकर कैसे कोई बता सकेगा दीदी ?''

राजलक्ष्मी ने कहा, ' यह तो नहीं जानती भाई, मुझे केवल इस बात का भरोसा है कि जो मेरी तरह भाग्यवती है उसे भगवान कभी इतने बड़े दुःख में न डुबायेंगे।''

आनन्द ने स्तब्ध मुंह से क्षण भर तक उसके मुंह की ओर देखकर दूसरी बात छेड़ दी।

इस बीच मकान को लिखापढ़ी, व्यवस्था का काम चलने लगा, ढेर की ढेर ईंटें, लकड़ियाँ, चूना-सुरखी, किवाड़ खिड़कियाँ आदि आ पड़ीं, पुराने मकान को राजलक्ष्मी ने नया बनाने का आयोजन किया।

उस दिन शाम को आनन्द ने कहा, "चलिए दादा जरा घूम आयें।"

आज कल मेरे बाहर जाने के प्रस्ताव पर ही राजलक्ष्मी अनिच्छा प्रकट करने लगती है। बोली, "घूमकर लौटते लौटते ही रात हो जायगी आनन्द, क्या ठंडक नहीं लगेगी ?''

आनन्द ने कहा, 'गरमी से तो लोग परेशान होते जा रहे हैं दीदी, ठंडक कहाँ है ?''

आज मेरी तबीयत भी बहुत अच्छी नहीं थी। कहा, "अवश्य ही ठंडक लगने का भय नहीं है, किन्तु आज उठने की भी वैसी इच्छा नहीं हो रही है आनन्द।"

आनन्द ने कहा, ' यह तो जड़ता है। सन्ध्या समय कमरे में बैठे रहने से अनिच्छा और भी बढ़ जायगी चलिए, उठिए।"

राजलक्ष्मी ने इसका समाधान करने के लिए कहा, ''इससे अच्छा एक दूसरा काम करें न आनन्द, परसों क्षितीश मुझे एक अच्छा हारमोनियम खरीद कर दे गया। अब तक उसे देखने का समय नहीं मिला। मैं दो चार भगवान के नाम लेती हूं, तुम दोनों बैठकर सुनो, सन्ध्या कट जायगी।" यह कहकर उसने रतन को बुलाकर बक्स लाने के लिए कहा।

आनन्द ने विस्मययुक्त कंठ से प्रश्न किया, ''भगवान के नाम का अर्थ क्या गीत है दीदी ?''

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा। "दीदी को यह विद्या भी आती है क्या?"

"बहुत ही मामूली तौर पर।" इसके बाद मुझे दिखाकर कहा: "बचपन में इन्होंने ही कलम पकड़ना सिखाया।"

आनन्द ने खुश होकर कहा, "दादा तो देखते हैं, छिपे रंग वाले आम हैं, बाहर से पकड़ने का उपाय नहीं है।"

उसका मन्तव्य सुनकर राजलक्ष्मी हँसने लगी, किन्तु मैं सरल मनसे शामिल न हो सका। क्योंकि आनन्द कुछ भी न समझेगा और मेरी आपत्ति को उस्ताद का विनय-वाक्य समझ कर लगातार तंग करने लगेगा और अन्त में शायद नाराज भी हो जायगा। पुत्र शोकातुर धृतराष्ट्र विलाप का दुर्योधन वाला गान जानता हूं, किन्तु राजलक्ष्मी के बाद इस बैठक में वह कुछ ठीक जमेगा नहीं।

हारमोनियम आने पर राजलक्ष्मी ने पहले सचराचर प्रचलित भगवान के दो चार गीत सुनाये और फिर वैष्णव पदावली आरम्भ कर दी। सुनकर ऐसा मालूम हुआ, मानो उस दिन मुरारीपुर के अखाड़े में भी शायद इतना अच्छा नहीं सुना था। आनन्द विस्मय से अभिभूत हो गया, मुझे दिखाकर मुग्ध चित्त से कहा "ये सब क्या इन्हीं से सीखा है दीदी?"

"सभी क्या कोई एक ही आदमी से सीखता है आनन्द?"

"यह ठीक है।" इसके बाद मेरी तरफ देखकर उसने कहा,— दादा इस बार आपको दया करनी होगी। दीदी कुछ थक गई हैं।

"नहीं जी, मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।"

"तबीयत के लिए उत्तरदायी मैं हूँ। क्या अतिथिका अनुरोध नहीं मानेंगे?"

"मानने का उपाय जो नहीं है, तबीयत बहुत खराब है।"

राजलक्ष्मी गम्भीर होने की चेष्टा कर रही थी किन्तु सम्हाल न सकी, हंसते हंसते लोट पोट हो गई। आनन्द अब मामला समझ गया, बोला, "दीदी, तौ बताओ किससे तुमने इतना सीखा?"

मैंने कहा, "जो लोग रुपये के बदले में विद्या दान करते हैं उनसे, मुझसे नहीं सीखा है भैया। दादा तो कभी इस विद्या के पास से भी नहीं गुजरे।"

क्षण भर मौन रहकर आनन्द ने कहा, "मैं भी कुछ थोड़ा सा जानता हूं दी

दी, किन्तु ज्यादा सीखने का समय नहीं मिला। यदि सुयोग मिल जायगा तो इस बार आपका शिष्यत्व ग्रहण करके अपनी शिक्षा को पूर्ण कर लूँगा। किन्तु आज क्या यहीं रुक जायँगी, और कुछ नहीं सुनायेंगी।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''अब तो समय नहीं है भाई, तुम लोगों के लिए खाना भी तैयार करना है।''

आनन्द ने निःश्वास छोड़कर कहा ''यह तो जानता हूँ। जिनके ऊपर घर गृहस्थी का भार है, उनको कम समय मिलता है किन्तु उम्र में मैं छोटा हूँ, आपका छोटा भाई। मुझे सिखाना होगा। अपरिचित स्थान में जब अकेले समय कटना न चाहेगा, तब आपकी इस दया का स्मरण करूँगा।''

राजलक्ष्मी ने स्नेहविगलित होकर कहा, ''तुम डाक्टर हो विदेश में अपने इस स्वास्थ हीन दादा के प्रति दृष्टि रखना भाई मैं जितना जानती हूँ, उतना आदर से सिखाऊँगी।''

''किन्तु इसके अलावा क्या आपको और कोई चिन्ता नहीं।

राजलक्ष्मी चुप रही। आनन्द ने मुझे उद्देश्य करके कहा, ''दादा जैसा भाग्य सहसा नजर नहीं आता।''

मैंने इसका उत्तर दिया, बोला ''और ऐसा निकम्मा व्यक्ति भी क्या सहसा दिखाई पड़ता है आनन्द। उनकी नकेल पकड़ने के लिए भगवान मजबूत आदमी भी दे देता है, नहीं तो वे बीच समुद्र में ही डूब जायँ, किसी समय घाट पर पहुँच ही न सकें। इसी तरह संसार में सामंजस्य की रक्षा की जाती है भैया, मेरी बातों को मिलाकर देखना, प्रमाण मिल जायगा।

राजलक्ष्मी क्षण भर तक चुप चाप देखती रही, फिर उठ गई। उसे बहुत काम है।

इन कुछ दिनों के अन्दर ही मकान का काम शुरू हो गया राजलक्ष्मी माल असबाब एक कमरे में बन्द करके यात्रा की तैयारी करने लगी। मकान का भार बूढ़ा तुलसी दास पर रहा।

जाने के दिन राजलक्ष्मी ने मेरे हाथ में एक पोस्टकार्ड देकर कहा, ''मेरी चार पन्नों में भरी चिट्ठी का यह जवाब आया है—पढ़ कर देख लो।'' यह कह कर वह चली गई।

जनानी लिखावट में केवल दो तीन लाइनों की चिट्ठी है। कमललता ने लिखा है—सुख से ही हूँ बहिन, जिनकी सेवा में अपने को निवेदन कर दिया है, मुझे अच्छी रखने का भार भी उन्हीं पर हैं। प्रार्थना करती हूँ कि तुम लोग सकुशल रहो। बड़े गोसाईं जी अपनी आनन्दमयी के लिए श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं। इति --

श्री श्री राधाकृष्ण चरणाश्रिता, कमललता

उसने मेरे नामका उल्लेख भी नहीं किया है। किन्तु इन कई अक्षरों की आड में उसकी न मालूम कितनी बातें रह गईं। खोजकर देखने लगा कि चिट्ठी पर क्या कहीं एक बूँद आंसू का दाग नहीं पड़ा है। किन्तु कोई भी चिह्न नहीं दिखाई पड़ा।

चिट्ठी को हाथ में लेकर चुप चाप बैठा रहा। खिडकी के बाहर धूप से तपा हुआ नीलाभ आकाश है, पडोसी के घर के एक जोड़ा नारियल वृक्ष के पत्तों की फांक से उसका कुछ अंश दिखाई पडता है। वहाँ अकस्मात् मानो दो चेहरे पास ही पास तैर आये। एक मेरी राजलक्ष्मी का—कल्याण की प्रतिमा, दूसरा कमललता का, अपरिस्फुट, अनजान, मानो स्वप्न में देखी हुई छबि।

रतन ने आकर ध्यान भंग कर दिया। बोला, स्नान का समय हो गया है बाबू, मां ने कहा है!'

स्नान का समय भी बिताने का उपाय नहीं है।

फिर एक दिन सबेरे हम सभी गंगामाटी जा पहुँचे। उस बार आनन्द बिना बुलाया अतिथि था, इस बार निमन्त्रित बान्धव की मकान में भीड़ नही समाती, गांव के आत्मीय अनात्मीय न मालूम कितने लोग हमलोगो को देखने आये हैं, सभी के चेहरों पर प्रसन्न हँसी और कुशल प्रश्न है। राजलक्ष्मी ने कुशारी-गृहिणी को प्रणाम किया, सुनन्दा रसोईघर में कामकाज से व्यस्त थी, बाहर निकल आई और हम दोनो को प्रणाम करके बोली "दादा, आपका शरीर तो उतना अच्छा नही दिखाई पड़ता।"

राजलक्ष्मी ने कहा, 'अच्छा कब दिखता है बहिन? मैं तो कुछ न कर सकी, अब शायद तुम लोग अच्छा कर सको, इसी आशा से यहां ले आई हूं।''

मेरे विगत दिनो की बीमारी की बात शायद बड़ी बहू को याद आ गई,

उन्होंने स्नेहार्द्र कंठ से सान्त्वना देते हुए कहा, "डरने की कोई बात नही है बेटी, इस देश के हवा-पानी से ये दो दिन में ठीक हो जायेंगे।"

फिर भी, मैं यह न समझ सका कि मुझे क्या हुआ है; और किस लिए इतनी दुश्चिन्ता है।

इसके बाद तरह तरह के कामों का आयोजन पूरे उद्यम के साथ शुरू हो गया। पोड़ामाटी को खरीद लेने की बातचीत से शुरू करके शिशु-विद्यालय की प्रतिष्ठा के लिए स्थान की खोज आदि किसी भी काम में किसी को आलस्य नहीं रहा।

केवल मैं ही अकेला मन में कोई उत्साह अनुभव नही करता शायद मेरा स्वभाव ही ऐसा है, या यह फिर कुछ और ही है जो दृष्टि के अगोचार रह कर धीरे धीरे मेरी समस्त प्राणशक्ति का मूलोच्छेदन कर रहा है। एक सुविधा यह हो गई थी कि मेरी उदासीनता से कोई विस्मित नहीं होता, मानो मुझ से और किसी बात की प्रत्याशा करना असंगत है।

मैं दुर्बल हूँ, मैं अस्वस्थ हूं मैं कभी हूँ और कभी नही हूं। फिर भी कोई रोग नहीं है, खाता-पीता हूँ और रहता हूँ। आनन्द अपनी डाक्टरी विद्या को लेकर बीच बीच में मुझे ज्यों ही हिलाने डोलाने की कोशिश करता है त्यों ही राजलक्ष्मो स्नेहपूर्वक उलहने के रूप में बाधा देकर कहती है, "उनको लेकर खींचातानी करने की जरूरत नही है भाई, न मालूम कब क्या से क्या हो जाय, तब हमलोगों को ही तो भोग भोग कर मरना पड़ेगा।"

आनन्द कहता, "आपने जो व्यवस्था की है, उससे भोगने की मात्रा बढ़ेगी ही घटेगी नही दीदी, मैं आपको सावधान किये देता हूँ।"

राजलक्ष्मी सहज ही स्वीकार करके कहती, "यह तो मैं जानती हूँ आनन्द, भगवान ने मेरे जन्म काल में ही मेरे कपाल में दुःख लिख दिया है।"

इसके बाद और तर्क नहीं किया जा सकता।

कभी किताबें पढ़ते पढ़ते दिन कट जाता है, कभी अपनी विगत कहानी लिख कर और कभी खाली मैदान में अकेले घूमते घूमते। एक बात में निश्चिन्त हूँ कि कर्म की प्रेरणा मुझ में नहीं है। लड़-झगड़ कर, उछलकूद कर, संसार में दस आदमियों के सिर पर चढ़ कर बैठने की शक्ति भी नहीं है और संकल्प भी नहीं है सहज ही में जो कुछ मिल जाता है, उसी को यथेष्ट मान लेता हूं। मकान,

घर, रुपया पैसा, जमीन जायदाद, मान-सम्भ्रम, ये सभी मेरे लिए छायामय हैं। दूसरों की देखादेखी अपनी जड़ता को यदि कभी कर्त्तव्य बुद्धि की ताडना से सचेत करने जाता हूँ तो शीघ्र ही देखता हूं कि वह फिर आंखें बन्द किये ऊंघ रही है, सैकड़ों धक्के देने पर भी हिलना डुलना नहीं चाहती। केवल देखता हूँ कि एक विषय में तन्द्रातुर मन कलरव से तरंगित हो उठता है, और वह है मुरारीपुर के दस दिनों की स्मृति का आलोड़न। मानो कानों में ठंक सुन रहा हूँ, वैष्णवी कमललता का सस्नेह अनुरोध—"नये गोसाईं, यह कर दो न भाई, अरे जाओ, सब नष्ट कर दिया? मुझ से गलती हुई कि तुमसे काम करने के लिए कहा, अच्छा अब उठो, जलमुंही पद्मा कहां गई, जा पानी चढ़ा देना, तुम्हारा चाय पीने का समय तो हो गया गोसाईं।"

उन दिनों वह खुद चाय के बर्तन धोकर रख देती थी, इस भय से कि कहीं टूट-फूट न जाय। आज उनका प्रयोजन खतम हो गया है, तो भी क्या मालूम कि फिर कभी काम में लगने की आशा से उसने उन्हें यत्नपूर्वक रख छोड़ा है या नहीं।

जानता हूं कि वह भागूं भागूं कर रही है। हेतु नहीं जानता, तो भी मन में सन्देह नहीं है कि मुरारीपुर के आश्रम में उसके दिन प्रतिदिन संक्षिप्त होते जा रहे हैं। हो सकता है कि एक दिन अकस्मात् यही खबर आ जायगी। यह सोचते ही आँखों में आंसू भर आते हैं कि वह निराश्रय निःसंबल, पथ पथ पर भीख मांगती हुई घूम रही है। भूला भटका मन सान्त्वना की आशा से राजलक्ष्मी की ओर देखता है, जो सबकी सभी शुभ-चिंताओं के अविश्राम कर्म में नियुक्त है,—मानो उसके दोनों हाथों की दसों अंगुलियों से कल्याण अजस्रधारा से बह रहा है। सुप्रसन्न मुँह पर शान्ति और परितृप्ति की स्निग्ध छाया पड़ रही है, करुणा और ममता से हृदय की यमुना किनारे तक परिपूर्ण है—निरवच्छिन्न प्रेम की सर्वव्यापी महिमा के साथ वह मेरे हृदय में जिस आसन पर प्रतिष्ठित है, नहीं जानता किं उसकी तुलना किससे की जाय।

विदुषी सुनन्दा के दुर्निवार प्रभाव ने थोड़े समय के लिए भी उसे जो विभ्रान्त कर दिया था, उसके ही दुःसह परिताप से उसने अपनी पुरानी सत्ता पुनः प्राप्त कर ली है। एक बात वह आज भी मेरे कानों कानों में कहती है, "तुम कम नहीं

हो जी, कम नहीं हो। यह कौन जानता था कि तुम्हारे चले जाने के पथ से ही मेरा सर्वस्व पलक मारते ही दौड़ कर भाग जायगा। उः, यह कैसी भयंकर बात थी, सोचने पर भी डर लगता है कि वे दिन कैसे कटे थे? सांस बद हो जाने से मर नहीं गई, यही आश्चर्य है।" मैं उत्तर नहीं दे पाता हूं, केवल चुपचाप ताकता रहता हूँ।

मेरे सम्बन्ध में और उसकी त्रुटि पकड़ने की गुञ्जाइश नहीं है। सौ कामों के बीच भी सौ बार छिपे तौर से आकर देख जाती है। कभी हठात् आकर पास बैठ जाती है, हाथ की पुस्तक हटा कर कहती है, "आँखें बन्द करके जरा सो जाओ तो, मैं तुम्हारे सिरपर हाथ फेर देती हूँ। इतना पढ़ने से आखों में दर्द होने लगेगा।"

आनन्द आकर बाहर से कहता है, "एक बात जान लेने की जरूरत है, क्या मैं आ सकता हूं?"

राजलक्ष्मी कहती है, "सकते हो! तुमको आने में कहाँ मनाही है आनन्द?"

आनन्द कमरे में घुसकर आश्चर्य में पड़कर कहता है, "इस असमय में क्या आप इनको सुला रही हैं दीदी?"

राजलक्ष्मी हँसकर जवाब देती है, 'तुम्हारा इससे क्या नुकसान हो गया? न सोने पर भी तो ये तुम्हारी पाठशाला के बछड़ों के दल को चराने नहीं जायँगे।"

"देखता हूं कि दीदी इनको मिट्टी कर देंगी।"

"नहीं तो खुद ही जो मिट्टी हूँ। बिना चिन्ता के कोई काम-काज ही नहीं कर पाती।"

"आप दोनों ही धीरे-धीरे पागल हो जायँगे," "कह कर आनन्द बाहर चला जाता है।

स्कूल बनवाने के काम में आनन्द को सांस लेने की भी फुरसत नहीं है, सम्पत्ति खरीदने के झमेले में राजलक्ष्मी पसीने से डूब रही है ऐसे ही समय में कलकत्ते के मकान से घूमकर बहुत से डाकघरों के छाप-छोप अपनी पीठ पर लिये, बहुत देर में नवीन की सांघातिक चिट्ठी आ पहुँची,—गौहर मृत्युशय्या पर पड़ा है। केवल मेरी ही राह देखता हुआ वह अब भी जी रहा है। यह खबर मुझे शूल की भाँति चुभी। यह नहीं जानता कि बहिन के मकान से वह कब लौट आया।

वह इतना बीमार है, यह भी नहीं सुना,—सुनने की विशेष चेष्टा भी नहीं की—आज एकदम आखिरी खबर आई है। प्रायः छः दिन पहले की चिट्ठी है, इसी लिए वह अब भी जीवित है या नहीं, यही कौन जानता है। तार भेजकर खबर पाने की व्यवस्था इस देश में भी नहीं है, उस देश में भी नहीं है! इस बात की चिन्ता ही व्यर्थ है। चिट्ठी पढ़कर राजलक्ष्मी ने सिर पर हाथ रखा, बोली— "तुमको जाना पड़ेगा तो?"

"हाँ।"

"चलो, मैं भी साथ चलूँ।"

"यह क्या हो सकता है? उनकी इस विपत्ति में तुम कहाँ जाओगी।"

यह उसने स्वयं समझ लिया कि प्रस्ताव असंगत है, मुरारीपुर के अखाड़े की बात फिर वह मुँह पर न ला सकी, बोली, "रतन को कल से ज्वर आ रहा है, साथ में कौन जायगा? आनन्द से कहूँ?"

"नहीं। वह मेरा बिस्तर ढोने वाला आदमी नहीं है।"

"तो किशन साथ में चला जाय।"

"चल सकता है, किन्तु कोई जरूरत नहीं है।"

"जाकर रोज चिट्ठी लिखोगे बोलो?"

"समय मिलने पर लिखूँगा।"

"नहीं यह नहीं सुनूँगी। एक दिन चिट्ठी न मिलने पर मैं खुद आ जाऊँगी, चाहे तुम जितना ही नाराज क्यों न हो जाओ।"

अन्त में राजी होना पड़ा, और प्रतिदिन समाचार भेजने के लिए वचनबद्ध होकर उसी दिन रवाना हो गया। देखा कि दुश्चिन्ता से राजलक्ष्मी का मुँह पीला पड़ गया है, उसने आँखें पोंछकर अन्तिम बार के लिए सावधान करके कहा, "शरीर की अवहेलना नहीं करोगे, बोलो?"

"नहीं जी नहीं।"

"लौटने में एक दिन की भी देर न करोगे, बोलो?"

"नहीं, सो भी नहीं करूँगा।"

अन्त में बैलगाड़ी रेलवे स्टेशन की तरफ रवाना हो गई।

आषाढ़ के तीसरे पहर को गौहर के मकान के सदर दरवाजे पर मैं आ पहुँचा।

मेरी आहट पाकर नवीन बाहर आया और मेरे पैरों के पास पछाड़ खाकर गिर पड़ा। जिस बात का डर था, वही हो चुकी है। उस दीर्घकाय बलिष्ठ पुरुष के प्रबल कण्ठ की उस छाती फाड़ने वाली रुलाई में शोक की एक नई मूर्ति मैंने देखी। वह जितनी गम्भीर थी, उतनी ही बड़ी और उतनी ही सत्य थी। गौहर की माँ नहीं, बहिन नहीं, कन्या नहीं, पत्नी नहीं। उस दिन इस संगीहीन मनुष्य को अश्रुजल की माला पहिनाकर बिदा करने वाला कोई न था, तो भी ऐसा मालूम होता है कि उसे सज्जाहीन, भूषणहीन कंगाल वेश में नहीं जाना पड़ा, उसकी लोकान्तर यात्रा के पथ में शेष पाथेय अकेले नवीन ने ही दोनों हाथ भर कर उड़ेल दिया है।

बहुत देर के बाद उसके उठ बैठने पर मैंने पूछा "गौहर की मृत्यु कब हुई नवीन ?"

"परसों। कल सबेरे हम लोगों ने उसे दफनाया।"

"कहाँ दफनाया ?"

"नदी के किनारे, आम के बगीचे में, उन्होंने ही कहा था।"

नवीन कहने लगा, "ममेरी बहिन के मकान से ज्वर लेकर लौटे और वह ज्वर फिर नहीं उतरा।"

"चिकित्सा हुई थी ?"

"यहाँ जो कुछ हो सकती है, सब हुई थी,—किसी से भी कुछ फल नहीं हुआ। बाबू खुद ही सब जान गये थे।"

मैंने पूछा, "अखाड़े के बड़े गोसाईं जी आते थे ?"

नवीन ने कहा, "बीच बीच में। नवद्वीप से उनके गुरुदेव आये हैं, इसीलिए रोज आने का समय नहीं मिलता था।" और एक व्यक्ति के बारे में पूछने में लज्जा मालूम होने लगी, तो भी संकोच दूर करके प्रश्न किया, "वहाँ से और कोई नहीं आता था नवीन ?"

नवीन ने कहा, "हाँ कमललता।"

"वे कब आई थीं ?"

नवीन ने कहा, "प्रति दिन, अन्तिम तीन दिन उन्होंने खाया नहीं, सोया नहीं, बाबू का बिछौना छोड़कर एक बार भी नहीं उठीं।"

और कोई प्रश्न नहीं किया, चुप हो रहा। नवीन ने पूछा, "अब कहाँ जायँगे, अखाड़े में ?"

"हाँ।"

"जरा खड़ा रहिए" यह कहकर वह भीतर गया और एक टीन का बक्स बाहर निकाल लाया, और उसे मेरे पास रखकर बोला, "वे इसे आपको देने के लिए कह गये हैं ?"

"इसमें क्या है नवीन ?"

"खोलकर देखिए," कहकर उसने मेरे हाथ में चाबी दे दी। खोल कर देखा कि उसकी कविता की कापियाँ रस्सी से बँधी हुई हैं। ऊपर लिखा है "श्रीकान्त, रामायण समाप्त करने का समय नहीं मिला। बड़े गोसाईं जी को दे देना, वे इसे मठ में इस तरह रख दें, जिससे नष्ट न होने पावे।" दूसरी छोटी सी पोटली सूती लाल कपड़े की है। खोलकर देखा कि विभिन्न मूल्य के एक बंडल नोट हैं और साथ ही मेरे नामका एक पत्र है। उसमें लिखा है,—"भाई श्रीकान्त, शायद मैं नहीं बचूँगा। तुमसे मुलाकात होगी या नहीं, यह मैं नहीं जानता। यदि नहीं हुई, तो नवीन के हाथों यह बक्स दे जाता हूँ, इसे ले लेना। ये रुपये तुम्हें दे जा रहा हूँ। यदि कमललता के काम में लगें तो दे देना। वह न ले, तो जैसी इच्छा हो, वही करना। अल्लाह तुम्हारा भला करे।—गौहर।"

दानका गर्व नहीं, अनुनय-विनय भी नहीं। केवल मृत्यु आसन्न जानकर इन थोड़ी सी बातों में बाल्य बन्धु की शुभ कामना करके अपना अन्तिम निवेदन रख गया है। भय नहीं, क्षोभ नहीं, उच्छ्वसित हाय-हाय से उसने मृत्यु का प्रतिवाद नहीं किया। वह कवि था, मुसलमान फकीर वंशका रक्त उसकी शिराओं में था,—शान्त मन से अन्तिम रचना अपने बाल्य बन्धु के लिए लिख गया है। अब तक मेरी आंखों के आंसू नहीं गिरे थे, किन्तु अब उन्होंने निषेध नहीं माना, बड़ी बड़ी बूंदों में आंखों के कोने से वे लुढ़क पड़े।

आषाढ़ का दीर्घ दिनमान उस समय समाप्ति की ओर था, पश्चिम दिगन्त में व्याप्त होकर काले मेघों का एक स्तर ऊपर उठ रहा था। उसके ही किसी संकीर्ण छिद्र पथ से अस्तोन्मुख सूर्य रश्मियाँ लाल होकर आ पड़ीं, दीवार से सटे शुष्कप्राय जामुन के वृक्ष की चोटी पर इसी की शाखा से लिपट कर गौहर की माधवी और

मालती लता के कुंज तैयार हो उठे थे। उस दिन केवल कलियाँ निकली थीं, उनमें से ही कुछ मुझे उपहार में देने की उसने इच्छा की थी, केवल चिउँटों के भयसे नहीं दे सका था। आज उनमें गुच्छे के गुच्छे फूल हैं. कितने तो नीचे झड़ गये हैं, कुछ हवा से उड़कर आस पास बिखर पड़े हैं,—इनमें से ही कुछ मैंने उठा लिये,---बाल्य बन्धु के स्वहस्त का अन्तिम दान समझ कर।

नवीन ने कहा, "चलिए, आपको पहुँचा आऊँ।"

मैंने कहा, "नवीन, जरा बाहर का कमरा खोल दो तो देखूँ।"

नवीन ने कमरा खोल दिया। आज भी चौकी के एक छोर पर वही बिछौना समेट कर रखा हुआ है, एक छोटी पेन्सिल, कुछ फटे कागज के टुकड़े भी हैं—इसी कमरे में गौहर ने अपनी स्वरचित कविता –बन्दिनी सीता के दुःख की कहानी सुरों में गाकर सुनाई थी। इस कमरे में कितनी बार आया हूँ, कितने दिन खाया पीया और सोया हूँ, उपद्रव कर गया हूं, उस दिन हँसते हुए मुंह से जिन्होंने सहन किया था, आज उनमें से कोई जीवित नहीं है। आज अपना आना जाना समाप्त करके बाहर निकल आया।

रास्ते में नवीन के मुंह से सुना कि गौहर नोटों की ऐसी ही एक छोटी सी पोटली उसके लड़कों के हाथ भी दे गया है। जो सम्पत्ति बाकी बची है वह उसके ममेरे भाई बहिनों को मिलेगी, और उसके पिता द्वारा निर्मित मसजिद के रक्षण वेक्षण के लिए रहेगी।

आश्रम में पहुँच कर देखा कि बडी भीड़ लगी हुई है। गुरुदेव के साथ अनेक शिष्य-शिष्याएं आई हैं, बड़े ठाटबाट से बैठक जमी हुई है, और हाव-भाव से उनके शीघ्र बिदा होने के लक्षण भी प्रकट नहीं होते। अनुमान किया कि वैष्णव सेवा आदि कार्य विधि के अनुसार ही चल रहे हैं।

द्वारिका दासने मुझे देखकर अभ्यर्थना की। मेरे आगमन का हेतु वे जानते थे। गौहर के लिए उन्होंने दुःख प्रकट किया, किन्तु उनके मुंह पर मानो एक तरह का विव्रत--उद्भ्रान्त भाव था, जैसा कि पहले कभी नहीं देखा था। अन्दाज किया कि शायद इतने दिनों से वैष्णवों की परिचर्या करने से वे थक गये हैं, विपर्यस्त हो उठे हैं निश्चिन्त होकर बातचीत करने का समय उनके पास नहीं है।

खबर पाकर पद्मा आई, उसके मुंह पर भी आज हँसी नहीं, मानो संकुचित सी है--भाग जाने से ही मानो बच जायगी।

मैंने पूछा, "कमललता दीदी इस समय बहुत व्यस्त हैं, क्यों पद्मा ?"

"नहीं, दीदी को बुला दूँ ?" कह कर ही वह चली गई। यह सब ही आज इतना अप्रत्याशित और अप्रासंगिक लगा कि मनही मन शंकित हो उठा। कुछ देर बाद ही कमललता ने आकर नमस्कार किया, बोली, "आओ गोसाईं, मेरे कमरे में चलकर बैठो।"

अपने बिछौने आदि स्टेशन पर ही रखकर केवल बैग साथ में लाया था, और गौहर का वह बक्स मेरे नौकर के सिर पर था। कमललता के कमरे में आकर, उसे उसके हाथ में देकर मैंने कहा, "जरा सावधानी से रख दो, बक्स में बहुत रुपये हैं।"

कमललता ने कहा, "मालूम है।" इसके बाद उसे खटिये के नीचे रखकर पूछा, "शायद, तुमने अभी चाय नहीं पी है ?"

"नहीं।"

"कब आये ?"

"तीसरे पहर को।"

"जाती हूँ, तैयार करके लाऊँ," कहकर नौकर को साथ लिये वह उठ गई।

पद्मा हाथ मुंह धोने के लिए जल देकर चली गई, खड़ी नहीं रही।

फिर ऐसा खयाल आया कि मामला क्या है।

थोड़ी देर बाद कमललता चाय लेकर आई, कुछ फलमूल, मिठाई और उस वक्त का ठाकुर जी का प्रसाद भी साथ था। बहुत देर से भूखा था, तुरत ही बैठ गया।

शीघ्र ही ठाकुर जी की सन्ध्याआरती के शंख और घंटे की आवाज सुनाई पड़ी। पूछा, "अरे, तुम तो नहीं गई ?"

"नहीं, मेरे लिए मनाही है।"

"मनाही है ? तुम्हारे लिए ? इसका मतलब ?"

कमललता ने म्लान हँसी हँसकर कहा, "मनाही का मतलब है मनाही गोसाईं, अर्थात् ठाकुर जी के कमरे में मेरा जाना निषिद्ध है।"

"प्रयोजन करने में रुचि नहीं रह गई, मैंने पूछा, "मना किसने किया ?"

"बड़े गोसाईं जी के गुरुदेव ने। और उनके साथ जो लोग आये हैं, उन लोगों ने।"

"वे लोग क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं कि मैं अपवित्र हूँ, मेरी सेवा से ठाकुर जी कालुषित हो जायँगे।"

"तुम अपवित्र हो ?" विद्युत् वेग से एक बात याद पड़ी, "क्या यह सन्देह गौहर के कारण हुआ है ?"

"हाँ, यही कारण है।"

कुछ भी नहीं जानता था, तो भी बिना किसी संशय के ही बोल उठा, "यह झूठ है, यह असम्भव है !"

"असम्भव क्यों है गोसाईं ?"

"यह तो जानता हूँ कमललता, किन्तु इतनी बड़ी झूठी बात और नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य-समाज में अपने मृत्यु पथ के यात्री बन्धु की एकान्त सेवा का ऐसा ही अन्तिम पुरस्कार होता है !"

उसकी आखें आँसू से भर गईं, बोली, "अब मुझे दुःख नहीं है। ठाकुर जी तो अन्तर्यामी हैं, उनके निकट तो डर नहीं था, डर था केवल तुमसे, आज मैं निर्भय होकर बच गई, गोसाईं।"

"संसार में इतने आदमियों के बीच तुमको केवल मेरा भय था, और किसी का नहीं ?"

"नहीं, और किसी का नहीं, केवल तुम्हारा ही था।"

इसके बाद दोनों ही स्तब्ध रहे। एक बार मैंने पूछा, "बड़े गोसाईं जी क्या कहते हैं ?"

कमलता ने कहा, "उनके लिए तो कोई उपाय नहीं है। नहीं तो कोई भी वैष्णव फिर इस मठ में नहीं आवेगा।" कुछ देर बाद कहा, "यहाँ रहने से काम न चलेगा, एक दिन मुझे यहां से जाना पड़ेगा, यह मैं जानती थी, किन्तु यह नहीं जानती थी कि इस प्रकार जाना पड़ेगा। केवल पद्मा की बात याद करके कष्ट होता है। लड़की है, उसका कहीं भी कोई नहीं है। बड़े गोसाईं जी ने उसे नव द्वीप से उठा लाया था, अपनी दीदी के चले जाने पर वह बहुत रोयेगी। यदि हो

सके तो उसे जरा देखना। यदि वह यहाँ न रहना चाहे तो मेरे नाम से राजू को दे देना, वह जो अच्छा समझेगी, अवश्य ही करेगी, करेगी ही।"

फिर कुछ समय चुप चाप बीत गया। मैंने पूछा, "ये रुपये क्या होंगे? लोगी नहीं?"

"नहीं, मैं भिखारिणी हूँ, रुपये क्या करूँगी बताओ तो?"

"तो भी यदि किसी काम में लग जायँ।"

कमललता ने इस बार हँसकर कहा, "मेरे पास भी तो किसी दिन बहुत रुपये थे जी, वे किस काम में लगे? फिर भी, कभी जरूरत पड़ी, तो तुम किस लिए हो? तब तुम से माँग लूँगी। दूसरे के रुपये क्यों ले लूँ?"

इस बात के जवाब में क्या कहूँ, यह सोच कर ठीक न कर सका, केवल उसके मुँह की तरफ ताकता रहा।

उसने फिर कहा, "नहीं गोसाईं, मुझे रुपये नहीं चाहिए, जिनके श्रीचरणों में अपने को समर्पण कर दिया है, वे मुझे नहीं छोड़ेंगे। जहाँ ही जाऊँगी, सभी वे ही पूर्ण कर देंगे। मेरे लिए चिन्ता मत करो।"

पद्मा ने कमरे में आकर कहा, "नये गोसाईं के लिए क्या इसी कमरे में प्रसाद ले आऊँ दीदी?"

"हाँ, यहीं ले आओ। नौकर को दे दिया?"

"हाँ. दे दिया।"

तो भी पद्मा नहीं गई, क्षणभर तक इधर उधर करके बोली, "तुम नहीं खाओगी दीदी?"

"खाऊँगी रे जलमुँही, खाऊँगी, जब तू है, तब क्या बिना खाये दीदी को छुटकारा है?"

पद्मा चली गई।

सबेरे उठकर कमललता को मैंने नहीं देखा, पद्मा के मुँह से सुना कि वह तीसरे पहर को आती है। सारा दिन कहाँ रहती है, यह कोई नहीं जानता। तो भी मैं निश्चिन्त न हो सका, रात की बातें याद करके केवल भय होने लगा कि कहीं वह चली न गई हो, और फिर मुलाकात ही न हो।

बड़े गोसाईं जी के कमरे में गया। कापियों को सामने रखकर बोला, "गौहर का रामायण है। उसकी इच्छा थी कि यह मठ में रहे।"

द्वारिकादास ने हाथ बढ़ाकर ले लिया, बोले, "ऐसा ही होगा नये गोसाईं। जहाँ मठ के और सब ग्रन्थ रहते हैं, वहीं उनके साथ इसे भी रख दूंगा।"

दो मिनट तक चुप रहकर मैंने कहा, "उसके सम्बन्ध में कमललतापर लगाये गये अपवाद पर तुम विश्वास करते हो गोसाईं ?"

द्वारिकादास ने मुँह ऊपर उठाकर कहा, 'मैं ? कदापि नहीं।"

"तो भी उसे चला जाना पड़ रहा है ?"

"मुझे भी जाना पड़ेगा गोसाईं। निर्दोषी को दूर हटाकर यदि खुद बना रहूँ तो फिर मिथ्या ही इस पथपर आया और मिथ्या ही इतने दिनोंतक उनका नाम लिया।"

"तब उसे जाना ही क्यों पड़ेगा ? मठ के मालिक तो तुम हो,—तुम तो उसको रख सकते हो ?"

'गुरु ! गुरु ! गुरु !' कहकर द्वारिकादास मुँह नीचे झुकाये बैठे रहे। समझ गया कि गुरु का आदेश है, अन्यथा नहीं हो सकता।

"आज मैं जा रहा हूं गोसाईं," कहकर कमरे से बाहर निकलते समय उन्होंने मुँह ऊपर उठाकर मेरी तरफ ताका। देखा कि उनकी आँखों से आँसू गिर रहे हैं, उन्होंने हाथ उठाकर मुझे नमस्कार किया, मैं भी प्रतिनमस्कार करके चला आया।

अपराह्न धीरे धीरे सन्ध्या में लुढक चला, सन्ध्या उत्तीर्ण होकर रात आ गई, किन्तु कमललता दिखाई नहीं पड़ी। नवीन का आदमी मुझे स्टेशन तक पहुँचाने के लिए आ पहुँचा, सिरपर बैग रखे किशन छटपटा रहा है—अब समय नहीं है,—किन्तु कमललता फिर नहीं लौटी। पद्मा को विश्वास था कि थोड़ी देर बाद ही वह आयेगी, किन्तु मेरा सन्देह क्रमशः विश्वास बन गया—वह नहीं आयेगी। अन्तिम बिदाई की कठोर परीक्षा से पराङ्मुख होकर वह पूर्वाह्न में ही भाग गई है, दूसरा वस्त्र भी साथ नहीं लिया है। कल उसने भिखारिणी वैरागिणी कह कर आत्मपरिचय दिया था, आज उसी परिचय को उसने अक्षुण्ण रखा।

जाने के समय पद्मा रोने लगी। उसे अपना पता ठिकाना देकर मैंने कहा, "तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वही मेरे पास लिख भेजना पद्मा।"

"किन्तु मैं तो अच्छी तरह लिखना नहीं जानती गोसाईं ?"

"तुम जो लिखोगी, मैं वही पढ़ लूँगा।"

"दीदी से मिलकर नहीं जाओगे ?"

"फिर मुलाकात होगी पद्मा, अब तो मैं जाता हूं," कहकर बाहर निकल पड़ा।

१४

समूचे रास्ते में आँखें जिसको अन्धकार में भी खोज रही थीं, उससे मुलाकात हुई रेलवे स्टेशन पर। लोगों की भीड़ से दूर खड़ी थी, मुझे देखकर निकट आकर बोली, "एक टिकट खरीद देना होगा गोसाईं—"

"तो क्या सचमुच ही सब को छोड़कर चल पड़ी ?"

"इसके अतिरिक्त तो और कोई उपाय नहीं है।"

"कष्ट नहीं होता कमललता ?"

"यह बात क्यों पूछते हो गोसाईं, सब तो जानते हो।"

"कहाँ जाओगी ?"

"जाऊँगी वृन्दावन, किन्तु उतनी दूर का टिकट नहीं चाहिए—तुम आसपास की ही किसी जगह का टिकट खरीद दो।"

"अर्थात् मेरा ऋण जितना ही कम हो उतना ही अच्छा। इसके बाद दूसरों से भिक्षा शुरू होगी जबतक कि रास्ता खतम नहीं होता। यही तो ?"

"भिक्षा क्या यह पहली बार शुरू होगी गोसाईं ?" क्या और कभी नहीं माँगी ?"

चुप रहा। उसने मेरी तरफ देखते ही आँखें फेर लीं, बोली, "वृन्दावन का ही टिकट खरीद दो।"

"तो चलो, एक साथ ही चलें।"

"तुम्हारा रास्ता भी क्या यही है ?"

मैंने कहा, "नहीं, यही तो नहीं है, तो भी जितना रास्ता एक साथ चल सकूँ उतना ही सही।"

गाड़ी आने पर दोनों उसमें जा बैठे। पास की बेंच पर अपने ही हाथों से उसका बिछौना मैंने बिछा दिया।

कमललता घबड़ा उठी, "यह क्या कर रहे हो गोसाईं ?"

"वह कर रहा हूं, जो कभी किसी के लिए नहीं किया, सर्वदा याद रखने के लिए।"

"क्या सचमुच याद रखना चाहते हो ?"

"सचमुच ही याद रखना चाहता हूं कमललता, इस बात को तुम्हारे सिवा और कोई भी न जानेगा।"

"किन्तु मुझे तो दोष लगेगा गोसाईं ?"

"नहीं, कुछ भी दोष नहीं लगेगा, तुम स्वच्छन्दतापूर्वक बैठो।"

कमललता बैठ गई किन्तु बड़े संकोच के साथ। गाड़ी चलने लगी, कितने गाँव, कितने नगर, कितने मैदान पार करती हुई, —पास ही बैठकर वह धीरे धीरे अपने जीवन की कितनी ही कहानियाँ सुनाने लगी। रास्ते रास्ते घूमते रहने की कहानियाँ, मथुरा, वृन्दावन गोबरधन, राधाकुण्ड में रहने की बातें, कितने ही तीर्थों में भ्रमण करने की कथाएँ और अन्त में द्वारिकादास के आश्रय में मुरारीपुर के आश्रम में आने की बात। मुझे उस समय उस मनुष्य की बिदा के समय की बातें याद पड़ गईं, बोला, "जानती हो कमललता, बड़े गोसाईं तुम्हारे कलङ्क पर विश्वास नहीं करते ?"

"नहीं करते ?"

"बिलकुल नहीं। मेरे आने के समय उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे, बोले, 'निर्दोषी को दूर हटा कर यदि स्वयं मैं यहाँ रह जाऊँ नये गोसाईं, तो उनका नाम लेना मिथ्या है, मेरा इस पथ में आना मिथ्या है।' मठ में वे भी न रहेंगे कमललता, ऐसा निष्पाप मधुर आश्रम एकदम टूटकर नष्ट हो जायगा।"

"नहीं, नष्ट नहीं होगा, ठाकुर जी कोई न कोई रास्ता अवश्य दिखा देंगे।"

"यदि फिर कभी तुम्हारी पुकार हुई तो वहाँ क्या लौट जाओगी ?"

"नहीं।"

"यदि वे लोग पश्चात्ताप करके तुमको लौटाना चाहें ?"

"तो भी नहीं।"

कुछ क्षण बाद न मालूम क्या सोचकर उसने कहा, "केवल जाऊँगी यदि तुम जाने के लिए कहोग तब। और किसी के कहने से नहीं।"

"किन्तु तुमसे मुलाकात कहाँ होगी ?"

इस प्रश्न का उत्तर उसने नहीं दिया, चुप रही। बहुत समय चुपचाप बीत जाने पर मैंने पुकारा, 'कमललता ?" आहट नहीं मिली, देखा कि गाड़ी के एक कोने में सिर रखकर उसने आँखें बन्द कर ली हैं। यह सोच कर कि सारे दिन की थकावट से सो गई है, जगाने की इच्छा नहीं हुई। इसके बाद मैं खुद भी कब सो पड़ा, इसका पता नहीं, हठात् कानों में आवाज आई, "नये गोसाईं।"

देखा कि वह मेरे शरीर पर हाथ रखकर पुकार रही है, बोली, "उठो, तुम्हारी सांइथिया में गाड़ी खड़ी है।"

झटपट उठ बैठा, पास के डब्बे में किशन था, पुकारने पर उसने आकर बैग उतार लिया। बिछौना बाँधते समय देखा कि जिन दो एक कपड़ों से उसकी शय्या बनाई थी, उसे उसने पहले से ही तह लगाकर मेरी बेंच पर एक तरफ रख दिया है। मैंने कहा, 'यह जरा सा भी तुमने लौटा दिया, लिया नहीं ?'

"कितनी बार चढ़ना उतरना पड़ेगा, यह बोझ कौन ढोयेगा ?'

"दूसरा कोई कपड़ा भी साथ नहीं लाई हो, वह भी क्या बोझ हो जाता ? दो एक निकालकर दे दूं ?"

'तुम भी खूब हो ? तुम्हारे कपड़े क्या भिखारिणी के शरीरपर शोभा पायेंगे ?'

मैंने कहा, "कपड़े न शोभा पायेंगे, किन्तु भिखारिणी को भी खाना पड़ता है। पहुंचने में और भी दो दिन लगेंगे, गाड़ी में क्या खाओगी ? जो खाने की चीजें मेरे पास हैं, उन्हें भी क्या फेंक जाऊँ ? तुम नहीं छुओगी ?"

कमललता ने इस बार हँसकर कहा, "अरे, क्या रंज हो गये ? अजी उन्हें छुऊँगी, छुऊँगी, रहने दो उन्हें, तुम्हारे चले जाने के बाद भरपेट खा लूँगी।"

समय बीत रहा था मेरे उतरते समय बोली, "जरा खड़े रहो तो गोसाईं कोई नहीं है, आज छिपकर एक बार तुम्हें प्रणाम कर लूँ," यह कहकर झुककर उसने मेरे पैरों की धूलि ले ली।

उतरकर प्लेटफार्म पर खड़ा हो गया। उस समय तक रात समाप्त नहीं हुई थी, नीचे और ऊपर के अन्धकार के स्तरों के बीच एक तरह का बँटवारा शुरू हो गया है, आकाश के एक छोरपर कृष्णा त्रयोदशी का क्षीण शीर्ण चन्द्रमा और दूसरे छोरपर ऊषा की आगमनी। उस दिन की बात याद आ गई, जिस दिन

ऐसे ही समय में, ठाकुर जी के लिए फूल तोड़ने जाने के लिए उसका साथी हुआ था। और आज ?

सीटी बजाकर, हरे रंग की लालटेन हिलाकर गार्ड साहब ने यात्रा का संकेत किया। कमललता ने खिड़की से हाथ बढ़ाकर यही प्रथम बार मेरा हाथ पकड़ लिया, उसके कंठ में विनती का जो सुर था, वह कैसे समझाऊँ ? बोली, "तुमसे कभी कुछ मांगा नहीं आज एक बात रखोगे ?"

"हाँ, रखूँगा," कहकर उसकी तरफ ताकने लगा।

कहने में उसे क्षणभर की रुकावट हुई, फिर बोली, "मैं जानती हूँ कि तुम्हारे कितने आदर की हूं। आज विश्वासपूर्वक तुम मुझे उनके पादपद्म में सौंपकर निश्चिन्त हो जाओ --निर्भय हो जाओ। मेरे लिए सोच सोचकर अब तुम मन खराब न करो गोसाईं, यही तुम्हारे निकट मेरी प्रार्थना है।"

ट्रेन चल पड़ी। उसका वही हाथ अपने हाथ में लिये कुछ दूर आगे बढ़ते बढ़ते मैंने कहा, "तुम्हें उनको ही दे दिया कमललता, वे ही तुम्हारा भार लें। तुम्हारा पथ, तुम्हारी साधना निरापद हो,—अपनी कहकर अब मैं तुम्हारा असम्मान न करूँगा।"

हाथ छोड़ दिया गाड़ी दूर से दूर चली गई। गवाक्ष के पथ से उसके झुके हुए मुँहपर स्टेशन की प्रकाश पंक्तियाँ कई बार आकर पड़ीं, फिर अन्धकार में मिल गईं। केवल यही मालूम हुआ कि हाथ उठाकर मानो उसने मेरे लिए अन्तिम नमस्कार सूचित किया।

समाप्त

सुलेमानी प्रेस, मछोदरीपार्क, बनारस।